झाला राजवंश

(बड़ीसादड़ी ठिकाने का इतिहास)

लेखक

डॉ. देवीलाल पालीवाल

राजराणा हिम्मतसिंह, [illegible]

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

प्राक्कथन

युग एवं व्यवस्था परिवर्तन के साथ इतिहास-लेखन की दृष्टि, पद्धति और स्वरूप वदलते रहे हैं। तथ्यों का अधिकाधिक अन्वेषण चलता रहा है, नवीन तथ्य उजागर हुए हैं अथवा ज्ञात तथ्यों पर नवीन प्रकाश पड़ा है। किन्तु ज्ञान-विज्ञान की प्रगति, तकनीक एवं साधनों के विकास तथा नवीन जनतांत्रिक विचारों के उदय ने इतिहास-लेखन की दृष्टि एवं विषयों को वहुत प्रभावित किया है। यह माना गया है कि इतिहास के निर्माण एवं परिवर्तन तथा उसकी घटनाओं को प्रभावित करने में केवल शासक वर्गों की भूमिका ही नही रही है, अपितु मानव समाज के सभी वर्गों कृषकों, शिल्पकारों तथा दलित लोगों ने परोक्ष अथवा प्रकट रूप से इतिहास के परिवर्तनों को प्रभावित किया है, जिनको पहिले इतिहास-लेखन में महत्वहीन मान कर शोध का विषय नही वनाया गया था। इस दृष्टि से अव इतिहास सम्वन्धी शोध एवं लेखन के विषय अधिक विविध एवं विस्तृत हो गये हैं।

इसी भांति ऐतिहासिक घटनाक्रमों एवं तथ्यों के अध्ययन को अधिक विस्तृत करने, अज्ञात विषयों की जानकारी प्राप्त करने अथवा नवीन तथ्यों को उजागर करने हेतु सामन्ती शासन-व्यवस्था का निम्न स्तर तक अध्ययन करने और ठेठ गांवों तक शासकवर्ग और सामान्य लोगों के वीच के सम्वन्धों को प्रकट करने एवं ग्रामीण व्यवस्था के विविध विषयों का अध्ययन करने की दृष्टि से पूर्व राजपूत राज्यों की जागीर व्यवस्था (ठिकानों) की ऐतिहासिक शोध, अध्ययन और लेखन पर अधिकाधिक जोर दिया गया है। जागीरों के अध्ययन से कई नवीन राजनैतिक घटनाओं, आर्थिक व्यवस्थाओं, सांस्कृतिक गतिविधियों तथा सामाजिक सम्वन्धों से सम्वन्धित जानकारी मिलती है, जिससे सम्वन्धित राज्यों के इतिहास को अधिक समृद्ध करने और प्रामाणिक वनाने में मदद मिलती है, साथ ही वह राष्ट्रीय इतिहास के कई पहलुओं पर नवीन प्रकाश डालने में भी सहायक होती है।

व्रिटिश इतिहासकार जेम्स टॉड को इस वात का श्रेय जाता है कि सर्वप्रथम उसने 'फ्यूडल सिस्टम इन राजस्थान' लिखकर राजपूत राज्यों की जागीर व्यवस्था के मूल विषयों पर प्रकाश डाला। उसके वाद यद्यपि विभिन्न राजपूत राज्यों का अलग-अलग इतिहास लिखने का कार्य

कई इतिहासकारों ने किया। किन्तु जागीरी-प्रथा की विशेषताओं और प्रभावों के समूचे अध्ययन को आगे नही बढ़ाया जा सका। पिछले कुछ वर्षों के दौरान राजपूत राज्यों की दरबारी व्यवस्था को लेकर कुछ अध्ययन और प्रकाशन हुआ है, किन्तु इस व्यवस्था का आधार रहे विभिन्न ठिकानों (जागीरों) के अलग-अलग ऐतिहासिक अध्ययन और लेखन के कार्य की ओर कुछ अपवादों को छोडकर, अधिक ध्यान नही दिया जा सका है। इतिहासकार गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने मेवाड़ की बड़ी-छोटी जागीरों के स्वामी विभिन्न राजपूतवंशी जागीरदारों के वंशजों का ऐतिहासिक क्रम में सक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करके बड़ा उपयोगी कार्य किया था। उनका इरादा मेवाड़ की कतिपय बडी जागीरों का विस्तृत इतिहास लिखने का था, किन्तु कई कारणों से संभव नही हुआ। फिर भी पिछले पचास-साठ वर्षों में मेवाड़ की कतिपय जागीरों के सम्बन्ध में कतिपय उपयोगी इतिहास ग्रंथ प्रकाशित हुए है, जैसे कि जयमल वश प्रकाश (बदनोर ठिकाने का इतिहास), बनेड़ा ठिकाने का इतिहास, A History of Netawal Family, कांकरोली का इतिहास, चतुरकुल, चरित्र आदि। मुझे अवसर और साधन प्राप्त होने पर मैंने मेवाड राज्य के तीन ठिकानों के इतिहास लेखन का कार्य किया, जो प्रकाशित हो चुके हैं—

1 घाणेराव के मेड़तिया राठोड़ (घाणेराव ठिकानेका इतिहास)

2 महाराज शक्तिसिंह और बोहेड़ा के शक्तावत (बोहेड़ा ठिकाने का इतिहास)

3. पानरवा का सोलंकी राजवश (पानरवा ठिकाने का इतिहास)

यह पुस्तक बड़ीसादडी ठिकाने का इतिहास मेरे द्वारा लिखित मेवाड़ के चौथे ठिकाने का इतिहास-ग्रंथ पाठको और शोधार्थियों के सन्मुख प्रस्तुत है।

× × ×

महाराणा रायमल के काल में हलवद से जब झाला परिवार मेवाड़ दरबार में आया, उस समय मेवाड की (सामती) जागीरी-व्यवस्था अपने चरम उत्कर्ष स्थिति में थी। सामतवर्ग का विस्तार हो रहा था। मेवाड़ के राजवंश (सिसोदिया) से निकली शाखाओं के सामंतों के अलावा महाराणा लाखा के काल से अन्य वशों के राजपूत सरदार बाहर से आकर मेवाड़ के सामतवर्ग में शरीक हो रहे थे। उसके साथ ही (सामंती प्रथा के अनुसार) मेवाड़ राज्य का विस्तार भी हो रहा था। डोडिया, सोलंकी, झाला, चौहान, पंवार, राठोड़ आदि वंशों के लोग मेवाड़ दरबार में शामिल होकर प्रायः महाराणा की सहायता से नवीन प्रदेशों पर विजय प्राप्त करके मेवाड़ राज्य में मिलाते थे और महाराणा उनके द्वारा विजित इलाकों को उनको जागीर स्वरूप में प्रदान करते थे। इस भांति मेवाड़ के शासकों की दूरदर्शितापूर्ण नीति के कारण बढ़ते हुए सामंत वर्ग में मेवाड राज्य की पहिले की भूमि का बटवारा नही होकर नई-नई भूमि को जीत करके मेवाड़ राज्य का भू-विस्तार हो रहा था अथवा शत्रु द्वारा जीत ली गई भूमि को वापस मेवाड़ राज्य में शामिल किया जा रहा था। हलवद से आये झाला अज्जा और सज्जा को अजमेर इलाके के

अंतर्गत खारी नदी के किनारे के मेवाड़ से सटे सभी गांव (जो पहिले से मेवाड़ राज्य के प्रभाव-क्षेत्र में रहे थे) महाराणा की ओर से जागीर में दिये गये। दोनों भ्राताओं ने अपने राजपूत सवारों को साथ लेकर उन गांवों को अपने अधिकार में लेकर वहां मेवाड़ राज्य का अधिकार स्थापित किया।

मेवाड़ राज्य में सामंतवर्ग सदैव शक्तिशाली और प्रभावशाली रहा। मेवाड़ के शासक महाराणा अपने सामंतों का बड़ा सम्मान करते थे। महाराणा की शक्ति और शासन का आधार सामंतवर्ग ही होता था, अतएव बुद्धिमान और चतुर शासक अपने जागीरदारों को शत्रु से होने वाली लड़ाईयों में अथवा नवीन इलाकों को हस्तगत करने में अपनी वीरता और साहस दिखाने और बलिदान करने के लिये प्रोत्साहित करते थे और राज्यहित में ऐसे साहसपूर्ण कार्यों को करने की दृष्टि से उनमें प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न करते थे। जो राजपूत परिवार अपने साहस, वीरता, रणकौशल एवं बलिदान से पूर्ण कार्य करके जितना अधिक रक्त बहाता और प्राणार्पण करता था, उतना ही अधिक उस परिवार को सम्मान और गौरव का पात्र माना जाता था और उसकी पद-प्रतिष्ठा और जागीर में अभिवृद्धि की जाती थी। इस प्रकार की अनवरत सक्रियता और कार्यवाहियां सामंती व्यवस्था में जीवंतता बनाये रखने के लिये अनिवार्यतः आवश्यक होती थी। उनके अभाव में सामंती व्यवस्था में आपसी द्वंद्व, बिखराव तथा अन्य प्रकार के दोष उत्पन्न होने का खतरा पैदा हो जाता था। हलवद से आकर मेवाड़ राज्य दरबार में शरीक होने वाले झाला और उसके वंशजों को जो सर्वोच्च सम्मान एवं गौरव तथा पद-प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, वह उनके वीरतापूर्ण कार्यो और मेवाड़ राज्य की रक्षार्थ किये गये आत्म-बलिदानों के कारण संभव हुई।

सामंती-प्रथा सैन्यबल पर आधारित व्यवस्था थी। राज्य का शासक सामान्यतः सामंतों के सैन्यबल के सहारे अपने राज्य की रक्षा करता था और आंतरिक शांति-व्यवस्था बनाये रखता था। अतएव प्रत्येक जागीरदार के लिये यह आवश्यक होता था कि वह अच्छे से अच्छे घोड़ों को रखे और उनकी पूरी देखरेख करे, घुड़सवारों तथा पैदल सिपाहियों के लिये युद्ध करने सम्बन्धी पूरे प्रशिक्षण का प्रबन्ध करे, तलवार, भालों, ढालों आदि सभी प्रकार के शस्त्रों की पूरी व्यवस्था करे। उनमें किसी भी प्रकार की ढिलाई और लापरवाही किसी भी जागीरदार के लिये भारी खतरे उत्पन्न करती थी। युद्ध के समय जागीरदारों और उनके सैनिकों की परीक्षा हो जाती थी। इसके अलावा दशहरे के त्यौहार के समय महाराणा उनकी जांच का प्रबंध करता था। आखेट आदि अन्य अवसरों पर भी जागीरदारों के निजी कौशल, वीरता और साहस आदि की परीक्षा हो जाती थी। लड़ाई हो अथवा नही महाराणा सामंतवर्ग की युद्ध-क्षमता और सैन्यबल की सक्रियता बनाये रखने की दृष्टि से सदैव सावचेत रहता था।

यद्यपि मेवाड़ दरबार में सामंत वर्ग को उच्च पद-प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी और उनको शासन-व्यवस्था, युद्ध नीति, रक्षा-प्रबंध आदि में महाराणा को सलाह देने का अधिकार प्राप्त था,

फिर भी महाराणा इस प्रथा का प्रधान संचालक होता था और उसको ही सामंतों की जागीरों एव पद-प्रतिष्ठा को बढाने अथवा घटाने का अधिकार होता था। उसको सामंतों की जागीरों की अदला-बदली का अधिकार भी प्राप्त होता था। निश्चय ही,ऐसी कार्यवाही करने में महाराणा की स्वेच्छाचारिता अथवा निरंकुशता नहीं चलती थी। सैद्धान्तिक तौर पर वह सभी कार्यवाहियों में पूरे सामंतवर्ग के प्रति उत्तरदायी माना जाता था। बाद में अवनति काल में जब इस सिद्धान्त के विपरीत शासक द्वारा स्वेच्छाचारितापूर्ण कार्यवाहियां की गई तो राज्य का विनाश ही हुआ। अतएव ऐसी सभी कार्यवाहियों के लिये उसके पास न्यायपूर्ण आधार अथवा कारण होने आवश्यक होते थे. महाराणा जो भी निर्णय करता अथवा कदम उठाता उसका सामंतों की दृष्टि में उचित होना और उसको उनका समर्थन प्राप्त होना आवश्यक होता था। महाराणा जागीरों की अदला-बदली राज्य की व्यवस्था की आवश्यकता अथवा कभी-कभी युद्ध के समय अथवा बाद में तात्कालिक आवश्यकता के कारण करता था। झाला अज्जा के वंशजों को पहिले अजमेर में,उसके बाद झाड़ोल एवं कानोड़ में तथा अंत में सादड़ी की जागीर मिली,जो स्थायी रूप से इस वंश के पास बनी रही। महाराणा अमरसिंह दूसरे के काल में जागीरों की स्थायी व्यवस्था करने के बाद जागीरों की अदला-बदली बहुत कम हो गई।

मेवाड़ के राज्य-कार्य में मेवाड़ के महाराणा की सर्वोच्चता एवं प्रधान संचालक होने की प्रतीक कई अन्य बातें थी—

1. जब भी किसी जागीरदार की मृत्यु होती तो महाराणा के आदेश द्वारा उसकी जागीर पर तत्काल कैद खालसा (राज्य-कर्मचारी) भेजकर उसका सारा प्रबंध राज्याधिकार में ले लिया जाता था। महाराणा द्वारा विधिवत जागीर का नया उत्तराधिकारी स्वीकृत किये जाने,उसके द्वारा महाराणा को कैद-नजराणा की (उत्तराधिकारी होने का नजराणा) राशि नज्र करने और महाराणा द्वारा उसकी तलवारबंदी किये जाने के बाद राज्य की ओर से ठिकाने से खालसा की उठंत्री (मुक्ति) करके राज्य कर्मचारियों को वापस बुलाकर नये जागीरदार को जागीर के पूरे अधिकार दिये जाते थे। इस परिपाटी का किसी भी प्रकार उल्लंघन होने पर जागीरदार विरोध कर सकता था,जैसा कि सादडी के राजराणा दूलहसिंह के समय घटित हुआ था।

2 प्रचलित परिपाटी ज्येष्ठता (primogeniture) के अनुसार जागीरदार की मृत्यु होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र ही उसका उत्तराधिकारी होता था, जिसको महाराणा विधिवत स्वीकार करता था। निस्संतान रहने पर जागीरदार की निकटस्थ शाखा के वंशज को गोद लिया जाता था, जिसकी स्वीकृति महाराणा से लेनी होती थी। तत्सम्बंधी विवाद अथवा कलह पैदा होने पर अंतिम स्वीकृति महाराणा की होती थी, किन्तु निश्चय ही गोद लेने का आधार मृत जागीरदार के परिवार अथवा उसकी शाखा का व्यक्ति होना माना जाता था। सिद्धांतः किसी भी जागीरदार की मृत्यु होने पर महाराणा उसकी जागीर

को जब्त नही कर सकता था, मृत जागीरदार की वंश शाखाओं के किसी व्यक्ति को उसकी जगह गोद लेकर उसको जागीर का स्वामी वनाना पड़ता था। नये जागीरदार के नावालिग होने की स्थिति में राज्य उसके वालिग होने तक जागीर का प्रवंध अपने हाथ में ले लेता था। सामान्यत जागीरदारों और उनकी संतानों के विवाह आदि के लिये भी महाराणा की स्वीकृति आवश्यक होती थी।

3. जागीरदार द्वारा महाराणा को सैन्यबल की सहायता देने के अनिवार्य कर्तव्य के अलावा जागीर की ओर से राज्य को कई प्रकार के कर अथवा लागतें देय होती थी, जो समय-समय पर एवं विशेष अवसरों पर राज्य को दी जाती थी।

अठारहवी शती के दौरान मराठा-उत्पात काल में मेवाड़ की सामंती व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। शासक और सामंत दोनों अपने कर्तव्यों से विमुख हो गये। सामंती प्रथा के मूल आधार गुण जाते रहे और सभी प्रकार के दोषों एवं वुराइयों ने इस प्रथा को समूल नष्ट कर दिया। 1818 ई. की संधि के वाद मेवाड़ राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार की शरण लेने के बाद पुरानी सामंती प्रथा का जो ढांचा अवशिष्ट रहा, उसमें उसकी मौलिकता जाती रही और केवल उसका वाहरी दिखावटी स्वरूप ही बचा रहा।

1818 ई. की संधि द्वारा मेवाड़ राज्य की रक्षा का दायित्व अंग्रेज सरकार द्वारा ग्रहण कर लिये जाने के वाद राज्य एव जागीरदारों द्वारा सैन्यबलों को रखना अनावश्यक हो गया, जिसके कारण सामंतीप्रथा का प्रधान तत्व लुप्त हो गया। मेवाड़ राज्य की रक्षा-व्यय के नाम पर राज्य की आय का छठा भाग अंग्रेज सरकार ने लेना तय किया तो महाराणा ने भी जागीरदारों से उनकी जागीरों की आय का छठा भाग 'छटूंद' राशि लेना और उनकी आय के आधार पर निश्चित सख्या में अश्वारोही एवं पैदल सिपाही रखना तय किया। साथ ही दशहरे के अवसर पर जागीरदारों द्वारा अपने निश्चित सैनिकों सहित राजधानी उदयपुर में आकर एकत्र होने, वर्ष में तीन अथवा छ· माह तक महाराणा की चाकरी करना आदि कई बातें महाराणा की ओर से अपने जागीरदारों पर लागू की गई। उनकी एवं अन्य दरवारी शिष्टाचार की बातों को लेकर महाराणा और उसके जागीरदारों के बीच एक सौ से अधिक वर्षों तक विवाद चलता रहा। अंग्रेज सरकार द्वारा उनके वीच सुलह एवं समझौता कराने के लिये कई कौलनामे तैयार किये गये, किन्तु वे विवाद-ग्रस्त वने रहे, और कई जागीरदार सभी शर्तों को स्वीकार करने से कतराते रहे। 1930 ई. में महाराणा भूपालसिंह के गद्दीनशीन होने के बाद ही ऐसी समस्याओं तथा जागीरों में दीवानी एवं फौजदारी कानूनों के आधार पर प्रशासन कायम करने सम्वन्धी समस्याओं का हल निकाला जा सका।

× × ×

सामती (जागीरी) प्रथा इतिहास में सैंकड़ों वर्षों तक कायम रही। अपने उत्कर्ष काल में

उसका सामाजिक प्रगति में बड़ा योगदान रहा किन्तु उसके अपकर्ष काल में समाज में कई प्रकार के दोष उत्पन्न हो गये। उसके अपकर्ष काल में कई प्रकार की बुराइयों, सामाजिक उत्पीड़न, शोषण आदि शुरू हो गये, फिर भी इस प्रथा की कुछ मूलभूत बातें बनी रही। राजपूत सामंती प्रथा में कई कारणों से बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों में सत्रहवी शती के दौरान अवनति होने लगी थी, जो बढ़ती गई। बड़ी सादड़ी ठिकाने के इतिहास का अध्ययन करते हुए यह स्थिति दृष्टिगत होती है, जबकि उसकी आंतरिक सामाजिक एकता, सद्भाव, सहयोग और सामंजस्य बिखरने लगे थे और मराठा आधिपत्य एवं मेवाड के गृह-युद्ध ने उसको तहस-नहस कर दिया। फिर भी बड़ी सादड़ी ठिकाने के इतिहास की कतिपय विशेषताएं ध्यातव्य हैं—

1. जैसा कि ऊपर जिक्र किया गया है—सादड़ी ठिकाने के झाला जागीरदार शूरवीर, साहसी, रणकुशल योद्धा और आत्म बलिदानी रहे। साथ ही वे स्वाभिमानी, स्ववंश के प्रति गौरव की भावना रखने वाले, बुद्धिमान, कुशल प्रशासक और चतुर राजनीतिज्ञ रहे। दोनों ही बातों के कारण वे सदैव अटूट रूप से मेवाड़ राज्य-दरबार में महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली सरदार बने रहे। अज्जा, सिंहा, आसा, सुरताण, वीदा (मानसिह) और देदा की छ पीढ़ियों ने एक के बाद एक अनवरत रूप से मेवाड़ राज्य की रक्षार्थ लड़ते हुए अपने प्राणार्पण करके इतिहास में एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। इनमें अज्जा और वीदा के नाम मेवाड़ के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे गये हैं, जब उन्होंने स्वयं रणक्षेत्र में महाराणा का स्थान ग्रहण किया और उनकी रक्षार्थ लड़ते हुए काम आये। उनके बाद मुगल साम्राज्य के काल के दौरान सादड़ी ठिकाने के अधिपति राजराणा हरदास, रायसिंह (प्रथम), सुरताणसिह (दूसरा), चन्द्रसेन और कीर्तिसिंह (प्रथम) ने एक ओर अपनी वीरता और रणकौशल से नाम कमाया तो दूसरी ओर इन राजराणाओं ने अपनी बुद्धिमानी, योग्यता और राजनीति-पटुता के द्वारा मेवाड़ राज्य के हित में मुगल बादशाहों के साथ मेवाड़ के महाराणाओं के बीच समुचित सम्बन्ध बनाने और कायम रखने की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की और इस दृष्टि से वे प्रायः महाराणाओं के सलाहकार बने रहे। इनमें हरदास ने महाराणा अमरसिंह के समय मेवाड़ की सेना का अध्यक्ष रहकर मुगल सेनाओं के विरुद्ध मेवाडी सेना का नेतृत्व किया। 1615 ई. में मेवाड मुगल संधि सम्पन्न कराने और मेवाड़ राजघराने की मुगल दरबार में गौरवपूर्ण स्थिति बनाये रखने की दृष्टि से हरदास ने बड़ा योगदान किया। उसके सुयोग्य और वीर पुत्र रायसिंह ने मुगल दरबार में मसबदार के रूप में सेवा करते हुए और विभिन्न स्थानों पर मुगल सेना में रहकर लड़ते हुए बड़ी ख्याति अर्जित की। इसी भाति सुरताण दूसरा और चन्द्रसेन अपने बुद्धि-बल और दूरदर्शितापूर्ण नीतिज्ञता के कारण महाराणा के सलाहकार बने रहे। दोनों ने मुगल बादशाह औरंगजेब की कट्टरतावादी नीतियों के विरुद्ध महाराणा राजसिंह और जयसिंह का साथ दिया। चन्द्रसेन ने मुगल सेना के

विरुद्ध राजकुमार जयसिंह के साथ रहकर मुगल सेनाओं को पराजित करने में वड़ा पराक्रम दिखाया। चन्द्रसेन राजसमुद्र झील के किनारे शाहजादे आजम के साथ महाराणा जयसिंह की संधि-वार्ता में महाराणा के सलाहकार के रूप में साथ रहा। 1708 ई. में जव महाराणा अमरसिंह दूसरे के काल में जयपुर और जोधपुर के महाराजा राठोड़ दुर्गादास को साथ लेकर महाराणा के पास सलाह करने और मदद मांगने आये तो कीर्तिसिंह वार्ता में महाराणा का प्रधान सलाहकार रहा। मराठा आक्रमणों के दौरान सादड़ी राजराणाओं ने उनका मुकावला किया। राजराणा रायसिंह दूसरा हीता की लड़ाई में वीरतापूर्वक लड़ते हुए वुरी तरह घायल हुआ। सुरताणसिंह तीसरा मराठों के विरुद्ध उज्जैन की लड़ाई (1769 ई.) में लड़ते हुए वुरी तरह घायल होकर मराठों द्वारा कैद कर लिया गया और ठिकाने की ओर से मराठों को रुपया देकर उसको मुक्त कराया गया। व्रिटिश आधिपत्य काल में राजराणा शिवसिंह, दुलहसिंह और कल्याणसिंह मेवाड़ के दूरदर्शी जागीरदारों में अग्रिम रहे, और समय-परिवर्तन देख कर अपनी जागीर सादड़ी में शासन-व्यवस्था को मेवाड़ राज्य की नई कानून-व्यवस्था के अनुसार ढाला। राजराणा कल्याणसिंह महात्मा गांधी का अनुयायी वन कर राष्ट्रीयता एवं उदारतावादी विचारों का पक्षधर वन गया और आजीवन खादी वस्त्र धारण करता रहा।

2. सादड़ी राजराणा राज्य दरवार में प्राप्त अपनी पद-प्रतिष्ठा, दरवार में अपने (महाराणा के वरावर माने जाने वाला) गौरवपूर्ण स्थान, दरवार में दाहिने ओर की अव्वल नम्वर की महाराणा के मुँह वरावर की वैठक, मेवाड़ के महाराणा के वरावर लवाजमा रखने और उसको लेकर सवारी निकालने, अपनी सवारी लेकर महलों के पास त्रिपोलिया तक जाने तथा इसी प्रकार के अन्य स्वत्वों, कुरवों और ताजीमों का सदैव गर्व करते रहे और उन पर किसी प्रकार की आंच नही आने देने की दृष्टि से सजग और दृढ़ रहे। इन स्वत्वों को वे सदैव अपने वंशगौरव की उच्चता का प्रतीक मानते रहे।

3. सादड़ी के राजराणा सदैव (सामती प्रथा की परिपाटी की सीमा में) उदारवादी, सहिष्णु और वहुलतावादी विचारों के शासक रहे। वे स्वय देवीमाता के उपासक रहे और तदनुसार आचरण करते रहे, वाद में वे उसके साथ वल्लभ-सम्प्रदाय की वातों को भी अपनाने लगे और राम एवं कृष्ण तथा हनुमान का पूजा-पाठ भी उनकी दैनिक जीवनचर्या का भाग वन गया। कांकरोली और नाथद्वारा के वैष्णव मंदिरों को उन्होंने अपनी जागीर का एक-एक गांव भेंट किया था, जिनकी आय उन मंदिरों की सहायतार्थ जाती थी। उनकी इन निजी मान्यताओं एवं विश्वासों ने उनके प्रजाजनों के साथ सम्वन्धों तथा उनके न्याय एवं प्रशासन को कभी दुष्प्रभावित नही किया। उन्होंने धर्म को राज्य शासन की नीति एव व्यवहार से सदैव अलग रखा और ठिकाने के सभी प्रजाजनों को अपने-अपने धर्मों एवं विश्वासों के अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता दी। अतएव, ठिकाने में देवी

माता के साथ शिव, राम, कृष्ण हनुमान, भेरूजी आदि देवताओं की अलग-अलग मंदिरों मे पूजा-अर्चना होती रही। जैनी लोग अपने अलग उपासरे और मंदिर आदि वनाकर अपने धर्म का आचरण करते थे। बोहरा और मुसलमान अपनी-अपनी मस्जिदें वनाकर निर्बाध रूप से नमाज पढते और अल्लाह को याद करते रहे। वाद में ईसाईयों ने अपना गिरजाघर भी बनवाया।

4. इसी उदारतावादी नीति के अन्तर्गत ठिकाने के प्रशासन मे सभी धर्मों एवं जातियों के लोगों को उनकी योग्यता के अनुसार नियुक्तिया मिली हुई थी अथवा उनको अपना-अपना व्यवसाय करने की पूरी स्वतत्रता मिली हुई थी। ठिकाने के प्रशासन में जैनी तथा ओसवाल महाजन अथवा कायस्थ प्रायः ठिकाने के प्रधान कामदार पद पर नियुक्त होते थे। ठिकाने का हिसाब-किताब भी ये लोग ही रखते थे। राजराणा अपने भायपों अथवा सगे-सम्बन्धियों को सामान्यत ठिकाने के किसी उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर नियुक्त नही करते थे। अन्य राजपूतवशियो को वे शाति-व्यवस्था एवं सुरक्षा आदि कार्यों में लगाते थे। वे मुसलमानों का भी ऐसे कामों में उपयोग करते थे। सादड़ी ठिकाने के शिकमी जागीरदारों में झालाओं के अतिरिक्त चूंडावत, शक्तावत, राठोड़ आदि वंशों के राजपूतों के अलावा महाजनों, ब्राह्मणों तथा पठान मुसलमान को भी जागीरें मिली हुई थी।

5. यदि पतनकाल को छोड़ दे तो जागीरी प्रथा मे न्याय-व्यवस्था का कार्य बड़ा संतुलित जनहितकारी रहता था। न्यायकार्य सामान्यत· समाज की प्रचलित प्रथाओं, रिवाजों और परिपाटियों के मुताबिक जाति-पचायतों के माध्यम से सम्पन्न होता था, जो सवको स्वीकार्य होता था। जागीरदार उनके निर्णयों को मान्यता देता था तथा उनके निर्णयों में दखल नही देता था। विवादास्पद मामलों में वह सवकी राय लेकर सतोषजनक हल निकालता था। समाज में अपराध, अनैतिकता और दुराचार को रोकने के लिये अवश्य ही वह दंड आदि देकर कठोर कार्यवाही करता था।

6 सैन्यबल को रखने तथा ठिकाने की शांति-व्यवस्था एव अन्य प्रशासनिक कार्यों पर होने वाले व्यय के लिये सादडी राजराणा किसानों से लगान वसूली और वाणिज्य एवं व्यवसाय पर लगाये गये करों के अलावा जनता के हर वर्ग से कई प्रकार के कर एवं लागतें आदि वसूल करता था, जिस व्यवस्था मे प्राय· प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति शामिल होता था (देखे लाग-बाग सम्बन्धी परिशिष्ट)। अवनति काल में यह व्यवस्था सामाजिक उत्पीडन और असंतोष का कारण बनी, जैसाकि मवाड के अन्य ठिकानों में हुई घटनाओं से भी प्रकट होता है। किन्तु मेवाड़ के अन्य ठिकानों बिजौलियां, बेगूं आदि में किसानों के असंतोष और लाग-बाग विरोधी आंदोलनों की जो घटनाएं हुई, बडी सादड़ी में उस प्रकार की घटनाएं होने की जानकारी नही मिलती। धाकडो के नेतृत्व मे एक प्रदर्शन

हुआ, जिसको राजराणा दुलहसिंह ने बातचीत से शांत कर दिया। फिर भी इस विषय में अधिक शोध की जरूरत होगी। राजराणा की उदारतावादी एवं समझौतावादी नीति ने आसामियों को शांत रखा हो, यह संभव है।

× × ×

ठिकाने का इतिहास-लेखन मूलतः उस ठिकाने में उपलब्ध प्राचीन लिखित अथवा अन्य प्रकार की संग्रहीत सामग्री पर आधारित होता है। कई ठिकानों में ऐतिहासिक शोध के योग्य सामग्री को सुरक्षित करने के प्रयास किये गये हैं। ऐसी सामग्री में से कुछ राज्य के अभिलेखागारों में पहुँची है, कुछ सामग्री कतिपय शोध-संस्थाओं के पुस्तकालयों को प्रदान की गई हैं किन्तु अधिकांश सामग्री अब तक भी सम्बन्धित ठिकानों में दूरदर्शी ठिकानेदारों द्वारा पेटियों अथवा बस्तों में सुरक्षित करके रखी हुई है। ब्रिटिश आधिपत्य काल की ठिकानों सम्बन्धी काफी सामग्री राज्य के अभिलेखागारों और राष्ट्रीय अभिलेखागार में संग्रहीत है। अवश्य ही कई छोटे-बड़े ठिकानों की इस प्रकार की बहुमूल्य सामग्री असावधानीवश बाजार में बेच दी गई, जिससे इतिहास के लिये उपयोगी पांडुलिपियां, बहियां और दस्तावेजों की पत्रावलियां आदि बाजार में रद्दी के भाव बेच दी गई। इससे ऐतिहासिक शोध को बड़ी हानि पहुँची है।

बड़ीसादडी ठिकाने में प्राचीन दस्तावेजों, बहियों, पांडुलिपियों और विविध पत्रावलियों को सुरक्षित रखने का बराबर प्रयास किया गया है। निश्चय ही, महाराणा अमरसिंह प्रथम से पहिले के काल से सम्बन्धित विशेष जानकारी उपलब्ध नही होती। ठिकाने के मूल पट्टे उपलब्ध नहीं हैं। बहियों में उनकी नकलें दर्ज हैं। नकल बहियों में ठिकाने से सम्बन्धित प्राचीन पर्वानों, रुक्कों तथा अन्य प्रकारके राज्यादेशों की प्रतिलिपियां दर्ज हैं। इसी प्रकार राजराणाओं द्वारा अपने शिकमी जागीरदारों को दी गई जागीरों, भूमि, कुंवों आदि के पट्टों की नकलें भी उनमें उपलब्ध हैं। कई राजराणाओं ने समय-समय पर अपना प्राचीन इतिहास लिपिबद्ध कराने के प्रयास किये थे। इस प्रकार की कतिपय पांडुलिपियां भी ठिकाने के संग्रह में उपलब्ध हैं।

अठारहवी, उन्नीसवी एवं बीसवी शती के काल के मूल दस्तावेजों पर्वानों, रुक्कों आदि एवं उनकी प्रतिलिपियां ठिकाना-संग्रह में सुरक्षित हैं। अलग-अलग विषय के दस्तावेजों की अलग-अलग पत्रावलिया नत्थी करके रखी हुई हैं, जिनमें निम्नलिखित प्रधान हैं—

1 ठिकाने में विभिन्न सीगों, प्रधानत· धार्मिकपर्वों, अनुष्ठानों, जन्मोत्सवों, विवाह समारोहों, गमी के अवसरों, अतिथि के स्वागत-कार्यो, तालाब, महल, भवन, मंदिर, बाग-बगीचों आदि के निर्माण आदि पर किये गये खर्चो का हिसाब तफसील से रखा हुआ मिलता है। मेवाड राज्य को दी गई छटूंद, खडलाकड़ तथा अन्य प्रकार की लागतों की जानकारी मिलती है।

2. इसी प्रकार ठिकाने की आय (पैदाइश) से सम्बन्धित पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है।

ठिकाने की आय के प्रमुख साधनों, किसानों से प्राप्त होने वाले लगान, वाणिज्य एवं व्यवस्था पर लगाये गये करों, शिकमी जागीरदारों से लिये जाने वाली लागतें, शिल्पकारों एवं प्रजा के सभी प्रकार के लोगों से ली जाने वाली लाग-वाग सम्वंधी जानकारी ठिकाने के रजिस्टरों आदि में दर्ज है। इस ग्रंथ के परिशिष्ट-भाग में तत्सम्वंधी कुछ सूचनाएं शामिल की गई है।

3. ठिकाने के उन्नीसवी-वीसवीं शताव्दी शती के दौरान रहे प्रशासन, कचहरी, जेल, पुलिस थाने, आंतरिक सुरक्षा सम्वंधी मामलों, सीमा-विवादों आदि से मम्वंधित मूल दस्तावेजों की फाइलें, अलग-अलग व्यवस्थित रूप से रखी हुई सुरक्षित हैं।

4. मेवाड़ राज्यदरवार के शिष्टाचार, (रस्म, राह-मरजाद) वड़ीसादड़ी राजराणा सहित अन्य सरदारों को प्राप्त स्वत्वों, लवाजमा, कुरव, ताजीम, दरवार में वैठक आदि वातों से सम्वंधित जानकारी विभिन्न रजिस्टरों और फाइलों में सुरक्षित हैं। जागीरदारों और महाराणा के वीच कर्तव्यों एवं अधिकारों को लेकर चले दीर्घकालीन विवादों, समय-समय पर उठाई गई मांगों, कौलनामों को मंजूर करने के प्रयासों आदि से सम्वंधित पर्याप्त जानकारी ठिकाने की फाइलों एवं रजिस्टरों में उपलव्ध है।

5. ठिकाना-संग्रह में रायसिंह वंशावली नामक संक्षिप्त इतिहास ग्रंथ ईश्वरसिंह, मदनसिंह और रामसिंह वडवों की वशावलिया, ठिकाना परिवार की राजराणाओं की वंशावलियां आदि सामग्री भी ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी सामग्री है।

6 राजस्थान विद्यापीठ साहित्य संस्थान पुस्तकालय में आशिया मानसिंह कृत 'राजराणा चन्द्रसेन गुण वर्णन' काव्य ग्रथ की समकालीन पाडुलिपि उपलव्ध है जिसमें प्रधानतः मुगल वाशाह औरगजेव के विरुद्ध चन्द्रसेन द्वारा किये गये युद्धों का वर्णन मिलता है।

7. 1904 ई. में प्रकाशित सादड़ी ठिकाने में सेवारत महता सीताराम शर्मा कृत 'श्री झाला भूपण मार्तण्ड' ग्रंथ वड़ी सादड़ी ठिकाने का क्रमवद्ध इतिहास ग्रथ अत्यन्त उपयोगी है, जो इस पुस्तक के लेखन का आधार-ग्रंथ रहा है। गुजराती भापा में 1921 ई. में प्रकाशित 'झाला वंश वारिधि' ग्रथ में भी वड़ी सादड़ी ठिकाने का इतिहास प्रकाशित किया गया है, जो श्री झाला भूपण मार्तण्ड ग्रंथ पर आधारित है। किन्तु उसमें झाला वंश के प्राचीन इतिहास से सम्वंधित उपयोगी सामग्री प्रकाशित की गई है।

8. अंग्रेज लेखक सी. एस. वैले कृत 'रूलिंग प्रिंसेज, चीफ्स एंड परसोनेजेस ऑफ राजपूताना' ग्रंथ और के. डी. अर्सकिन कृत 'दी मेवाड़ रेजिडेन्सी गजेटियर' में भी वड़ी सादड़ी ठिकाने से सम्वन्धित कुछ जानकारियां मिलती हैं। इतिहासकार गौ. ही. ओझा कृत उदयपुर राज्य का इतिहास द्वितीय खंड में मेवाड़ के सौलह और वत्तीस वर्ग के ठिकानों के इतिहास से सम्वन्धित संक्षिप्त जानकारी दी गई है। उसमें वड़ी सादड़ी ठिकाने के

सम्वन्ध में संक्षेप में उपयोगी जानकारी दी गई है। प्रकाशित उपयोगी ग्रंथों में से मुंशी देवीप्रसाद कृत जहांगीर नामा, शाहजहां नामा और औरंगजेव नामा ग्रंथों से इस पुस्तक के लेखन की दृष्टि से वड़ी उपयोगी सामग्री प्राप्त हुई।

9. राज्य के उदयपुर स्थित अभिलेखागार और वीकानेर के राजस्थान अभिलेखागार में उपलव्ध सामग्री का भी इस ग्रंथ लेखन में उपयोग किया गया है, जो प्रधानतः ठिकानों से सम्वन्धित शिकायतों अथवा आसामियों के असंतोष से सम्वन्धित फाइलों से प्राप्त हुई है।

इतिहास लेखन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और उसके विविध विषयों से सम्वन्धित शोध असीमित है। स्पष्ट है वड़ीसादड़ी ठिकाने के इतिहास से सम्वन्धित यह ग्रंथ प्रथम प्रयास है और इसके द्वारा ठिकाने का विस्तृत ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। आशा है आने वाले समय में अध्यवसायी और लगनशील शोधार्थी इस ठिकाने के इतिहास के विविध विषयों के गहन और विस्तृत शोध के कार्य को सम्पन्न करके कई और नये पहलुओं को उजागर कर सकेंगे।

मेवाड़ के घाणेराव, वोहेड़ा और पानरवा ठिकानों से सम्वंधित ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना के वाद लेखक द्वारा चौथे ठिकाने वड़ीसादड़ी के इतिहास से सम्वन्धित यह रचना पाठकों और शोधार्थियों के अध्ययन हेतु प्रस्तुत की जा रही है।

प्रस्तुत ग्रंथ को तैयार कराने का प्रधान श्रेय वड़ी सादड़ी के वर्तमान राजराणा श्री हिम्मतसिंह जी को जाता है, जिन्होंने मुझसे अपने ठिकाने का इतिहास लिखने का आग्रह किया और शोध एवं लेखन की दृष्टि से अपने संग्रह में से विविध प्रकार की आवश्यक सामग्री उपलव्ध कराई। प्राचीन पेटियों एवं वस्तों आदि को निकालने, उन्हें देखकर आवश्यक सामग्री ढूंढने आदि के कार्य में वे अनवरत रूप से लगे रहे, जिसके फलस्वरूप यह लेखन संभव हुआ। लेखक उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

लेखक हलवद के झाला राजवंश की प्रधान शाखा के वर्तमान वंशधर ध्रांगध्रा महाराजा श्री राज मेघराजजी का कृतज्ञ है। उन्होंने झाला वंश की उत्पत्ति के सम्वन्ध में अपने मौलिक विचारों से लेखक को अवगत कराया और वड़ीसादड़ी ठिकाने के झालावंश के सम्वन्ध में लेखक द्वारा तैयार किये जा रहें इस ग्रंथ के सम्वन्ध में अनवरत रुचि ली। उनके द्वारा व्यक्त किये गये उद्गारों एवं विचारों का इस ग्रंथ में उपयोग किया गया है।

वड़ीसादड़ी के कतिपय वयोवृद्ध सज्जनों ने राजराणा दुलहसिंह एवं कल्याण सिंह से सम्वन्धित संस्मरण सुना कर एवं जानकारियां देकर ग्रंथ की उपयोगिता वढ़ाई है, लेखक उन सभी सज्जनों का आभभारी है। इनमें प्रधानतः श्री ओंकार लाल जारोली, श्री हीरालाल मेहता, श्री नक्षत्रमल भंडारी, श्री अम्वालाल पंवार, श्री लक्ष्मी नारायण वर्मा प्रधान है।

बड़ी सादड़ी राजपरिवार से सम्बधित जिन-जिन महानुभावों ने इस ग्रंथ के लेखन में अपनी रुचि प्रदर्शित की और सुझाव दिये, वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं। उनके साथ वर्तमान राजराणा की सेवा में कार्यरत सर्वश्री गजराजसिंह, गोवर्धनसिंह एवं गोपाललाल का आभारी है, जिन्होंने सामग्री जुटाने, ऐतिहासिक स्थलों का अवलोकन कराने एवं ठिकाने के वयोवृद्ध लोगों से सम्पर्क कराने में भरसक सहायता प्रदान की।

पुस्तक लेखन के दौरान बोहेड़ा रावत श्री सुरेन्द्र सिंह जी ने बराबर रुचि ली, सुझाव दिये तथा आवश्यक सहयोग प्रदान किया। उसी प्रकार श्री गुलाबसिंहजी चौहान, भंवरिया भी इस कार्य में बराबर रुचि लेते रहे और आवश्यक सहयोग देते रहे। लेखक दोनों महानुभावोंके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता है। डॉ. मनोहरसिंह राणावत, उपनिदेशक श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ, डॉ. राजेन्द्रनाथ पुरोहित, डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू, डॉ. मोहब्वत सिंह राठोड़ एवं ठा. ईश्वरसिंह राणावत, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर द्वारा समय-समय पर लेखक को आवश्यक सहयोग प्रदान किया गया, वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

विषय-सूची

◆◆◆

अध्याय - 1

बड़ीसादड़ी ठिकाना

भौगोलिक स्थिति : सामान्य परिचय

वड़ीसादड़ी का झाला वंश का ठिकाना भूतपूर्व मेवाड़ राज्य के सोलह उमरावों में अव्वल दर्जे का ठिकाना था। ऐतिहासिक परम्परा की दृष्टि से पद-प्रतिष्ठा में वड़ीसादड़ी के जागीरदार की हैसियत मेवाड़ के अन्य सभी उमरावों में सवसे अव्वल तथा मेवाड़ के शासक महाराणा के वरावर मानी जाती थी। ऐसी विशिष्ठ स्थिति इस वंश के द्वारा मेवाड़ राज्य और मेवाड़ के सिसोदिया राजवंश की रक्षा के लिये समर्पित उनकी अनुपम सेवाएं थी।

वड़ीसादड़ी ठिकाना मेवाड़ राज्य के दक्षिणी पूर्वी भाग में स्थित था। सादडी कस्वा 24°25' उत्तरी अक्षांश और 74°29' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है तथा समुद्रतल से 1600 फीट की ऊंचाई पर स्थित है। वह उदयपुर नगर से पूर्व दिशा में 50 मील की दूरी पर है तथा निम्वोहड़ा से दक्षिण में 20 मील और नीमच से 25 मील दूर पश्चिम में है। ठिकाने का प्रमुख भाग अरावली पहाड़ियों से वाहर मैदानी भाग में आ गया है। उसकी उत्तर और उत्तर पूर्व की सीमा ग्वालियर और टोंक राज्यों से मिलती थी। उसकी पूर्वी सीमा पर मध्यप्रदेश के नीमच और मंदसौर इलाके तथा मेवाड़ राज्य का छोटीसादड़ी वाला खालसा इलाका आ गया था। ठिकाने के दक्षिण में प्रतापगढ़ का इलाका व मेवाड़ राज्य का धरियावद ठिकाना था। इसके दक्षिण पश्चिम में वानसी, वोहेड़ा व कानोड़ ठिकाने की सीमाएं मिलती थी। शिवरती, करजाली और वोहेड़ा की सीमाएं उसके उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर मिलती थी।

ठिकाने के प्रधान भाग के अतिरिक्त उसके अधिकार के कुछ गाँव मेवाड़ राज्य के चित्तौड़, छोटीसादड़ी व मावली परगनों में भी थे, जिसका प्रशासन एवं भू-राजस्व वसूली वड़ीसादड़ी के अधिकार में था। ठिकाने का नाम सदैव सादड़ी रहा, किन्तु खालसा भूमि के एक अन्य निकटवर्ती गाँव का नाम भी सादड़ी था और जव इस सादड़ी को खालसा परगने का प्रशासनिक केन्द्र वनाया गया तो उसको छोटीसादड़ी कहा जाने लगा और सादड़ी ठिकाने को वड़ीसादड़ी कहा जाने लगा।

पहाड़

वडीसादडी कस्बे के उत्तर में खरदेवला का पहाड़ चित्तौडगढ़ जाने वाली सडक के किनारे पर आ गया है एव वांकडा मगरा का पहाड भी पास में हैं। दक्षिण में लालपुरा का पहाड़, वोरूंडी का पहाड, शिकार वाड़ी का पहाड़, भो चोंतरा, पूलामगरा व गोलमगरी का पहाड़ प्रधान हैं। पश्चिम में ऐलवा माता का पहाड है। वडीसादड़ी कस्बे के दक्षिण में प्रतापगढ़ की ओर से आयी हुई एक पर्वत श्रेणी सीतामाता होकर धरियावद की ओर चली गई है। उस दिशा में वडीसादडी का कस्वा इस पर्वत श्रेणी की तलहटी में आ गया है, उसकी एक पहाडी पर प्राचीन किले के खण्डहर विद्यमान हैं, जो सुलतानगढ़ के नाम से जाना जाता है। ठिकाने का पारसोलीगढ वोरूंड़ी पहाड़ पर वना हुआ है, जो आज भी ठीक हालत में है। कस्बे की दक्षिण पहाडी पर भी एक गढ़नुमा इमारत वनी हुई है, जिसमें ठिकाने की तोपें रखी जाती थी व तोपखाना के नाम से जानी जाती है। यह भी सुल्तानगढ़ की सीमा में ही है।

नदियाँ

वडीसादडी ठिकाने की प्रमुख नदियों में जाँप नदी, जो सालेड़ा के पास होकर वहती है, पालाखेडी की नदी, करमोई नदी, गाढ़ाउतर नदी, वागणनदी, सीतामाता नदी, दांतावाला खार नदी, मोतीवेला नदी हैं। वागण नदी पर बाँध बना हुआ है। सीतामाता नदी जाखम नदी में जाकर मिलती है। मोतीवेला नदी का पानी वागण वॉध में जाता है। वागण बाँध का पानी जयसमन्द की झील में व चित्तौड़गढ की बेड़च नदी में जाता है। वरसाती नालों में प्रधान हैं सादडी तालाब का नाला, वोरुडी तालाव का नाला, जो सेमलिया एवं पंडेड़ा के पास बहता है, कदम सागर का नाला, जो आकोदडा के पास वहता है एवं पानगढ़ का नाला, जो केवड़ीया के पास वहता है।

ठिकाने की नदियों-नालों का पानी दो दिशाओं में वहकर जाता है। सीतामाता नदी का पानी जाखम नदी में मिलकर सोम नदी में मिलता हुआ माही नदी में जाकर मिलता हैं, जो वहती हुई अरव सागर की खम्भात की खाड़ी में गिरती है। इस भाँति सीतामाता नदी का पानी पश्चिम की ओर अरव सागर की ओर जाता है, जवकि शेप नदियों का पानी का वहाव उत्तरी-पूर्वी दिशा की ओर है, जो बेड़च नदी एव बनास नदियों में मिलता हुआ चम्वल नदी में जाकर मिलता है। जिसका पानी यमुना नदी एवं गंगा नदी के द्वारा पूर्व की ओर वंगाल की खाड़ी में पहुँचता है।

झीलें

ठिकाने के प्रधान तालावों में वड़ा तालाव (सूर्यसागर), दूलहसागर, कल्याणसागर, पारसोलीगढ का तालाव, वागण का वॉध और झरना है। वडा तालाब सादडी कस्बे के उत्तरी छोर पर वना हुआ है। बडातालाव, दूलहसागर और कल्याणसागर कस्बे के निकट है। वडे

तालाव में 110 वीघा, दुलहसागर में 100 वीघा और कल्याणसागर में 30 वीघा पेटा काश्त होती थी। अन्य काश्त लायक छोटे तालावों में झरना, मंडेरा का तालाव, वंदा (मोतीसागर), वोरूंडी का तालाव, वंवोरा का तालाव, उन्ठेल का तालाव, दीपों का तालाव, गुंदलपुर का तालाव, आफरो का तालाव, मूजवे का तालाव, वोयणा का तालाव, नलवाई का तालाव प्रमुख थे, किन्तु उनमें से अधिकांश फूटे हुए होने से अथवा कम गहरे और छोटे होने से उनसे काश्तकारी में वहुत कम मदद मिलती थी। नदियों से नहरें निकाल कर कृषि नही होती थी, किन्तु नदियों के किनारे स्थित गाँवों के लोग डोली वनाकर कही-कहीं चड़सों द्वारा पिलाई करते थे, रेंटों का प्रयोग नहीं था। लगभग 150 चड़स चलते थे। वन्दोवस्त होने के वाद ठिकाने में सवसे वढ़िया भूमि का लगान एक रुपया प्रति वीघा तथा अनुपजाऊ भूमि का लगान दो आना प्रति वीघा था।[1] वोरूंडी के तालाव में 350 वीघा काश्त होती है।

कस्वा

वड़ीसादड़ी कस्वा कव वसा और यह नामकरण कैसे हुआ, इसके सम्वन्ध में जानकारी नहीं मिलती। दन्त कथाओं के अनुसार वर्तमान सादड़ी कस्वे के उत्तर में जहाँ इस समय श्मशान भूमि है, एक प्राचीन वस्ती विद्यमान थी जिसका नाम मादड़ी था। उस स्थान पर प्राचीन मन्दिरों एवं भवनों के खण्डहर दृष्टिगत होते हैं तथा शहरपनाह एवं वुर्जो के अवशेष भी दिखाई पड़ते हैं।[2]

ऐसा माना जाता है कि जिस समय यह स्थान आवाद था, उस समय यहाँ सिसोदिया वंशी महारावत सूरजमल (1473-1530 ई.) का निवास था। महारावत सूरजमल को मेवाड़ राज्य की ओर से सादड़ी की जागीर मिली हुई थी। सूरजमल मेवाड़ के महाराणा कुम्भा के सोतेले भाई क्षेमकर्ण का पुत्र था। गृह-कलह के कारण महाराणा रायमल के काल में सादड़ी उसके हाथ से जाती रही और वह वहाँ से कांठल इलाके की ओर चला गया।[3] वाद में उसके उत्तराधिकारी महारावत वाघसिंह को पुन. सादड़ी की जागीर वहाल कर दी गई। मंदसौर के निकटवर्ती देवलिया प्रतापगढ़ वाले प्रदेश का वाघसिंह 1534 ई. में गुजरात के वादशाह वहादुरशाह के विरुद्ध चित्तौड़गढ़ की रक्षार्थ वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। उसके फलस्वरूप मेवाड़ के महाराणा की ओर से वाघसिंह के उत्तराधिकारी महारावत रायसिंह को सादड़ी के अलावा धरियावद की जागीर भी प्रदान की गई। रायसिंह ने वनवीर के डर से महाराणा सांगा के पुत्र वालक उदयसिंह को शरण देने से पन्नाधाय को इन्कार कर दिया था,

---

1 Census and Statistical Department Report, Government of Mewar, no 1168/9 (29-5-1947)

2 उक्त श्मशान भूमि में हलवदिया मेहता लोगों की चार सौ साल पुरानी एक छत्री सुरक्षित है, जिसमें दो मूर्तियां बनी हुई है। हलवदिया मेहता (हलवद से आये मेहता) लोग वहां सतीमाता की पूजा करते हैं।

3 मन्दसौर का निकटवर्ती देवलिया-प्रतापगढ़ वाला प्रदेश। प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, लेखक गो ही. ओझा, पृ 54-91

उसके कारण गद्दी पर बैठने के बाद महाराणा उदयसिंह ने 1553 ई. में महारावत रायसिंह के उत्तराधिकारी विक्रमसिह से सादड़ी और धरियावद की जागीर वापस ले ली। इस पर 1553 ई. के लगभग विक्रमसिह मेवाड को सदैव के लिए छोडकर कांठल की ओर चला गया।[4] इस भाति तब से सादडी सूरजमल की सन्तानों के हाथ से निकल गई। घटनाक्रम से यह प्रकट होता है कि सादड़ी के निकट के प्राचीन मादडी के प्राचीन खण्डहर अवश्य ही महारावत सूरजमल और उसके उत्तराधिकारियों के समय तक आबाद रहे, जिनको सुरक्षा की दृष्टि से चारों ओर परकोटा एव बुर्जे बनवाकर गढ के रूप में निर्मित किया गया था। बडीसादड़ी का सूर्यसागर (सूरसागर) नामक बडा तालाब महारावत सूरजमल द्वारा बनवाया हुआ माना जाता है।

कस्बे के पूर्व की ओर राजराणा दुलहसिंह द्वारा बनवाया हुआ दूलहसागर तालाब है। राजराणा ने यह तालाब वि.स. 1956 (1899 ई.) के भीषण अकाल के समय अकाल पीड़ितों के लिए राहत कार्य शुरू कर के बनवाया था। दुलहसागर के दक्षिण में शिकारवाड़ी नामक एक बगीचा हैं, जिसके मध्य में एक भवन बना हुआ है, इसको राजराणा रायसिंह तृतीय ने बनवाया था।

कस्बे का एक अन्य तालाब कल्याणसागर है, जिसको राजराणा कल्याणसिंह ने वि.सं. 1996 (1940 ई.) के अकाल के समय अकाल पीड़ितों को कार्य देकर राहत पहुँचाने के लिए बनवाया था। पारसोली का तालाब जो 1940 ई. में टूट गया था उसको 1953 ई. में राजराणा हिम्मतसिंह ने पुन. बनवाया।

कस्बे के पूर्वी भाग में कृष्णवाटिका नामक एक रमणीक बगीचा है, जिसमें श्रीकृष्णजी का मदिर निर्मित है। यहाँ बगीचा, बावड़ी और सराय है जिनमें साधु-सत आकर ठहरते हैं। इस वाटिका व मंदिर आदि को महाराज सुलतानसिंह ने बनवाया था। यह स्थान ठिकाना के देवस्थान विभाग को व्यवस्था हेतु अर्पित कर दिया गया जिसके खर्चे के लिये ठिकाने की ओर से समुचित जागीर दी हुई थी।

कस्बे के पश्चिम में झरना नामक तालाब और झरना है। जिसमें साल भर पानी बहता रहता है। वर्षा ऋतु में लोग यहाँ आकर स्नानादि का आनद उठाते हैं और गोठे करते हैं। झरने के दक्षिणी भाग में एक गुफा है, जहाँ साधु-संत आकर ठहरते हैं। इस गुफा के लिये किम्वदंती प्रसिद्ध है कि वह प्रतापगढ़ के पहाड़ों में जाकर निकलती है। झरने से निकलने वाला नाला खल्यावेरा दक्षिण से उत्तर में बहता है। उसके पश्चिम में मेहेताजी की बावड़ी और बगीचा है।

कस्बे की अन्य बावडियों में धाधवा बावड़ी, उम्मेद सागर, कलाल बावड़ी, लढा बावड़ी, पेली बावडी, चारभुजा के मन्दिर वाली बावडी, लाडू माता की बावड़ी और खरा आगली बावडी प्रधान हैं।

---

4 प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, लेखक गो ही ओझा, पृ 54-91

ऊपर उल्लेखित आवादी के उत्तर में निर्मित वड़ातालाव (सूर्यसागर) पर राजराणा दुलहसिंह ने वत्तीस हजार रुपये व्यय करके एक नई पाल का निर्माण करवाया। इस तालाव में एक होज बना हुआ है। पाल पर एक हनुमानजी का मन्दिर एवं बगीची वनी हुई हैं। हनुमानजी की मूर्ति सुन्दर एवं दर्शनीय है। पाल के पीछे की ओर एक बड़ा वगीचा है। जिसके बीच में हवामहल नामक एक भवन वना हुआ है। यह वगीचा एवं भवन राजराणा रायसिंह तृतीय द्वारा वनाया गया है। इस बगीचे के उत्तर में राजराणा कल्याणसिंह ने वि.सं. 1996 के दुर्भिक्ष के समय में मोतीसागर नामक वॉध वनवाया था, जो दर्शनीय है। इसमें वड़े तालाव से बहकर पानी आता है। वाँध के पीछे एक होज बना हुआ है, जिसमें वाँध की मोरियों से पानी के धरड़े पड़ते हैं।

कस्बे के उत्तर में बड़े तालाब के पास एक विशाल कुंड निर्मित है जो जूना कुंड के नाम से प्रसिद्ध है, जिसकी कारीगरी दर्शनीय है। इसको बेदलावाली रानी चौहानजी फतहकंवर ने वि.सं. 1832 में बनवाया था। इस कुंड की बनावट और कलाकारी बड़ी अनूठी है जैसी मेवाड़ में अन्यत्र कही पर देखने में नहीं आती है। कुंड के पास मुसाफिरों के ठहरने के लिए पुरानी सराय है। सागर के पास एक कुंड बना है जिसे नयाकुंड के नाम से जाना जाता है यह राजराणा शिवसिंह व राजराणा रायसिंह के समय बनाया गया है।

बड़ीसादड़ी कस्बे में 22 वैष्णव मंदिर, 4 देवी माता के मंदिर (आदमाता, हिंगलाज माता, चादेशीमाता[5], भामरेश्वरीमाता) 2 जैन मंदिर, 2 देवल (रामद्वारा एवं कबीर द्वारा) तथा 4 मस्जिदें (2 बोहरों एवं 2 मुसलमानों की) आदि धार्मिक स्थल हैं। एक नया दुर्गा देवीमाता का मन्दिर जनता द्वारा वनाया गया तह्सील चोराहा के पास है।

कस्बे में चारभुजा का विशाल मंदिर ऊंची कुर्सी पर वड़े सुन्दर ढंग से बना हुआ है, जिसको वि.सं. 1933 में राजराणा शिवसिंह ने एक लाख रुपया व्यय करके बनवाया था। एक जैन मन्दिर भी बडे विशाल आकार का बना हुआ है। इसके अलावा सोमनाथ मंदिर और श्मशान में कोटेश्वर मंदिर शिवजी के प्रधान मंदिर हैं। इसके अलावा शिवजी के 21 स्थान कस्बे में जगह-जगह पर हैं।

कस्बे में धांधवा नामक बड़ी बावड़ी कस्बे के लोगों के लिये स्नान हेतु काम आती है। श्री चारभुजा मंदिर की बावड़ी भी सुन्दर है। जिसके पास हनुमानवाड़ी नामक वगीचा था जिसके बीच में स्थित मंदिर में लगी हनुमानजी की मूर्ति पुरानी है।

राजराणा के विशाल एवं भव्य राजप्रासाद कस्बे के ऊंचे स्थान पर निर्मित हैं। राजप्रासाद के मुख्य द्वार के आगे एक बुर्ज बनी हुई है। उस पर निशान लगा हुआ है जिसके सम्वन्ध में यह प्रसिद्ध है कि यह बादशाह द्वारा बनवाया गया है। वुर्ज की प्रत्येक वर्ष मरम्मत की जाती

---

5 चालकरायजी माता के नाम से भी जानी जाती है। इस माता के लिये यह किम्वदति प्रसिद्ध है, कि उसका सिर सादड़ी में, धड़ देवगढ़ (प्रतापगढ़) में और पैर देलवाड़ा में है।

है और प्रतिवर्ष दशहरे पर उस निशान पर कपड़े की नई खोल चढ़ाई जाती है। राजप्रासाद विशाल हैं और कस्बे की भूमि से लगभग 100 फीट ऊंचाई पर बने हैं। उनके चारों ओर गढ़नुमा प्राचीर निर्मित है। गढ़ का विशाल द्वार जो बादशाह द्वारा दिया हुआ माना जाता है, शाही दरवाजा कहलाता है। आगे चलने पर एक दरवाजा है जिसे तोरणपोल नाम से जाना जाता है और विवाह के समय तोरण का दस्तूर यहाँ ही होता है। गढ़ के तोरणपोल द्वार के भीतर प्रवेश करने पर विशाल चौक है जिसके चारों और कचहरियों, कारखानों, पायगों आदि के लिए अलग-अलग कमरे बने हुए हैं। चौक से सीढ़ियां चढ़ने पर पुनः महलों का एक विशाल प्रवेश-द्वार है।

द्वार से महलों के भीतर प्रवेश करने पर पुन. एक बड़ा चौक है, जिसके सामने वाले भाग में बडे-बड़े कमरे बने हुए हैं, जिनमें किसी समय ठिकाने का बहुमूल्य साजो-सामान रखा जाता था। इन कमरों के ऊपर ही प्रथम मंजिल पर एक विशाल दरबार हाल है, जिनमें मेवाड़ के प्रधान राणाओं और सादड़ी के राजराणाओं के चित्र लगे हुए हैं। महलों के द्वार वाले भाग के ऊपर प्रथम मंजिल पर ठिकाने के राजराणाओं के चित्र टंगे हुए है। महलों में रायभवन, राजनिवास और कल्याणभवन वाले भाग विशेष दर्शनीय हैं। रायभवन, राजनिवास, कुँवरपदा का महल, जनानी महल, चौपाड़ आदि राजराणा रायसिंहजी तृतीय के द्वारा बनाये गये थे। महलों में पायगा कचहरियां, कारखानों के मकान, नजरबाग, राजराणा दुलहसिंहजी द्वारा बनाये गये हैं। कल्याण भवन राजराणा कल्याणसिंह द्वारा बनाया गया। जनाना महल और मर्दाना महल अलग-अलग बने हुए हैं। जागीर-व्यवस्था के दौरान रात में और दिन में घडियाल बजती थी और दोपहर एवं अर्द्धरात्रि में नोपत बजती थी।

गाँव और आबादी

1941 ई. की जनगणना के अनुसार सादड़ी ठिकाने में कुल 101 गाँव थे और आबादी 16205 थी।[6] बड़ीसादड़ी कस्बे की कुल आबादी 5775 थी। जिनमें 2923 मर्द और 2743 औरतें थी। उनमें 3560 हिन्दू, 883 मुसलमान, 4 ईसाई, 5 सिख 1211 जैन और 42 आदिवासी थे।[7]

जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया है ठिकाने के कुछ गाँव मेवाड़ राज्य के अलग-अलग जिलों में भी हैं। उनके प्रधान गाँव चित्तौड़ जिले में केवड़ीया तथा मावली परगने में नाहर मगरे के पास चीपीखेड़ा, आकोदड़ा, साकरियाखेड़ी, पावटा, गुडा, सुखवाड़ा, बोयणा, भोपतखेड़ी, सोभजी का खेड़ा हैं।

6 समय एव परिस्थिति के अनुसार ठिकाने के गावों की सख्या, आबादी और आय बदलती रही थी।

7 Census of Mewar by Jamana Lal Dashora

ठिकाने की भूमि

सादड़ी ठिकाने की भूमि काली भूरी, काकरी, रातड़ी है, जो काश्त के योग्य है। शेष पहाड़ी भूमि है। सादड़ी की वार्षिक औसत वर्षा 25 से 28 इंच है।

सादड़ी का कुल रकवा माफी सहित 1,29,564 वीघा था। उसमें पहाड़ी भाग का रकवा 30 वर्ग मील था और गैरकाश्त रकवा 86000 वीघा था।

काविल काश्त रकवा 12000 वीघा
घास के काविल रकवा 12232 वीघा
एवं गैरकाविल में रकवा 19,329 वीघा था

आमदनी

ठिकाने की वार्षिक आमदनी इस भाँति थी—

लगान से प्राप्त	56000 रुपये
जंगलात की आय	12950 रुपये
आवकारी	5020 रुपये
छटूंद चाकरी	9148 रुपये
ज्यूडिसियल	965 रुपये
मुतफरिक	19917 रुपये
कुल	1,04,000 रुपये
आय में से छटूंद के	2850 रुपये
लागत के	60 रुपये
चाकरी के	2717 रुपये
कुल	5637 रुपये राज्य के भण्डार में जमा कराये जाते थे।[8]

वीड़ और जंगल

सादड़ी में घास के वड़े-वड़े वीड़ थे, जिनमें चाहखेड़ी का वीड़, सन्तोकपुरिया का वीड़, वाकड़ा का वीड़, गड़िया का वीड़ और वोरूंड़ी का वीड़ प्रधान थे, जिनका कुल रकवा 7000 वीघा था और 8 से 10 लाख घास की पूली होती थी। वजन कुल 10000 मन के लगभग होता था। घास की कटाई पांती पर होती थी अथवा 2 रुपया प्रति हजार पुली पर काटने वाले को दिया जाता था।

---

8 Census and Statistical Department Government of Mewar No 1168/9 dated (29-5-1947)

सादड़ी कस्बे के निकट रखत (रक्षित) सीतामाता का बड़ा घना जंगल है। इसके अलावा मूजवा का जंगल भी घना है। जिसके पहाड़ी भाग पर भागी वावड़ी नामक स्थल है, जिसका पानी वर्ष भर वहता रहता है और कभी टूटता नही है। जंगलों में जड़ी-वुटियों से कई प्रकार की औषधियों के लिए उपयोगी वनस्पति उपलब्ध होती है उनमें संजीवनी, गोंद, धावड़ी, खेरी, कडाया, सफेदमूसली, सतावरी, असगंध, अर्जुन, आंवला, अशोक, अडूसा, आस, अमलतास, आरेठा, आक, अजीर, अरनी, रवड़, वांस, वहेड़ा, वेर, व्राह्मी, विदारी कंद, वड़गूदे गुड़मार, वज्रदंती, पीपल, सेमल, गोखरू, मूलेठी चिरौंजी, गोरखमुंडी, मरोड़ाफली, गुडवेल, करंज, जामुन, पलास, शंखपुस्पी, सरहजवा, परगडा, इमली, जटामांसी, नागरमोथा, दूब, खस, नाय, रुदवती, आंवाहल्दी गेंगची, तुलसी, भृंगराज, सफेद आक आदि प्रधान हैं। सागवान् और सीसम के पेड़ तथा वांस भी प्रचुर मात्रा में हैं। महुआ वडी संख्या में हैं, जिसके फलों की शराव वनाई जाती थी। जगल की इमारती लकड़ी, वांस, जलाऊ लकडी, कोयला आदि विकने के लिए वाहर जाते थे।

खान एवं उद्योग

सादड़ी में खड़ी की खाने हैं व वम्बोरा में स्लेट पेन की खान है। पहाड़ियों से चुनाई के पत्थर निकाले जाते हैं।

दस्तकारी के कई उद्योग सादड़ी में थे। एक टोपी वनाने का कारखाना था, जिसमें वीस आदमी और औरतें काम करती थी। टोपियाँ इंदौर, अजमेर और उदयपुर आदि की ओर विकने के लिए जाती थी। दो हैण्डलूम कारखाने थे जिनमें मीलों के सूत का कपड़ा वनता था। उनमें 50 आदमी और औरतें काम करती थी। कपड़ा-वुनाई का काम लगभग 100 जुलाहे करते थे। साधारण घरेलु धन्धे कुम्हारी, सुथारी, लोहारी आदि के विद्यमान थे।

ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी, वोहरा, मुसलमान कस्बे में प्रधान व्यापारी थे। सादड़ी कपड़ा व्यापार का वड़ा केन्द्र रहा और सभी तरह का कपड़ा मिल जाता था। व्यापारी लोग आयात-निर्यात दोनों करते थे। कस्बे की वड़ी मंडी में कई वड़े व्यापारियों की दुकानें थीं। जिनमें लछीराम-गोविन्दराम की फर्म सर्वाधिक मशहूर थी।

सड़कें

ठिकाने में पक्की अथवा कच्ची सड़के नही थी। सभी रास्ते कच्चे थे जिनमें से अधिकांश वरसात के दिनों में वंद हो जाते थे। कभी-कभी मोटर वस उदयपुर से आती थी। वरसात में गाड़ी अथवा ऊंटों से काम लिया जाता था। वाद में कानोड़ से उदयपुर जाने वाली अथवा छोटीसादड़ी से नीमच जाने वाली वसें उपलब्ध होने लगी थी। नजदीकी रेल्वे स्टेशन टोंक इलाके का निम्वाहेडा स्टेशन था जो सादड़ी से 20 मील उत्तर-पूर्व में है, जहाँ वैलगाडी अथवा घोड़े व ऊंट की सवारी से पहुंचा जाता था।

डाकखाना

सादड़ी में पुराना विरामणी डाकखाना था और बाद में अंग्रेजी डाकखाना शुरू हुआ। डाक मार्ग छोटीसादड़ी व नीमच से था। तारघर निम्वाहेड़ा में था। मेवाड़ राज्य के समय रेलवे का काम शुरू हो गया था। सन् 1946 ई. में प्रारम्भ होकर सन् 1949 ई. तक मावली से वड़ीसादड़ी तक रेल का आना शुरू हो गया। डाक भी रेल द्वारा आने लग गई व तारघर भी वन गया।

न्याय

सादड़ी ठिकाने को प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट एवं मुंसिफी अख्तीयारात हासिल थे। 500 रुपये का जुर्माना करने और तीन साल की सजा देना फौजदारी मामलों में तथा दीवानी मामलों में 5000 रुपये तक के दावे का फैसला करने के अधिकार थे। ठिकाने को रजिस्ट्री के अधिकार प्राप्त थे। सादड़ी के माल महकमे में रेवेन्यू कोर्ट भी थी, जिसको द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेटी अधिकार थे। राजराणा शिवसिंह, रायसिंह (तीसरा), दूलहसिंह और कल्याणसिंह के काल (सन् 1865 ई. से 1944 ई.) में धीरे-धीरे न्यायालयों, कचहरियों एवं मालगुजारी तथा प्रशासनिक कार्यों के लिए अलग-अलग भवन वनवाये गये।

पुलिस प्रबन्ध

सादड़ी कस्वे में ठिकाने का प्रधान पुलिस थाना था। इसके अलावा आकोदड़ा में आउट पोस्ट चौकी थी। सादड़ी के निकट भानुजा में राज्य (खालसा का) पुलिस थाना था। कस्वे पुलिस थाने के लिए अलग भवन था जिसमें सव-इसंपेक्टर एवं मोहरिर, सहायक मोहरिर एवं कांस्टेवल नियुक्त थे। कस्वे में रात में पुलिस गश्त का प्रवन्ध था। कस्वे में सड़कों एव गलियों में पहले लालटेनों का प्रवन्ध था, वाद में राजराणा कल्याणसिंह के काल में विजली की रोशनी का प्रवन्ध किया गया।

शिक्षा

सादडी में ठिकाने की ओर से दुलहराय अंग्रेजी स्कूल चलता था जिसको राजराणा दूलहसिंह द्वारा 1928 ई. में प्रारम्भ किया गया था, जिसमें लड़के एवं लड़कियां दोनों पढ़ती थी। नीची जाति के वच्चों को भी भर्ती किया जाता था। ठिकाने की ओर से एक कन्या पाठशाला चलती थी। एक कन्या पाठशाला जैनियों की ओर से चलाई जाती थी। वोहरों व मुसलमानों द्वारा प्राईवेट विद्यालय चलाये जाते थे। मुसलमान लोगों ने अपने वच्चों के लिए अलग से उर्दू की पढ़ाई का प्रवन्ध कर रखा था। देहात में जयसिंहपुरा में प्राईवेट पाठशाला थी।[9]

---

9 Census and Statistical Department Report Government of Mewar No 1168/9 Dated 29-5-1947

अस्पताल

सादड़ी कस्बे में ठिकाने की ओर से एक अंग्रेजी दवाखाना था, जिसका नाम राय हॉस्पिटल था तथा एक आयुर्वेदिक दवाखाना था। दवाखाने पर एक प्रशिक्षित डॉक्टर तथा दो कम्पाउंडर थे। आयुर्वेदिक दवाखाने में वैद्य एव कम्पाउंडर थे। इनके अलावा दो प्राईवेट डिस्पेंसरियां भी थी।

पचायत बोर्ड

सादडी कस्बे में तथा पारसोली में ठिकाने की ओर से पचायत बोर्डों का प्रबन्ध था, जिनको फौजदारी एव दीवानी दोनों प्रकार के अधिकार मिले हुए थे। बाद में 1957 ई में नगरपालिका बनाई गई।

दाण

स्थानीय दाण (चुगी) अथवा मापा वसूली के लिये सादड़ी कस्बे तथा मौजा मुंजवा में दाणी चबूतरे कायम थे।

शिकमी जागीरदार

राजराणा के अधीनस्थ जागीरदार शिकमी जागीरदार कहलाते थे। ये वे जागीरदार होते थे जिनको राजराणा सेवार्थ अपने ठिकाने की भूमि में से गाँव भूमि, कुआ आदि देते थे। यह प्रथा मेवाड के महाराणाओं के द्वारा अपनायी गयी जागीरी प्रथा के समान थी। जागीर की एवज में शिकमी जागीरदार राजराणा को छटूद राशि देते थे और चाकरी अर्पित करते थे। ऐसे जागीरदारों में अधिकतर राजराणा के परिवार के निकट सम्बन्धी (छुटभाई, भायप) होते थे। प्रत्येक राजराणा को प्राय अपने भाई आदि को उनके गुजारे के लिए गाँव अथवा भूमि आदि देनी पडती थी। ऐसे झाला सरदारों के अलावा सादडी ठिकाने में अन्य राजपूत खांपों के, जैसे चूण्डावत, शक्तावत, राणावत, चौहान, राठौड, सारगदेवोत, सुवावत, वाघेला आदि के जागीरदार थे। इनके अलावा चारणों, राव, भाट, ब्राह्मणों को माफी की जागीरें मिली हुई थी। कुछ सैयद मुसलमान और महाजन भी इन जागीरदारों में शामिल थे। ऐसे शिकमी जागीरदारों की कुल सख्या 48 थी।

हलवदिया परिवार

सादडी में सभी जातियों के लोग थे। इनमें कतिपय जाति के लोग स्वयं को राजराणा अज्जा के साथ आना अथवा बाद में हलवद से आकर बसना बताते हैं। इनमें प्रधान हलवदिया मेहता लोग हैं, जिनकी सतीमाता की छत्री पुरानी श्मशान भूमि में विद्यमान है और वे वहाँ नियमित पूजा करते हैं। उनके अतिरिक्त हलवदिया मेडू चारण, हलवदिया रावल पुरोहित,

हलवदिया महात्मागुरु वैद्यराज, हलवदिया दमामी और हलवदिया भोईराज आदि हैं, जिनमें से अधिकांश के परिवार आज भी सादड़ी कस्वे में आवाद हैं।

धार्मिक आचरण एवं मान्यता

वैष्णव, शैव, जैन, सिक्ख, सुन्नी एवं शिया मुसलमान तथा अन्य लोग अपने-अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार धार्मिक आचरण करते थे। सादड़ी के राजराणाओं के धार्मिक विश्वास आचरण एवं मान्यता विशेष तौर पर ध्यान देने योग्य है। राजराणा एवं राजपूत लोग सदैव से अपनी ईष्टदेवी की पूजा-अर्चना करते आये हैं। झाला राजराणाओं की ईष्टदेवी का नाम आदमाता है। दशहरा आदि धार्मिक अवसरों पर देवी मंदिरों में पाड़े एवं वकरे का वलिदान करते थे। कही-कही भेरू मन्दिरों में भी यह विधि सम्पन्न की जाती थी। वे शिवभक्त भी थे और महादेव की पूजा अर्चना करते थे। वाद में सत्रहवी शताव्दी में वे वैष्णव धर्म से भी प्रभावित हुए, प्रधानत· वृंदावन से श्रीनाथजी एवं श्रीद्वारिकाधीशजी की मूर्तियों के मेवाड़ में आगमन के वाद इस प्रक्रिया को विशेष वल मिला। एक ओर वे देवी धर्म का पालन करते रहे तो दूसरी ओर दैनिक जीवन में राम, कृष्ण और हनुमान की पूजा अर्चना और पाठ आदि करने लगे। महलों में पिताम्वररायजी का मंदिर वनवाकर उसमें दैनिक भागवत पाठ का क्रम शुरु हुआ। इसी भॉति सादड़ी कस्वे में राजराणाओं, रानियों आदि ने कई छोटे वड़े कृष्ण मंदिर, राम मंदिर, शिव मंदिर, हनुमान मंदिर, रामद्वारा, कवीर द्वारा आदि वनवाये। मंदिरों में पूजा-अर्चना आदि पर होने वाले व्यय ठिकाने की ओर से वहन किया जाता था। महलों में रामायण पाठ, भागवत पाठ, शतचंडी पाठ, महारूद्र, महायज्ञ आदि अनुष्ठान चलते रहते थे। व्राह्मणों, साधु-संतों आदि को भोजन कराते एवं दान आदि देते थे। राजराणा दुलहसिंह की दिनचर्या प्रातःकाल चारभुजा मंदिर में दर्शन करने से शुरू होती थी।

अध्याय – 2

झाला-वंश की उत्पत्ति

झाला-वंश की राजस्थान के 36 राजकुलों में गिनती होती है। झाला-वंश का प्राचीन नाम मकवाना है, अतएव उसको मकवाना-वंश भी कहा गया है। किसी समय इस वश के लोगों का सिन्ध प्रदेश के बड़े भू-भाग पर अधिकार रहा था, जहाँ से निकलकर वे कच्छ तथा सौराष्ट्र में आकर बस गये। इस वश के लोग स्वयं को चन्द्रवशी तथा यजुर्वेद की माध्यंदिनी शाखा के मानते हैं। उनकी मान्यता है कि उनका वंश मार्कण्डेय ऋषि से निकला है।[1]

अन्य राजकुलों की भाँति झाला-वश का अतीत भी अलौकिक गाथाओं से परिपूर्ण है। इस वश की उत्पत्ति के साथ भी उसी प्रकार की एक काल्पनिक गाथा जुड़ी हुई है, जैसी कि प्रतिहार (पड़िहार), चालुक्य (सोलंकी), परमार और चाहमान (चौहान) राजवंशो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित है। महाकवि चन्दवरदाई ने अपने काव्य-ग्रथ पृथ्वीराजरासो में उक्त चार राजवशों की दैविक उत्पत्ति का वर्णन किया है, जिसके अनुसार राक्षसो के विनाश हेतु महर्षि वशिष्ठ ने आबू पर्वत पर एक महायज्ञ किया, जिसके अग्निकुंड से प्रतिहार, चालुक्य, परमार और चाहमान नामक चार वीर पुरुष उत्पन्न हुए, जिनके नाम से चार राजवंश चले। मकवाना झालावश के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की एक कल्पित कथा चली आती है, जिसके अनुसार राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित होकर ऋषि मार्कण्डेय ने हिमालय की तलहटी में जाकर महायज्ञ किया जिसके अग्निकुड से कुडमाल नामक वीर योद्धा प्रकट हुआ।[2] उसने राक्षसो को परास्त करके सनातन धर्म की रक्षा की। इस प्रकार का उल्लेख झाला वंश से सम्बन्धित वंशावलियों

---

1 Jhalas Claim to belong to Lunar Dynasty and track their lineage from Rishi Markandeya They follow the Madhyandini School of Yajurveda and have three 'Pradaras Though their presiding deity is shakti they are worshippers of Vishnu -History of Dhrangadhara state by C Mayne, P 22

2 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, लेखक—महता सीताराम शर्मा पृ 1। यज्ञ के अग्निकुण्ड से सनातन धर्म के प्रतिपादक ऋषियों द्वारा वीर पुरुष पैदा करने सम्बन्धी कथाओं का आशय यही है कि उस काल मे बौद्ध मतावलबियो और सनातन धर्म के मतावलबियो के बीच चल रहे सघर्ष मे ऋषियों ने बौद्धों से लड़ने हेतु उक्त क्षत्रिय वशो को खड़ा किया।

एवं वड़वों की पोथियों में मिलता है। यही कथा इस भाँति भी लिखी मिलती है कि हिमालय पर्वत में ऋषि मार्कण्डेय द्वारा की गई तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव और पार्वती प्रकट हुए और उन्होंने उसको वरदान दिया। इसके पश्चात् ऋषि ने महायज्ञ करके अग्निकुण्ड से कुंडमाल नमाक वीर योद्धा उत्पन्न किया।[3]

1911 ई. में व्रिटिश सम्राट पंचम जार्ज के भारत आगमन के अवसर पर प्रकाशित Indian Princes and the Crown नामक पुस्तक में इस भाँति उल्लेख किया गया है—झाला वंश के हरपालदेव मखवान के पूर्वजों का इतिहास पौराणिक उपाख्यानों से भरा पड़ा है। उस वंश का प्रजनक कुंडमाल मखवान नामक एक देवपुरुष था, जिसको मार्कण्डेय ऋषि ने राक्षसों से रक्षा के लिये देवताओं हेतु किये जाने वाले यज्ञों एवं पूजा-अर्चनाओं द्वारा अग्निकुंड से उत्पन्न किया था। वह योद्धा गले में मालाए धारण किये हुए कुंड से वाहर निकला (अतएव उसका कुंडमाल नाम पड़ा)। इस पुस्तक में यह भी लिखा है कि मखवान शव्द संस्कृत 'मख' शव्द से वना है, जिसका अर्थ यज्ञ है। उससे प्रकट होने के कारण उसका वंश मखवान कहलाया,[4] जो आगे जाकर वोलचाल की भाषा में मकवान, मकवाना अथवा मकवाणा कहलाया

चन्द्रवंशी

कर्नल जेम्स टाड का मानना है कि प्राचीनकाल से झाला राजपूत जाति सौराष्ट्र प्राय-द्वीप में वसी हुई है। यह जाति न तो सूर्यवंशी है और न चन्द्रवंशी और अग्निकुलों से भी उसका कोई सम्वन्ध नही है। हम इसको उत्तरी देशों से निकली जाति मान सकते हैं, यद्यपि इस वात की पुष्टि के लिये हमारे पास कोई प्रमाण उपलवध नही है। सौराष्ट्र का एक वड़ा भू-भाग इस (झाला) जाति के नाम पर झालावाड़ कहलाता है।[5]

वड़वा ईश्वरसिंह की पोथी में वंश की उत्पत्ति के सम्वन्ध में उल्लेख इस भाँति है—राजा कासव (कश्यप) के चन्द्रदेव के मारकुंडी ने मकवान का यज्ञ किया, जिसमें से मकवाईक नामक

---

3 वड़वा ईश्वरसिंह की पोथी।
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 1
श्री झाला-वश-वारिधि (गुजराती पुस्तक), ले राजकवि नाथूराम सुदरजी शुक्ल, पृ 1105

4 History of Dhrangadhra State by C Mayne, P. 20-21.

5 टॉड कृत राजपूत जातियों का इतिहास, सपादक डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 184-185
घ्रागधा राज्य के इतिहास के लेखक मैन के अनुसार—"*Tradition has it that the Jhalas reached* Kathiawar about 900 or 950 A D entering the province either by land or by sea through Sind and Cutch" - History of Dhrangadhara State, by C Mayne, P 15-16
यहाँ यह स्पष्ट करना भी जरूरी है कि इस वश का नाम झाला हरपाल देव (1040-1130 ई) के काल से पड़ा। उसके वाद ही इस भू-भाग का नाम झालावाड़ पड़ा। इस भू-भाग में वाद मे उनके वशजों के अलग-अलग राज्य रहे—हलवद-धांगधा, वाकानेर, लीमड़ी, वढ़वान, लखतर, चूड़ा, सामला। ये रिसायतें भारतीय गणतत्र में विलीनीकरण के समय विद्यमान थीं। यह भू-भाग वर्तमान में सुरेन्द्रनगर लोकसभा क्षेत्र में है।

पुत्र पैदा हुआ। उससे मकवाना वश कहलाया। मारकुंडी वंश उत्पन्न हुआ मारकुंडिय गोत्र हुआ, चन्द्रवंशी कहलाया।[6]

मखवाना (मकवाना) वंश-नाम

इतिहासकार गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है—झाला वश का पुराना नाम मकवाना था और मूल स्थान सिन्ध में कीर्तिगढ़ था, जहाँ सूमरा लोगों से झगडा होने पर हरपाल मकवाना गुजरात चला गया। वहाँ के राजा कर्ण सोलकी ने बड़ी जागीर देकर अपने पास रखा। मकवाना वंश की उत्पत्ति के मम्बन्ध में जनश्रुति है कि मार्कण्डेय ऋषि ने सोमयज्ञ करके उसके मूल पुरुप कुडमाल को उत्पन्न किया। सम्कृत में यज्ञ का नाम 'मख' होने से कुडमाल 'मखवाना' (मकवाना) कहलाया। यह जनश्रुति कल्पना प्रसूत होने से विश्वसनीय नही है। सभव है, मकवाना इस वश के मूल पुरुप का नाम हो और झाला उसकी शाखा का नाम हो। यदि कुंडमाल की यज्ञ से उत्पत्ति होती तो परमारो, सोलंकियों, चौहानो और पडिहारों की भॉति मकवाने भी अग्निवंशी कहलाते। किन्तु मकवाने स्वय को अग्निवशी नहीं मानते। इसी भॉति इस वश का झाला नाम पडने सम्वन्धी जनश्रुति भी भाटों की कल्पना मात्र है, जिसके अनुसार देवी रानी ने राजकुमारों को हाथी के पैरों तले कुचले जाने से वचाने के लिये अपना हाथ फैलाकर उनको वचा लिया। वि स. 15वी शती में कवि गगाधर रचित मडलीक महाकाव्य में काठियावाड के गोहिलो को सूर्यवशी तथा झालाओं को चन्द्रवशी होना लिखा है, जो भाटों की कल्पना के मुकावले अधिक विश्वसनीय है।[7]

कुडमाल के अग्निकुड से प्रकट होने के कारण उसको अग्निवंशी होना चाहिये, इसको अस्वीकार करके कुंडमाल को चन्द्रवंशी मानने का यह कारण वताया गया है कि मार्कण्डेय ऋषि ने कुडमाल को उत्पन्न करने के लिये जो महायज्ञ किया था, वह सोमयज्ञ था। सोम अर्थात् चन्द्रमा अतएव कुडमाल का वश चन्द्रवश कहलाया।[8]

वंश का 'झाला' नामकरण

कर्नल आई. डब्ल्यू. वाट्सन (I.W. Watson) द्वारा सम्पादित एवं 1884 ई. में प्रकाशित वाम्वे गजेटियर के गुजरात सम्वन्धी भाग में भी टाड की मान्यता से सहमति प्रकट करते हुए यह मत जाहिर किया गया है कि झाला विदेशी उत्पत्ति के थे और वे अहिन्दू थे। वे उन आक्रमणकारियों में से थे जो उत्तर से आये और सिन्ध एवं कच्छ से होते हुए काठियावाड में

6 रावजी भावा बड़वा देवीसिंह के पुत्र ईश्वरीसिंह से उपलब्ध पोथी।

7 उदयपुर राज्यका इतिहास, ले गौ ही ओझा, भाग-2, पृ 871
"रवि विधूद्भव गोहिल, झल्लकैर्व्यजन वानर याजन धारव। विविध वर्तन सवित कारणै ससमदै समदै सम् सेव्यत॥
(गगाधर रचित मडलीक महाकाव्य, सर्ग 6, श्लोक 22)

8 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 2

आकर वस गये। गजेटियर में यह भी उल्लेख है कि झाला लोग सफेद हूण जाति की एक शाखा थे, जिसने 480 से 530 ई. के मध्य में भारत पर आक्रमण किया था। उस काल में इन लोगों का भारत के उत्तरी भाग पर आधिपत्य रहा। 540 ई. में मालवा के शासक यशोधर्मन ने मुल्तान से 60 मील पूर्व में स्थित कारूर स्थान पर हुए.युद्ध में उनको पराजित करके उनके प्रभुत्त्व का अन्त कर दिया। उसके पश्चात् इन हूण लोगों ने हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया एवं क्षत्रिय वर्ग में शामिल हो गये।[9]

अंग्रेजी भाषा में ध्रांगध्रा राज्य के इतिहास के लेखक सी. मैन ने मकवाना वंश की उत्पत्ति एवं उसके नामकरण के सम्वन्ध में ऐतिहासिकता का सहारा लेने का प्रयास किया है। काल्पनिक धारणाओं को अमान्य करते हए उसने अपनी अलग व्याख्या प्रस्तुत की है। मैन का कथन है कि इस वंश का मकवाना नामकरण होने के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम, कच्छ इलाके के मध्यवर्ती ओसीला भाग का नाम 'मक' है। जव इस जाति के लोग सिन्ध की ओर से आकर यहाँ स्थायी तौर पर वस गये तो वे मकवाना नाम से जाने लगे। दूसरा, मकवाना नाम 'मोना' नाम से वना हो। मोना नाम का प्रयोग हिन्दू पुराणों में हूण लोगों के लिये किया गया है। कर्नल जेम्स टाड के मतानुसार भी महाहूण जाति ही मकवाना है। इसके सम्वन्ध में एक दिलचस्प वात यह भी है कि चौदहवी शताव्दी में 'मकवानी' नामक एक वीर जाति का हिमालय के पहाड़ी भाग में वसना पाया जाता है।[10]

निश्चय ही यह गहन शोध का विषय है कि इस जाति का नाम 'मकवाना' क्यों पड़ा? अलौकिक एवं काल्पनिक वातें मात्र ठोस ऐतिहासिकता का आधार नही वन सकती। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने मात्र अनुमान किया है कि इस वंश का प्रजनक मकवाना नाम का कोई पुरुष होना चाहिए। फिर भी यह अनुमान ही है, किन्तु ध्रांगध्रा राज्य के इतिहास के लेखक मैन का यह विचार भी ध्यान देने योग्य है कि झाला लोगों का लम्वे काल तक कच्छ प्रदेश का वह ओसीला भू-भाग निवास स्थान रहा, जो मक नाम से जाना जाता है। यह सही है कि इतिहास में कई जातियों के नाम से उनके निवास-स्थलों का नामकरण हुआ, जैसे आर्यों के नाम से भारत का उत्तरी भू-भाग आर्यावृत कहलाया। (अथवा झालों के नाम से भू-भाग का नाम झालावाड़ पड़ा)। उसी प्रकार कई जातियाँ अपने निवास-स्थल के नाम से जानी गई, जैसे सिंध प्रदेश में रहने वाली जाति सैंधव अथवा सिंधी कहलाई। इसी भाँति इस वंश के प्रजनक क्षत्रिय धर्म में दीक्षित होने के वाद सिन्ध से निकलकर कच्छ प्रदेश के 'मक' नाम वाले भू-भाग में आकर वस गये, तो वे दीर्घकाल तक निवास करने के कारण मकवाना नाम से जाने गये। किन्तु मैन

---

9 History of the Dhrangadhara State by C Mayne P 17

10 History of The Dhrangadhara State by C Mayne. P 19
मैन ने यद्यपि अपनी नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है, किन्तु 'मकवाना' नामकरण के सम्वन्ध में मैन और टॉड के उपरोक्त विचार भी कल्पना-प्रसूत ही हैं। उनको ठोस ऐतिहासिकता का आधार नहीं माना जा सकता।

की इस धारणा पर भी प्रश्नचिह्न लगता है, चूकि इस वंश के लोग कच्छ में आने से पूर्व ही 'मकवाना' नाम से जाने जाते थे तो क्या यह सभव नहीं कि उनके नाम से उस भू-भाग का नाम 'मक' पड गया हो, जैसा कि बाद में झालों के नाम से देश के कई भाग झालावाड नाम से जाने गये। मकवाना स्वयं को चन्द्रवशी होना मानते रहे हैं। ओझा जी के अनुसार विक्रम संवत् की 15वी शताब्दी के गगाधर कवि रचित मडलीक महाकाव्य से भी यही प्रकट होता है।

कुंडमाल प्रथम शासक

मकवाना वश का प्रजनक कुडमाल हुआ। उसके काल के सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नही है और न उसके एव उसके वंशजों के सम्बन्ध में कोई विशेष ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध हैं। वशावलियों में कुडमाल से लेकर उसके 36वें उत्तराधिकारी हरपालदेव तक के नाम मिलते हैं।

कुडमाल की राजधानी कुतलपुर में थी, जो उसके 17वें उत्तराधिकारी पृथ्वीमल तक रही।

कुडमाल के 18वें उत्तराधिकारी सोलडे ने कुंतळपुर त्याग कर सेखरीगढ में अपनी राजधानी कायम की, जो 28वें उत्तराधिकारी क्रतकेसर के काल तक रही।

कुडमाल के 29वें उत्तराधिकारी धनंजय ने केरूंटीगढ़ (क्रातिगढ) को मकवानों की राजधानी वनाया। जैसा कि वोम्वे गजेटियर में भी उल्लेख है—'ये लोग नगरपारकर के निकट स्थित क्रातिगढ में राज्य करते थे। क्रांतिगढ़ करेंटी अथवा केरोकोट भी कहलाता था, जिसको अव सामान्यत. काठकोट वोला जाता है। काठकोट थाल इलाके मे नगरपारकर के निकट स्थित गाँव का नाम है।'[11]

वोम्वे गजेटियर में उल्लेख है कि जव कुडमाल के 34वें वशधर विहासदेव के पुत्र केसरदेव[12] ने सिन्ध प्रदेश में लूटमार करना प्रारम्भ किया तो सिन्ध देश के राजा हमीर सूमरा ने उसके राज्य पर चढाई कर दी, केसरदेव को मार डाला और मकवानों को क्रांतिगढ़ से निकाल दिया। इस लडाई में केसरदेव के सात पुत्र खेत रहे और दो पुत्र घायल हुए। केवल एक पुत्र हरपालदेव ही वहाँ से सुरक्षित वचकर निकल सका। हरपालदेव 1040 ई में वहाँ से निकल कर अत में गुजरात चला आया और पाटन के राजा कर्णदेव सोलकी (1063-1093 ई) के पास आकर शरण ली।

---

11 History of The Dhrangadhara State by C Mayne P 23-24
कच्छ भू-भाग मे भी नगरपारकर नामक गाव विद्यमान है, जिसके निकट किसी प्राचीन नगर के खडहर दिखाई पड़ते हैं।

12 Indian Princes and the Crown पुस्तक मे केसरदेव को कुडमाल का 52 वा वशधर बताया गया है।

पाटन के राजा कर्णदेव वाघेला (सोलंकी) ने हरपाल देव को अपनी सेवा में रख लिया और उसकी सेवा से प्रसन्न होकर उसको पाटड़ी की जागीर प्रदान की। उसके बाद कुंडमाळ वंशी मकवानों की राजधानी पाटड़ी हो गई।

हरपाल देव — पाटड़ी राजधानी

हरपालदेव को जागीर किस भाँति प्राप्त हुई, उसके सम्बन्ध में एक रूपक कथा के रूप में जनश्रुति चली आती है, जिसका वृत्तान्त गुजराती भाषा में प्रकाशित राजकवि नाथूरामजी सुंदरजी कृत वृहद् ग्रंथ 'झालावंश-वारिधि' में दिया गया है।[13] इसके अनुसार हरपाल क्रांतिगढ़ छोड़कर गुजरात में अणहिलवाड़ा पाटन की ओर रवाना हुआ। उसको कुछ वड़वा राजा कर्ण का भानेज वताते हैं और कुछ उसको कर्ण का मासी भाई वताते हैं। मार्ग में उसकी प्रतापसिह सोलंकी से भेंट हुई। वह हरपाल को पाटन में अपने घर लाया, जहाँ उसकी भेंट उसकी सुन्दर कन्या से हुई जो शक्तिरूपा अथवा अमानुपीय देवीगुण सम्पन्न थी। हरपाल ने राजा कर्ण से भेंट की। परिचय पाकर कर्ण ने उसको अपने दरवार में रख लिया। उस समय राजा कर्ण की रानी को वावरा नामक भूत की प्रेतात्मा ने त्रस्त कर रखा था। जव राजा कर्ण सिरोही से विवाह करके लौट रहा था तो मार्ग में पालकी में वैठी देवड़ी रानी के इत्र की शीशी एक ऐसी जगह फूट गई जहाँ वावरा भूत का निवास था। इत्र उसके मस्तक पर गिर गया और वह रानी के साथ पाटन आ गया। तव से वह रानी को सता रहा था। हरपाल स्वयं 'शंकर का अंशावतार' था। उसने भूत को मारने का निश्चय किया। काली चतुर्दशी (कार्तिक कृष्णा 14) के दिन वह राजा कर्ण के साथ उसके महलों में गया, जहाँ उसने वावरा भूत के साथ द्वंद्व युद्ध किया। उस समय प्रतापसिंह सोलंकी की देवीअंश वाली चमत्कारी कन्या की शक्ति भी अदृश्य रूप से उसकी मदद को पहुँच गई। शक्ति की मदद से हरपाल ने वावरा को परास्त कर दिया और उसका मस्तक काटने लगा। उस समय भूत ने हरपाल से उसकी जान वक्षने की प्रार्थना की और यह वचन दिया कि वह रानी को मुक्त कर देगा और आगे से वह उसका सहायक वन कर काम करेगा। हरपाल ने वावरा को छोड दिया।[14] उसके वाद हरपाल देवी हेतु वलिदान के लिये श्मशान गया जहाँ उससे शक्तिदेवी भैरवी प्रसन्न हुई और वर माँगने को कहा। हरपाल ने देवी भैरवी से विवाह करने की माँग की। इस पर भैरवीदेवी ने प्रतापसिह सोलंकी के घर जाकर उसकी शक्तिरूपा कन्या से विवाह करने के लिये कहा। भैरवी वही शक्तिरूपा थी।

---

13 (क) श्री झाला-वश-वारिधि (गुजराती) ले नाथूरामजी सुदरजी, पृ 384-475

(ख) J W. Weston कृत Bombay Gazetteer श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा और A History of the Dhrangadhra State by C Mayne मे यही कथा कुछ भिन्नता लिये हुई दी गई है।

14 राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि प्रदेशो में मध्यकाल में ऐसे चमत्कारी शक्ति वाले पुरुप एव स्त्रिया हो गई हैं, जिनमें देव अथवा देवी का अश होना माना गया। झाला लोग वावरा प्रेत को कार्तिक कृष्णा 14 को नैवेद्य चढ़ाते हैं। वे इस दिवस को कालीचवदस वोलते हैं।

हरपाल ने शक्ति से विवाह कर लिया। इस भाँति भैरवी उसकी धारेचा पत्नी बन गई।[15]

उधर कर्ण ने हरपाल को उसकी रानी को प्रेतात्मा से मुक्ति दिलाने के बदले कुछ दान माँगने को कहा। इस पर शक्ति के कथनानुसार हरपाल ने उत्तर दिया कि एक रात में आपके राज्य के जितने गाँवों में तोरण बाँध दूँ, वे गाँव मुझको बक्षे जावें। राजा ने मंजूर कर लिया। हरपाल ने शक्तिदेवी और बावरा भूत की मदद से एक रात्रि में पाटडी सहित 2300 गाँवों में तोरण बाँध दिये। राजा को अपने वचन के अनुसार वे सभी गाँव हरपाल को देने पड़े। इससे राजा घबडा गया, चूंकि उस राज्य का अधिकांश भाग हरपाल के पास चला गया था। राजा का यह हाल देखकर हरपाल ने भाल इलाके के पाँच सौ गाँव उसकी भाभी फूला रानी अर्थात् राजा कर्ण की पत्नी को 'कापडा' के उपलक्ष्य में वापस लौटा दिये।[16]

इस रूपकमय काल्पनिक कथा के पीछे यह आधार रहा होगा कि हरपाल ने राजा कर्ण को किसी संकट से मुक्ति दिलाने में सहायता की। ध्यातव्य है कि सौराष्ट्र में समुद्र किनारे का एक भाग बाबरियावाड़ कहलाता है, जहाँ के निवासी आदिवासी भील हैं। संभवतः उस समय उन लोगों का मुखिया बावरा नाम का कोई बलशाली व्यक्ति रहा हो, जिसने राजा कर्ण और उसके परिवार के लिये भारी संकट पैदा किया हो। हरपाल ने बावरा और उसके लोगों को वश में करने हेतु किसी चमत्कारी उपाय का सहारा लिया हो। आदिवासी लोग अलौकिक एवं चमत्कारिक बातों में अधिक विश्वास रखते हैं।[17] इस प्रयोजन में हरपाल की 'शक्तिरूपा' सोलंकणी पत्नी ने किसी चमत्कारिक प्रयोग को सम्पन्न करने में मदद की होगी।

हलवद के बाहर श्मशान में भवानी भूतेश्वरी का मंदिर है, जिसमें बावरा भूत की मस्तक प्रतिमा विद्यमान है, जिसकी पूजा होती है।

पाटडी राजधानी बनाने के बाद हरपाल देव ने वहाँ महल, भवन आदि बनवाये, जिनके अवशेष वहाँ अभी तक दिखाई पड़ते हैं। पाटडी में निवास करने के बाद ही मकवाना वंश का नाम झाला वंश पड़ा। झाला नामकरण के सम्बन्ध में भी भाटों और बड़वों ने एक कल्पित कथा का सहारा लिया है। इसके अनुसार एक दिन राजा हरपाल देव की धारेचा पत्नी शक्ति

---

15 धारेचा बनने का सामान्य अर्थ है—स्त्री के विधवा होने पर किसी अन्य पुरुष के यहा अपनी इच्छा से पत्नी बनकर रहना अथवा स्वय का पति होते हुए भी अपनी इच्छा से अन्य पुरुष की पत्नी बन कर रहना। इसमें विवाहिता बनना नहीं है। यहा पर आशय यही है कि जब हरपालदेव ने अपनी तपस्या द्वारा देवी भैरवी को प्रसन्न कर दिया तो देवी अपनी इच्छा से उसकी पत्नी बनकर उसके साथ रही।—मुहता नैणसी की ख्यात, भाग-3, सपा.-बद्रीप्रसाद साकरिया, पृ 57

16 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड में कर्ण की रानी द्वारा हरपाल को अपना धर्मभाई बनाना लिखा है। जब हरपाल ने राजा कर्ण के 2300 गावों को ले लिया तो रानी ने अपने धर्मभाई हरपाल के पास जाकर उससे 'वीर पसली' (काचली) मागी। बहन का आशय समझकर हरपाल ने काचली हेतु राजा को 500 गाव लौटा दिये।

17 मध्यकाल में राजस्थान, गुजरात आदि प्रदेशों में कई चमत्कारी स्त्रिया हुई हैं, जिनके अलौकिक कार्यों के सम्बन्ध में कथायें प्रचलित हैं। राजस्थान की ऐसी देवियों में करनीजी, बरवड़ीजी, आवड़जी, रिंधिबाई, खुड़द एव सौमल की चारणी देविया प्रधान हैं।

भैरवी पाटड़ी के महल के झरोखे में वैठी हुई थी। उस समय तीन राजकुमार और एक चारण वालक झरोखे के नीचे कुछ दूरी पर खेल रहे थे। उस समय राजा का एक हाथी वंधन तोड़कर भागता हुआ उधर आया और संभव था कि वालक हाथी के पैरों तले कुचले जाते। देवी रानी ने तत्काल झरोखे में वैठे हुए अपने हाथ फैलाकर उनको ऊपर उठा (झेल) लिया। देवी रानी के इस अलौकिक कार्य से राजकुमारों की रक्षा हो गई। झेलकर रक्षा करने के कार्य को देवी सहायता का कार्य माना गया और उसके कारण आगे मकवाना झाला कहलाने लगे। झालवन शव्द का गुजराती भाषा में अर्थ ले लेना, उठा लेना, झेल लेना आदि होता है। उस समय देवी रानी ने चारण वालक को भी टप्पर (धक्का) देकर वचा लिया था। उसके कारण उस वालक की औलाद टापरिया चारण कहलाई।

मुंहता नैणसी ने भी अपनी ख्यात में 'मकवाणा रजपूतां री वात' में लिखा है—'मकवानों के एक मॉ हुई। वह देवअंस (देवांशी) थी। उसने धारेचा किया था। उसका वेटा खेलने योग्य हुआ। जव वह खेल रहा था तो वह झरोखे में वैठी थी। उस समय उसने (मॉ देवी ने) नीचे खेल रहे वेटे को हाथ लम्वा कर के झाल लिया (झेलकर उठा लिया)। उस दिन के वाद वे झाला कहलाये।'[18]

अलौकिकता और काल्पनिकता से हटकर मकवाना वंश का नाम झाला पड़ने के सम्वन्ध में वोम्वे गजेटियर में एक अन्य कारण खोजने का प्रयास किया गया है, जिसको मैन ने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है। जैसा कि पहिले कहा गया है—मूल रूप में मकवाना लोग सफेद हूणों की शाखा थे। उसकी एक शाखा का नाम 'जुविया' अथवा 'ओनिया' था। उस शाखा के राजा तोरमान (450-500 ई) और उसके पुत्र मिहिरकुल (500-540 ई) ने इस हूण शाखा को उत्तरी भारत में प्रवल शक्ति वना दिया था। उनके नाम के अवशेष अव भी पंजाव के जावला (झावला) गूजरों में पाये जाते हैं। 540 ई. में मालवा के शासक यशोधर्मन के हाथों वुरी तरह पराजित होने के वाद उनकी शक्ति का ह्रास हो गया और वाद में अग्निदीक्षा लेकर उन्होंने हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया ओर वे क्षत्रियों में शामिल हो गये। तत्पश्चात् जावला नामधारी ये लोग ज्वाला अर्थात् झाला कहलाये। कवि चन्दवरदाई ने भी पृथ्वीराज रासो में श्लेष अलंकार का प्रयोग करते हुए (मेवाड़ के) राणा के वलशाली झाला सरदारों को 'धधकती अग्नि की ज्वाला' सम्वोधित किया है।[19]

रानी शक्तिदेवी भैरवी का देहान्त 1115 ई. में होना माना जाता है। तव से झाला लोग अपनी इस कुलदेवी 'आदमाता' अथवा 'शक्तिमाता' की पूजा करते आये हैं। ध्रांगध्रा और हलवद दोनों स्थानों पर शक्तिदेवी के मंदिर हैं, जहाँ उसकी विशेष पूजा-अर्चना होती है। हलवद में किसी झाला दम्पत्ति का विवाह होने पर वे हलवद में स्थित शक्तिमाता के प्राचीन

---

18 मुहता नैणसी की ख्यात, भाग-3, सपादक वद्रीप्रसाद साकरिया, पृष्ट 57

19. History of The Dhrangadhra State by C Mayne, P 19
वीरविनोद, लेखक कविराजा श्यामलदास, भाग-2, पृ 1469-1474

मदिर में जाकर शक्तिमाता के दर्शन करते हैं और आशीर्वाद लेते हैं। वहाँ के झाला लोग शक्तिदेवी के मृत्यु के दिन को प्रतिवर्ष शोकदिवस के रूप में मनाते हैं।[20] हलवद और ध्रागध्रा में न केवल झाला राजपूत शक्तिमाता की पूजा-अर्चना करते हैं, अपितु वहाॅ के निवासी भी उसको मानते हैं। वहाॅ आदमाता नाम नही मिलता। मेवाड़ के झाला शक्तिदेवी को आदमाता के नाम से पूजते है। रानी देवी का देहान्त होने के वाद राजा हरपालदेव ने शोकाकुल होकर पाटडी छोड दिया और वह अपने अंतिम दिनो में धामा गाँव में रहा, जहाँ उसकी मृत्यु 1130 ई मे होना माना जाता है। उसके देहावसान के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र सोढा (सोढ़देव) उसका उत्तराधिकारी होकर पाटडी की गद्दी पर वैठा, जिसके वंश में आगे ध्रागध्रा का राज्य रहा।[21]

ध्रांगध्रा महाराजा मेघराजजी का मत

हलवद के इस प्राचीन झाला राजवश के पास अत में ध्रागध्रा राज्य रहा, जिसके अतिम 45वें शासक वर्तमान में महाराजा श्रीराज मेघराज तृतीय है।[22] वे प्राचीन भारतीय विद्या, साहित्य और भाषा के मर्मज्ञ विद्वान और शोधक हैं। उन्होंने अपने वश की उत्पत्ति के सम्वन्ध में गहन अध्ययन करके किसी निष्कर्ष पर पहुॅचने का प्रयास किया है। लेखक ने इसके सम्वन्ध में उनसे पत्र-व्यवहार किया। झाला-मकवाना वश की उत्पत्ति के सम्वन्ध में ध्रांगध्रा महाराजा ने अपने पत्र में अपने अब तक के निष्कर्ष के सम्वन्ध में जो विचार प्रकट किये हैं वे मौलिक हैं और उपरोक्त झाला नामकरण सम्वन्धी किम्वदतियों को अमान्य करते है। उनके मत को (उनकी अनुमति से) उसी रूप में यहाॅ उद्धृत करना समीचीन रहेगा—

"You would be all aware of an ancient people called Jhalla-Malla, झल्लमल्ल, described by manu and earlier in the Veda, as Vrātya व्रात्य When the Vedic Aryans first came across them, they were surprised that these odd people spoke the same sort of language as them, except that they said 'what was easy to pronounce difficult to pronounce and what was

---

20 History of The Dhrangadhra State by C Mayne, P 27-28

21 (क) झाला-वश-वारिधि के अनुसार वि. स 1186, चैत्रसुदी 13 के दिन शक्ति और हरपाल दोनों एक साथ धामा गाव में जाकर अन्तर्धान हुए। (पृ 518)
(ख) History of The Dhrangadhra State by C Mayne, P 28

22 महाराजा श्रीराज मेघराज तृतीय हलवद के झाला मखवान राजवश के 45 वे वशधर हैं एव धागधा के शासक रहे। वे 1942 ई में धागधा के महाराजा वने। उनके काल में रियासत भारतीय सघ मे शरीक हुई। मेघराजजी झालावाड़ (गुजरात) से लोकसभा के सदस्य रहे (1967-70 A D) । वे 1945 से 1947 ई के मध्य चेम्वर ऑफ प्रिंसेज की स्टेंडिंग कमेटी के सदस्य रहे। मेघराजजी प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय विचारो के थे और गाधीजी के वड़े भक्त थे। 1945 ई में धागधा में सौराष्ट्र की देशी लोक-राज्य-परिषद का अधिवेशन हुआ। वे सौराष्ट्र राज्य सघ के उप राज प्रमुख रहे और उन्होंने कार्यवाहक राजप्रमुख के रूप में कार्य किया (1948-52)। इसके अतिरिक्त वे कई राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की शैक्षणिक, सास्कृतिक, ऐतिहासिक एव राजनैतिक सस्थाओं के माननीय सदस्य रहे हैं।

difficult to pronounce easy to pronounce.' An earlier wave of the Indo-Aryans. The व्रात्यस्तोम of the Sukla yajur-veda was specifically designed for their admission into the Vedic Aryan fold. A fire sacrifice, such that produced Kunda Mall Dev कुण्ड मल्ल देव. The first Makhvan मखवान through the ministry and ministrations of Markandeya 'Born' king, he was obviously a powerful local cheiftain. The Barot's Bahi gives even his genealogy, up to Soma!

"The first mention of the word/name मखवान (at least such that I have been able to discover) occurs in the शतपथब्राह्मण-कांड 14, अध्याय 1, ब्राह्मण 1.

By the time of Manu, the Vrātyas (ब्रात्या) were patita (पतित) as they didn't take the sacred thread in time. But this is not the original meaning of Vrātya. The Vrātya is exalted to a godly being in Atharva Veda. Jhallas were the ruling class (I think) of the Malla nation, which undoubtedly was widespread (Malwa, Maldives). By Manu's time the Jhallas were cudgellers and Mallas, wrestlers."

"My painstaking researches indicate, and in any case I am convinced, that the Jhala-makhavanas have their origin in the Jhallas. In our earliest epigraphs, inscriptions the references are always to Jhallaraj etc, not Jhala".

ध्रांगध्रा महाराजा ने इस भाँति झाला वंश की उत्पत्ति अधिक प्राचीन काल में होना माना है। झाला आर्य वैदिक आर्यों से पहिले भारत में बस चुके थे और उन दोनों की बोली में बहुत समानता थी। झाला लोगों को वैदिक आर्यो में शामिल करने हेतु शुक्ल यजुर्वेद के व्रात्यस्तोम (स्तुति) द्वारा यज्ञ किया गया। यज्ञ में आहुति से कुण्डमल्लदेव (कुंडमाल) प्रकट हुआ (मखवान)। वह 'राजा' के रूप में उत्पन्न हुआ, अर्थात् वह एक शक्तिशाली स्थानीय शासक था। बड़वों आदि की प्राचीन बहियों में उनकी वंशावली सोम (चन्द्र) से प्रारंभ की गई है।

उनके मतानुसार 'मखवान' नाम का प्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के 14वें कांड के प्रथम अध्याय में किया गया है। मनु के काल तक व्रात्यों (झालों को व्रात्य कहा गया है) को 'पतित' माना गया, चूंकि वे 'जनेऊ' का तागा समय पर नहीं धारण करते थे। किन्तु अथर्ववेद में व्रात्यों को देवतुल्य माना गया है, पतित नही। झाला वस्तुतः मल्ल राष्ट्र के शासक थे। मल्लों का राज्य सुदूर तक (मालवा, मालदीव) तक फैला हुआ था, आदि।

इस भाँति महाराजा के मतानुसार झाला इस जाति का प्राचीन नाम था और वह यज्ञ

आर्यों के वैदिक काल में हुआ, जिसमें से कुंडमाल नामक योद्धा उत्पन्न हुआ। चूंकि कुडमाल यज्ञ से निकला था, तो उसके वशजों का नाम मखवान भी प्रसिद्ध हुआ। उनकी शोध अब तक चली आ रही मान्यता को अस्वीकार करती है, जिसके अनुसार इस जाति का प्रथम नाम मखवाना (मकवाना) पडा और बाद में झाला नामकरण हुआ।

राजा हरपाल के कई पुत्र हुए, जिनसे झाला वंश की कई शाखाए निकली। हरपाल के पुत्र मागू के वशज लीम्बडी राज्य के शासक रहे। अन्य पुत्र शेखरू (सेखराज) के वंशज वीरमगाम जिले में सचाना और चोरवडोदरा के शासक हुए। उसके अन्य पुत्रों में खवाद की सतानें खवाद झाला और खोदा की सतानें खोदासा झाला कहलाती हैं। ये लोग गुजरात में पाटन के निकट बसे हुए हैं। जोगू की संताने जागा (जागू) झाला वागड़ में बसे हुए हैं। राणा की सतानें राणक झाला हैं। बापू की संतानें मोलेसलाम झाला मांडवी के निकट पाये जाते हैं। लूणक की सतानें लूणीझाला बनारस के निकट रहते हैं। दीवान की संताने देवत राजपूत मरूदेश में मिलते हैं।[23]

सोढदेव झाला (1130-1160 ई.) से लेकर जैतसिह झाला (1420-1441 ई.) तक 24 पीढियों ने पाटडी में शासन किया। तैरहवी शती के अन्त तक, जब तक गुजरात पर सोलंकियों का शासन रहा, पाटडी के झाला उनके सामत रहे। 1025 ई. में महमूद गजनवी द्वारा गुजरात पर आक्रमण के बाद ही हरपालदेव राजा कर्णदेव सोलकी (1063-1093 ई.) के काल में उसकी राजधानी पाटन (अन्हिलवाडा पट्टन) पहुँचा था। राजा भीमदेव दूसरे (1178-1242 ई.) के पुत्र त्रिभुवनपाल को हटाकर उसी (सोलकी) वंश की बघेल शाखा के वीसलदेव ने 1243 ई. में पाटन पर अधिकार कर लिया था। 1197 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा गुजरात पर आक्रमण करने के समय गुजरात में भीमदेव का शासन था। उस समय पाटड़ी में झालकदेव झाला का आधिपत्य था। कुतुबुद्दीन भीमदेव की सेना को पराजित करके और बड़ी मात्रा में धन लेकर दिल्ली लौट गया था। उसने वहाँ अपना शासन स्थापित नही किया। अतएव भीमदेव ने पुनः पाटन पर अधिकार कर लिया था। 1299 ई में अन्तत· गुजरात सदा के लिये सोलंकियों के हाथ से निकल गया, जब दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की सेना ने अंतिम बघेल राजा कर्णदेव को पराजित करके गुजरात पर अधिकार कर लिया। उसके बाद गुजरात में मुसलमानों का शासन कायम हो गया।

1299 ई. में खिलजी आक्रमण के समय पाटड़ी में सोढदेव के बाद उसका छठा उत्तराधिकारी सूरसिंह (1280-1305 ई.) का शासन था। पाटन पर मुसलमान बादशाहों का शासन होने के बाद पाटड़ी के झाला अधिपति भी कम-ज्यादा उनके अधीनस्थ सरदार बने रहे। अत में पाटडी के उन्नीसवें झाला शासक जैतसिंह (1420-1441 ई.) को गुजरात के बादशाह ने पाटडी से बेदखल कर दिया। वह वहाँ से निकलकर कुवा (कोवा) में जाकर रहने

23 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 4

लगा। कुवा का वर्तमान नाम कीकावटी है, जो धांगध्रा से उत्तर-पश्चिम में 9 मील दूरी पर स्थित गाँव है।[24]

कोवा (कीकावटी) राजधानी

कोवा में रहते हुए सोढदेव के वाद तैइसवें झाला शासक वाघा (वाघसिंह 1479-1486 ई.) ने जूनागढ़ के तत्कालीन वादशाही सूवेदार खलीलखां को सहदापुर गाँव के निकट पराजित करके निकटवर्ती वादशाही इलाके पर कब्जा कर लिया। इस पर गुजरात के तत्कालीन वादशाह मुहम्मद वेगड़ा (1459-1513 ई.) ने चढ़ाई करके कोवा का घेरा डाला। वाघसिंह और उसके सात पुत्र 1486 ई. में इस लड़ाई में मारे गये। उनके मारे जाने के समाचार सुनकर रानियों एवं राजपूत महिलाओं ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिये कुंओं में कूदकर प्राण त्याग दिए। इस कृत्य से 'कुवानो केर' अर्थात् कुवा का विनाश कहावत प्रचलित हुई।[25]

हलवद राजधानी : राजोधर (1486-1500 ई.)

वाघसिंह का आठवाँ पुत्र राजोधर (1485-1500 ई.) कोवा से सुरक्षित निकल गया। उसने अपनी नई राजधानी हलवद वसाई। इस भाँति झाला राजवंश लुप्त होने से वच गया। राजोधर ने वि.सं.1544, माव वदी 13, तदनुसार 13 जनवरी, 1488 ई. को हलवद में अपनी नई राजधानी स्थापित की।[26]

वड़वों की पोथियों में हलवद के राजा राजोधर झाला का नाम राजधर एवं राजधीर भी लिखा मिलता है। वड़वा ईश्वरसिंह की पोथी के अनुसार राजोधर ने तीन विवाह किये। पहला विवाह उमरकोट के राजा मान सोडा की पुत्री कुशलकंवर के साथ, दूसरा विवाह ईडर के राव सोनग राठौड़ की पुत्री मानकंवर के साथ तथा तीसरा विवाह थारपार के ठिकाने के पंवार वीरम की पुत्री अखैकंवर के साथ हुआ। ईडरवाली राठौड़ रानी मानकंवर से राजकुमार अज्जा और सज्जा तथा राजकुमारी रावांकंवर उत्पन्न हुए। पंवार रानी अखैकंवर से राजकुमार राणकदेव हुआ।

---

24 वीरविनोद, ले कविराजा श्यामलदास, भाग-2, पृ 1469-1474 श्री झाला भूषण मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 7

25 उपरोक्त।
History of The Dhrangadhra State by C Mayne, P. 56-59.

26 History of The Dhrangadhra State by C. Mayne, P. 28-29.
लगभग तीन सौ वर्षो (1115-1420 ई) तक झाला राजाओं की राजधानी काठियावाड के वाहर रही, प्रधानत पाटड़ी में रही, उसके साथ धामा और मडल के नाम भी लिखे मिलते हैं। ये स्थान कच्छ की खाड़ी के दक्षिण पूर्व में हैं। गुजरात के वादशाह ने जैतसिंह को वहां से निकाल दिया। तव जैतसिंह को कोवा में जाकर रहना पड़ा। तत्कालीन गुजरात की अस्त-व्यस्त राजनैतिक परिस्थितियों, स्थानीय दवावों और मुसलमान सैनिक अधिकारियों की कार्यवाहियों की वजह से वे अतमें काठियावाड़ के उत्तरी-पूर्वी एव पूर्वी भाग में जाकर रहे, जो वाद में उनका स्थायी निवास वना रहा।

वड़वा मदनसिंह की पोथी में राजोधर द्वारा छः विवाह किया जाना लिखा है। उसमें किये गये उल्लेख के अनुसार कुंवर अज्जा गढ़ ईडरसी (ईडर) के मेघराज जाडेचा की पुत्री देवकंवर की कोख से उत्पन्न हुआ था, कुंवर सज्जा और पृथ्वीराज का जन्म गढदेवधर के पृथ्वीराज वाघेला की पुत्री सरूपकंवर की कोख से हुआ था। गढमूली के रणसिंह पंवार की पुत्री अजवकंवर की कोख से सहदेव (राणकदेव) हुआ। किन्तु वड़वा मदनसिंह की पोथी का वर्णन अधिक विश्वसनीय नही लगता। झालावश की वंशावलियों के अनुसार कुंवर सज्जा, अज्जा और कुंवरानी रावांकंवर का ईडरवाली राठोड़ रानी से उत्पन्न होना पाया जाता है। इस दृष्टि से वड़वा ईश्वरसिंह वाली पोथी अधिक विश्वसनीय है। वड़वा मदनसिंह की पोथी में ईडरसी (ईडर) के शासक का जाडेचा होना लिखा है, जो सही नही है। 1212 ई. के लगभग जव राव सीहा राठौड ने मारवाड़ में पाली आदि पर अपना आधिपत्य कायम किया, उसी समय के आसपास उसके पुत्र सोनग ने ईडर को अपने अधीन कर लिया था। राजोधर की पंवार रानी को मूली के राजा लगधीर की वेटी होना माना जाता है, जिसकी कोख से कुंवर राणकदेव हुआ, जो राजधर के वाद हलवद की गद्दी पर वैठा।[27] वड़वा पोथियों में प्राप्त एक उल्लेख के अनुसार राजकुमारी रावांकंवर का विवाह जोधपुर नरेश राव जोधा (1438-1488 ई.) के साथ हुआ था तथा दूसरे उल्लेख के अनुसार उसका विवाह जोधपुर नरेश राव मालदेव (1531-1562 ई.) के साथ हुआ। इसी प्रकार राजधर की अन्य कन्याओं मीरांकंवर और सरूपकंवर का विवाह मेवाड़ के महाराणा कुम्भा (1433-1468 ई.) के साथ होना तथा एक अन्य कन्या रतनकंवर का विवाह मेवाड़ के महाराणा रायमल (1473-1509 ई.) के साथ होना लिखा मिलता है।

वंश परम्परा के अनुसार राजोधर की वेटी रावांकंवर का विवाह जोधपुर नरेश के साथ होना माना जाता है। वह नरेश समकालीन राव जोधा (1438-1488 ई.) होना चाहिये, न कि राव मालदेव (1531-1562 ई.) जो वहुत वाद में हुआ। किन्तु मारवाड़ की ख्यातों में इस विवाह-सम्बन्ध का उल्लेख नही मिला है। इसी प्रकार राजोधर की दो कन्याओं का विवाह महाराणा कुम्भा (1433-1468 ई.) के साथ होना लिखा मिलता है, जो भी सही नही है, चूंकि राजा राजोधर का काल 1486 ई. से 1500 ई. रहा। उसकी एक कन्या रतनकंवर का विवाह मेवाड़ के महाराणा रायमल (1473-1509 ई.) के साथ होना लिखा है। यह सही है और मेवाड़ के वड़वा की ख्यातों से इसकी पुष्टि होती हैं। इसी झाली रानी से कुंवर पृथ्वीराज, जयमल और सांगा उत्पन्न हुए।[28]

---

27 वड़वा मदनसिंह की पोथी में पवार रानी से उत्पन्न कुवर का नाम सहदेव दिया गया है, वह सही नहीं है। उसमें राणकदेव का नाम का उल्लेख भी नही किया गया है, जवकि झालावश के इतिहास में राजोधर के वाद राणकदेव का उत्तराधिकारी होना पाया जाता है।

28 (क) डा. देवीलाल पालीवाल द्वारा सपादित वड़वा देवीदान की ख्यात, मेवाड़ के राजाओं, राणियों और कुवरों का हाल, पृ 6
(ख) उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, ले गौ ही ओझा, पृ 346
झालावश के प्रारम्भिक काल के राजाओं के विवाहो के सम्बन्ध में वड़वा पोथियो और वशावलियों आदि मे परस्पर विरोधी उल्लेख मिलते हैं। अधिकाश वर्णन कल्पित हैं।

राणकदेव का उत्तराधिकारी होना : अज्जा का हलवाद-त्याग (1500 ई.)

1500 ई. में राजा राजोधर झाला की हलवद में मृत्यु होने पर उसका छोटा पुत्र राणकदेव (राणोजी) हलवद की गद्दी पर वैठा। राज्याधिकारी होने की कदीम से चली आती प्रथा के मुताविक राजोधर का ज्येष्ठ पुत्र अज्जा राज्यगद्दी पर वैठने का अधिकारी था। इस नियम का उल्लंघन होने के सम्वन्ध में दो प्रकार की कथाएं परम्परा से चली आती हैं। एक कथा के अनुसार वैसा ही घटित हुआ जो मेवाड़ के राणा लाखा के काल में हुआ। लाखा के ज्येष्ठ पुत्र चूंडा ने उसके विवाह हेतु जोधपुर से आये महाराजा की पुत्री के प्रस्ताव को इसलिये अस्वीकार कर दिया था, चूंकि राणा ने विनोद में कह दिया था कि दाने (वृद्ध) लोगों के लिये कौन विवाह प्रस्ताव भेजता है। इस पर राणा लाखा को जोधपुर महाराजा की पुत्री से स्वयं विवाह करना पड़ा, किन्तु उससे पूर्व ज्येष्ठ पुत्र चूंडा को यह शर्त मंजूर करनी पड़ी कि उस विवाह से जो पुत्र होगा, वही मेवाड़ की गद्दी का उत्तराधिकारी होगा। इस पर चूंडा ने वचन देकर अपने अधिकार का त्याग किया।

एक दिन हलवद में राजा राजोधर के दरवार में मूली (मूलिया) के राजा लगधर[29] का दूत राजकुमार अज्जा के साथ उसकी कन्या के विवाह का प्रस्ताव लेकर पहुँचा। उस समय राजोधर ने हंसी में यह कहा कि मोटियारों (युवकों) के लिये तो सगपण (विवाह-प्रस्ताव) वहुत आते हैं किन्तु दाने लोगों (वृद्धों) के लिये कौन भेजता है? जव कुंवर अज्जा ने अपने पिता के इस कथन के वारे में सुना तो उसने कहा कि वह उस कन्या के साथ विवाह नहीं कर सकता, वह तो उसकी माता हो गई। अव पिताजी ही उसके साथ विवाह करें। अज्जा के इस निर्णय से विषम स्थिति उत्पन्न हो गई। सगपण के लिये आये प्रस्ताव को ठुकराना अनुचित होता, अतएव राजोधर को स्वयं इस विवाह के लिये राजी होना पड़ा। किन्तु पंवार राजा ने इसके लिये राजी होने से पहिले राजकुमार अज्जा से यह वचन ले लिया कि उसकी पुत्री से उत्पन्न होने वाला राजकुमार ही हलवद की गद्दी का वारिस होगा और अज्जा को अपना अधिकार छोड़ना पड़ेगा। पंवार रानी की कोख से कुंवर राणक (राणो) ने जन्म लिया। इसके कारण जव राजोधर की मृत्यु हुई तो अज्जा के वचन के मुताविक राणकदेव हलवद की गद्दी पर वैठा और कुंवर अज्जा, सज्जा और उनके संगी-साथी हलवद छोड़कर मारवाड़ की ओर प्रस्थान कर गये।

इसी विषय में जो अन्य कथा प्रचलित है, वह इस भाँति है—राजा राजोधर की मृत्यु होने पर राजकुमार अज्जा, सज्जा तथ अन्य वांधवगण दिवंगत के दाह-कर्म हेतु श्मशान गये। उस समय पंवार रानी से उत्पन्न उनका अल्पवयस्क छोटा भाई राणक साथ नहीं गया और गढ़ में पीछे ठहर गया। उसके नाना पंवार राजा लगधीर के उकसावे और उसकी मदद से वह हलवद की गद्दी पर वैठ गया तथा स्वयं को हलवद नरेश घोषित कर दिया। लगधीर ने गढ़ के दरवाजे वन्द करवा दिये। जव अज्जा तथा अन्य वांधव दाह-कर्म सम्पन्न करने के वाद लौटे

---

29 इसके वीरम और रणसिंह नाम भी लिखे मिलते हैं।

तो उन्होंने गढ़ के फाटक वन्द देखे। उसी समय राणक ने गढ के भीतर से कहलाया कि वह गद्दी पर बैठ गया है ओर वे लोग हलवद छोड़कर अन्यत्र चले जावें। इस परिस्थिति में राणक से लडाई करने की बात पर विचार नही करके अज्जा और सज्जा अपने सहयोगी सगी-साथियों को साथ लेकर सीधे गुजरात के सुलतान के पास जाने हेतु अहमदावाद के लिये रवाना हो गये। उस समय अज्जा और सज्जा के साथ अन्य लोगों के अलावा राज्य का दसौंदी, टापरिया चारण रामधर, शार्दूलसिंह, वारहठ सामंतसिंह सहित लगभग चार सौ अश्वारोही राजपूत थे। जव तक वे अहमदावाद पहुँचते, उससे पहिले ही पंवार राजा लगधीर ने राणकदेव की ओर से गद्दी पर वैठने के नजराणे के दो लाख रुपये और मजूरी हेतु अर्जी सुलतान के पास पहुँचा दिये। वादशाह ने अपनी मंजूरी भिजवा दी। इसके परिणामस्वरूप अज्जा को अहमदावाद के सुलतान से किसी प्रकार की सहायता नही मिली।[30] वे वहा से ईडर होते हुए जोधपुर पहुँचे, जहाँ मारवाड़ के शासक राव सूजा (1492-1515 ई.) ने झाला भ्राताओं और उनके साथी राजपूतों की आवभगत की। राव सूजा ने उनको मारवाड़ में उनके भरण-पोषण के लिये जागीर प्रदान की, जो भूमि झालामंड कहलाई। किन्तु वे मारवाड में अधिक समय तक नहीं टिक सके। राव सूजा द्वारा अज्जा की कन्या से विवाह करने की इच्छा प्रकट करने पर, अज्जा अप्रसन्न हो गया और वह अपने भाई सज्जा तथा अन्य वाधवों एव राजपूतों के साथ अपने वहनोई मेवाड़ के महाराणा रायमल के पास कुम्भलगढ़ चला आया।[31]

30 History of the Dhrangdhra State by C Mayne, p 69

वड़वा पोथी में लिखा मिलता है कि उस समय जोधपुर में राव जोधा शासन करता था। किन्तु यह सही नही है, चूकि उस समय राव सूजा (1492-1515 ई) था। राव जोधा का जन्म 1416 ई में हुआ और उसका शासनकाल 1489 ई तक रहा। राव मालदेव का जन्म 1521 ई में हुआ और उसका शासन 1532 से 1562 ई तक रहा।

31 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, ले गौ ही ओझा, पृ 341

महता सीताराम शर्मा ने अपनी पुस्तक श्री झाला-भूपण-मार्तण्ड में लिखा है कि अज्जा ने जोधपुर नरेश जोधा के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने से इसलिये इन्कार किया, चूकि उसकी वहिन रावा वाई का विवाह पहिले से उसके साथ हो चुका था। लेकिन यह कथन सही प्रतीत नही होता, चूकि झाला अज्जा के मारवाड जाने से पहिले 1489 ई में राव जोधा की मृत्यु हो चुकी थी और उसके मारवाड़ पहुँचने के समय उसका पौत्र राव सूजा मारवाड़ की गद्दी पर आसीन था। अज्जा की वहिन रावावाई का विवाह राव जोधा के साथ होना सही माना जा सकता है। जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है कि हलवद के राजा राजोधर की एक पुत्री रतन कवर, जो अज्जा की एक अन्य वहन थी, का विवाह मेवाड़ के राणा रायमल के साथ हुआ था, जिसकी कोख से कुवर पृथ्वीराज, जयमल और सागा उत्पन्न हुए थे।

महता सीताराम शर्मा ने यह भी लिखा है कि जव अज्जा ने हलवद छोड़ा, उस समय उसके साथ चौदह सहस्र सेना थी, जो अतिशयोक्ति प्रतीत होती है।

अध्याय – 3

अज्जा का मेवाड़ आना और खानवा की लड़ाई (1527 ई.) में आत्म-बलिदान

मारवाड़ में अस्थायी निवास

1500 ई में अपने पिता हलवद के झाला राजा राजोधर की मृत्यु के बाद राजकुमार अज्जा अपने भ्राता सज्जा, वाधवो, सम्वन्धियो और अन्य संगी-साथियो को लेकर पहले अहमदावाद गया। वहाँ से निराश होकर ईडर होता हुआ मारवाड की ओर गया। मारवाड के राठोड़ शासक उसके सगे-सम्बन्धी थे। उसकी वहन रावाकंवर का विवाह जोधपुर के महाराजा राव जोधा के साथ हुआ था। उस समय जोधपुर में राव सूजा शासन करता था। राव सूजा (1492-1515 ई.) राव जोधा का पौत्र एवं राव सातळ का पुत्र था। राव सूजा ने अज्जा और उसके साथी राजपूतों का बड़े सम्मान के साथ स्वागत किया और अज्जा और सज्जा को पचास हजार की आय की एक वड़ी जागीर मारवाड राज्य में उनके भरण-पोषण के लिये प्रदान की। उनकी जागीर वाला इलाका झालामड[1] के नाम से प्रसिद्ध हुआ। किन्तु वे मारवाड़ में पॉच वर्षो से अधिक नही ठहर सके। उन्होंने मारवाड क्यों छोडा ? इसके सम्बन्ध में केवल एक ही कारण लिखा मिलता है कि जोधपुर नरेश ने अज्जा की पुत्री से विवाह करना चाहा। सामान्यत. इस प्रकार के सम्वन्ध स्वागत योग्य होते है और जोधपुर नरेश के साथ अज्जा की पुत्री का विवाह सभी प्रकार से अज्जा के अनुकूल था। किन्तु किसी कारणवश अज्जा को यह मजूर नही हुआ। राव सूजा का प्रस्ताव नामजूर करना उसका अपमान करना था, अतएव 1506 ई में अज्जा, सज्जा और सभी सगी-साथी लोगों ने मारवाड़ छोड दिया और अपने बहनोई मेवाड के महाराणा रायमल (1473-1509 ई.) के आमंत्रण पर उसके दरबार में जाने का निश्चय कर कुम्भलगढ़ चले आये। चूकि अज्जा और उसके साथी मारवाड़ राज्य छोड़कर मेवाड़ में जाने वाले थे, अतएव स्वाभाविक तौर पर अज्जा ने इस आशय की अर्जी पहिले महाराणा रायमल के पास भिजवाई होगी। 1511 ई. में महाराणा सागा द्वारा झाला अज्जा और सज्जा को दिये गये पट्टे[2]

1 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, ले गौ ही ओझा, पृ 341

2 देखें, पाद-टिप्पणी स 10

से यह प्रकट होता है कि उस समय झाला भ्राताओ को मेवाड में बुलाने एव जमाने में डूगरपूर के तत्कालीन महारावल उदयसिह[3] और रावत चूंडा के पौत्र एवं बेगू ठिकाने के रावत रत्नसिह[4] ने बड़ी सहायता की।

मेवाड़ में अजमेर की जागीर प्राप्त होना—

महाराणा रायमल ने अपने साले हलवद के राजकुमारो का बड़ी आवभगत के साथ कुम्भलगढ में स्वागत किया। उनको हलवद राज्य के राजकुमार होने की दृष्टि से अपने दरबार में ऊची पद-प्रतिष्ठा प्रदान की। उनको मेवाड़ के अव्वल दर्जे के सरदारों के बराबर सम्मान एवं जागीर आदि दिये। श्री झाला भूषण मार्तण्ड में उल्लेख है कि महाराणा ने अज्जा को अजमेर की जागीर प्रदान की। थोड़े ही काल के बाद अपनी राजकुमारी का विवाह मेदपाटेश्वर के साथ करके उसने अपने भ्राता के साथ अपनी राजधानी अजमेर की ओर प्रस्थान किया।[5]

हलवद (गुजरात) से आये झालावंशी भ्राताओं का मेवाड़ के महाराणा द्वारा इतना बड़ा सम्मान करना और अपने दरबार में बड़े भाई अज्जा को अव्वल दर्जे का जागीरदार बनाना मेवाड़ राज्य के इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई। आगे चलकर अज्जा के वंशजों ने मेवाड़ राज्य की रक्षार्थ जो बलिदान किये, वे मेवाड के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिपिबद्ध हैं। अज्जा के बाद की उसकी हर पीढ़ी ने मेवाड और उसके महाराणा की हर प्रकार

---

3 डूगरपुर महारावल उदयसिह (1498-1527 ई) मेवाड़ के महाराणाओं का बहुत सहयोगी रहा। उसने महाराणा रायमल और सागा दोनो का लड़ाईयों में बराबर साथ दिया और 1527 ई में सागा की ओर से लड़ता हुआ खानवा की लड़ाई में मारा गया।

4 रावत रत्नसिह प्रसिद्ध रावत चूडा का पौत्र और रावत काधल का पुत्र था। उसने महाराणा रायमल का माडू के सुलतान गयासुद्दीन के सेनापति जफरखा के विरुद्ध लड़ाईयों में साथ दिया और खानवा की लड़ाई मे महाराणा सागा की ओर से लड़ते हुए काम आया।

5 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले सीताराम शर्मा, पृ 5

इतिहासकार गौ ही ओझा के इतिहास-ग्रथ उदयपुर राज्य के इतिहास तथा कविराजा श्यामलदास के वीरविनोद इतिहास-ग्रथ में झाला भ्राताओं को अजमेर की जागीर दिये जाने का उल्लेख नही है। बडवो के उल्लेख के आधार पर महता सीताराम शर्मा ने महाराणा द्वारा उनको अजमेर की जागीर प्रदान करने का उल्लेख किया है। महाराणा कुम्भा के काल मे अजमेर मेवाड़ के अधीन था। कुम्भा के अतिम वर्षो मे उस पर मुसलमानो का दखल हो गया था। किन्तु महाराणा रायमल के काल में उसके बड़े पुत्र कुवर पृथ्वीराज ने लल्ला खा को मारकर पुन अजमेर को मेवाड़ के अधीन कर लिया था (वीरविनोद, पृ 346-347, Maharana Sanga by H B Sarda, P 25-28)। महाराणा सागा द्वारा प्रदान पट्टे के अनुसार अज्जा को अजमेर के निकट 325 गाव जागीर में दिये गये थे। वीरविनोद में राणा रायमल के काल में अज्जा को सादड़ी दिया जाना लिखा है। (पृ 136) वस्तुत सादड़ी उसके वशजो को बाद में मिला।

श्री झाला भूषण मार्तण्ड का यह उल्लेख विश्वसनीय नही लगता कि अज्जा ने अपनी पुत्री का विवाह महाराणा रायमल से किया, चूकि महाराणा उनका बहनोई था। साथ ही इस बात का अन्यत्र कही उल्लेख नही मिलता। अज्जा द्वारा जोधपुर महाराजा से अपनी पुत्री का विवाह करने से इन्कार करने का कारण भी यही था और जिसके कारण वह जोधपुर से चला आया था।

से सेवा की और शत्रुओं का मुकावला करने में सदैव आगे रहे। इतिहास की सर्वाधिक चिरस्मरणीय वात यह है कि अज्जा के एक के वाद एक क्रमागत छः उत्तराधिकारियों ने मेवाड़ की रक्षार्थ रणक्षेत्र में आत्माहुति दी। सम्भवतः ऐसा उदाहरण अन्यत्र नही मिलेगा।

मेवाड़ की जागीर-व्यवस्था

मेवाड़ की जागीरदारी (सामंती) प्रथा कुछ वातों में अन्य राजपूत राज्यों से भिन्न रही। मेवाड़ के वड़े एवं अव्वल जागीरदारों में मेवाड़ के महाराणा के सिसोदिया वंशी चूंडावत, शक्तावत, राणावत जागीरदारों के अलावा अन्य राजपूतवंशी झाला, चौहान, राठोड़, पंवार, डोडिया कुलों के जागीरदार भी शामिल रहे। इतना ही नही मेवाड़ के सोलह वड़े जागीरदारों में झाला एवं चौहान सरदार पद-प्रतिष्ठा एवं मान-सम्मान में सिसोदियावंशी चूंडावतों एवं शक्तावतों से भी ऊपर रहे। यह स्थिति अन्य राजपूत राज्यों जोधपुर, वीकानेर, जयपुर, कोटा, बूँदी, जैसलमेर आदि से भिन्न रही, जहॉ राजवंशी सरदार ही वड़े उमरावों में अव्वल रहे। इन राज्यों में प्रायः राजवंश के भायप लोग ही राज्य के सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय करते थे, जवकि मेवाड़ में ऐसे मामलों में विभिन्न राजपूतवंशी खांपों का हाथ रहता था। परिणामतः मेवाड़ की राजनीति और कूटनीति अधिक संतुलित एवं दूरदर्शितापूर्ण रही। जिन राज्यों में राजवंश की खांपों (भायपों) की प्रवलता रही, वहाँ वंशाधिकारों को लेकर आपस में झगड़े चलते रहे, गृह-युद्ध होते रहे और पिता, पुत्र, भाई एक दूसरे के शत्रु होकर मरते-मारते रहे। ऐसा मेवाड़ में वहुत कम हुआ। भायपों की प्रवलता के कारण उन राज्यों में केन्द्रीय शासन सदा कमजोर रहा, गुटवाजी से प्रभावित रहा और शासकगण अधिकांशतः स्वयं शक्तिशाली एवं प्रभावकारी न होकर प्रवल गुट के हाथों में कठपुतली रहे अथवा योग्य शासक होने पर भी उनको प्रवल गुट का सहारा लेकर चलना पड़ा। मेवाड़ में भी जागीरदारी प्रथा की स्वाभाविक कमजोरियाँ रही, किन्तु उपरोक्त विशेपता के कारण मेवाड़ राज्य का केन्द्रीय शासन और महाराणा सामान्यतः शक्तिशाली और प्रभावशाली रहे। मेवाड़ में योग्य शासकों पर उनके भायप अनुचित दवाव नही डाल सके तथा गलत रूप से प्रभावित नही कर सके। योग्य शासकों ने अन्य वंश के जागीरदारों की सहायता द्वारा अपने दरवार में शक्ति-संतुलन वनाये रखा और सभी के वीच एकता, सदभाव, समन्वय और सहयोग की भावनाएं वनाये रखी। इसके परिणामस्वरूप एक ओर राज्य में आंतरिक शांति और व्यवस्था वनी रही, दूसरी ओर वाहरी आक्रमण का मुकावला करने में सभी राजपूत कुलों ने वढ़-चढ़कर एवं प्रतिस्पर्धा की भावना से भाग लिया। अवश्य ही, पतनकाल (18 वीं शती) के दौरान कमजोर और अयोग्य शासकों के काल में जागीरदारी प्रथा की वुराइयां उभरकर आ गई, जिसके भारी दुष्परिणाम मेवाड़ के इतिहास में देखने में आते हैं। यह स्थिति विशेषतः मराठों के प्रभुत्व के दौरान दृष्टिगत होती है।

समय-समय पर प्रधानतः महाराणा लाखा, रायमल और महाराणा सांगा के काल में और वाद में महाराणा उदयसिंह के काल में भिन्न-भिन्न राजपूत कुलों के लोग मेवाड़ के महाराणाओं की शरण में आकर उनकी सेवा करने लगे। इसी क्रम में डोडिया, झाला, चौहान, पंवार, सोलंकी,

राठोड़ आदि कुलो के लोग मेवाड़ मे प्रविष्ठ हुए। उसी काल में कई मुसलमान अमीर, उमराव आदि भी महाराणा की शरण मे आये। महाराणा ने उनका स्वागत किया और उनकी शक्ति और गरिमा के अनुसार उनको पद-प्रतिष्ठा और जागीर प्रदान किये। प्रायः ऐसा भी होता था कि आगन्तुक राजपूतकुल के लोगों को मेवाड़ राज्य से सटे हुए किसी भू-भाग अथवा मेवाड़ राज्य की अधीनता से निकल गये भू-भाग अथवा महाराणा के विरुद्ध विद्रोह करके स्वतत्र होने की चेष्टा कर रही किसी राजपूत-खाप को हराकर उसके अधीन भू-भाग पर कब्जा करने का महाराणा द्वारा दायित्व दिया जाता था। उस दायित्व को सम्पन्न करने के बाद महाराणा द्वारा वह भू-भाग उनको पट्टा देकर जागीर में दिया जाता था। नये जागीरी पट्टे देने के अधिकार के अलावा पट्टा अदल-बदल का अधिकार महाराणा के पास सदा बना रहा, जबकि वह आवश्यकतानुसार अथवा स्वेच्छा से एक जागीरदार से उसकी जागीर ग्रहण करके उसको दूसरी जागीर दे दी जाती थी और किसी अन्य को उसकी जागीर दे दी जाती थी। कभी-कभी किसी जागीरदार को उसके किसी अपराध के कारण उसकी जागीर से पूरी तरह बेदखल कर दिया जाता था। किन्तु यह सबकुछ समय, परिस्थिति, आवश्यकता एव मजबूरी आदि के कारण ही किया जाता था। योग्य शासकों के काल में ऐस परिवर्तनो के परिणाम राज्य के हित में होते थे जबकि अयोग्य एव कमजोर शासको के काल में उनके परिणाम राज्य की बर्बादी में होते थे। राजपूत खापों मे अपनी आन-बान के लिये मर मिटने की अदम्य प्रवृत्ति होती थी। चतुर और योग्य शासक उसका उपयोग उनमें प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करके अपने राज्य की शक्ति की अभिवृद्धि अथवा सुरक्षा के लिये लिया करते थे। इसके कारण मेवाड़ के लिये कूटनीतिक और राजनीतिक परिणाम भी बडे हितकर रहे। जिस प्रकार दिल्ली, मालवा और गुजरात के मुस्लिम शासक राजपूत राज्यों से आये राजकुमारों अथवा सरदारों को अपनी सेवा मे रखकर उनका अपने राज्य के विस्तार अथवा सुरक्षा के लिये उपयोग करते थे, मेवाड़ के महाराणाओ ने भी विभिन्न प्रदेशो से आये राजपूत सरदारों को अपनी सेवा में रखा, साथ ही समय-समय पर मुस्लिम राज्यो से भाग कर अथवा रुष्ठ होकर आये मुसलमान शाहजादो एव अमीरों को भी शरण दी एव उनको सेवा मे रखा और उनका आवश्यक उपयोग किया।

मेवाड़ का गृह-कलह

महाराणा रायमल के 1473 ई से 1509 ई तक के 36 वर्षों के राज्यकाल के दौरान मालवा की ओर से मेवाड पर खिलजी सुलतानो द्वारा तीन आक्रमण किये गये। ये सभी आक्रमण झालाओं के मेवाड-प्रवेश से पूर्व हुए। प्रथम दो आक्रमण सुलतान गयासुद्दीन द्वारा किये गये, जिनमे सुलतान को मुह की खानी पडी। 1503 ई. में गयासुद्दीन के उत्तराधिकारी नासिरशाह द्वारा तीसरा आक्रमण किया गया, किन्तु उसको भी पराजित होकर लौटना पड़ा। महाराणा रायमल के राज्यकाल का उत्तरार्ध अधिकाशत गृह-कलह से त्रस्त रहा। महाराणा के पुत्र पृथ्वीराज, जयमल और सागा तथा उनके सगे-सम्बन्धी अपनी-अपनी महत्वाकाओ को लेकर आपस मे लडते रहे। सागा को अपनी जीवन-रक्षा के लिये मेवाड छोडना पड़ा। महाराणा का

ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज वडा वीर था और उसने अपने साहस और वीरता की वडी धाक जमाई किन्तु वह उसके वहनोई के कपटाचरण का शिकार हो गया। दूसरा पुत्र जयमल टोड़े के सोलकियो के हाथों मारा गया।[6]

झाला अज्जा को जागीर का पट्टा मिलने पर दोनों भ्राता अज्जा और सज्जा अपने लोगों को लेकर अजमेर के लिये प्रस्थान कर गये और वहाँ जाकर खारी नदी के किनारे स्थित गॉवों पर अपना नियंत्रण स्थापित करके वहॉ अपना शासन कायम किया। उसने सैनिकों की भर्ती करके अपनी सेना गठित की। उस समय उसने हलवद से भी वड़ी संख्या में राजपूत तथा अन्य जातियों के उपयोगी लोगों को अपनी सहायता के लिये वुलाया। उनके अजमेर की ओर प्रस्थान करने के कुछ अवधि वाद ही 1509 ई में महाराणा रायमल का देहान्त हो गया। उसके वाद उसका तीसरा पुत्र सांगा (संग्रामसिह) मेवाड़ की गद्दी पर वैठा। सांगा अपने भ्राताओं से कलह के वाद अजमेर जिले के श्रीनगर के पंवार कर्मचन्द के पास जाकर रहा था। अतएव संभव है कि झाला भ्राताओं का कुंवर सांगा के साथ मेल-मिलाप और मित्रता के सम्वन्ध पहिले से रहे हों।

महाराणा सागा (सग्रामसिंह) वि सं. 1566 ज्येष्ठ सुदी 5, तदनुसार 24 मई, 1509 ई. के दिन मेवाड़ की गद्दी पर वैठा।[7] वह मेवाड राज्य का सर्वाधिक प्रतापी राजा हुआ। उसके काल में मेवाड राज्य की सीमाओं का वडा विस्तार हुआ। वह अपने काल का सवसे प्रवल हिन्दू राजा था। उसके काल के मध्य एवं पश्चिमी भारत के अधिकांश भारतीय राजा उसके अधीन अथवा मित्र थे। कई हिन्दू राजा एवं सामत उसकी सेवा में रहते थे अथवा उसकी शरण में आकर रहे। मुसलमान शाहजादे एवं अमीरों ने भी महाराणा की शरण ली थी।

महाराणा सांगा द्वारा जागीर का पट्टा प्रदान करना

जिस समय महाराणा सांगा गद्दीनशीन हुआ, उस समय दिल्ली में लोदी वंश का सुलतान सिकंदर शाह, गुजरात में महमूदशाह वेगडा और मालवे में नासिरशाह खिलजी राज्य करते थे। उस समय दिल्ली की सलतन वहुत कमजोर और वदहाल हो चुकी थी। मालवा और गुजरात राज्यों के सुलतानों की स्थिति भी ठीक नही थी। इतिहासकार जेम्स-टाड ने भारत की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति और महाराणा सागा की शक्ति के सम्वन्ध में टिप्पणी करते हुए लिखा है—'दिल्ली सलतन टुकड़ो-टुकड़ों में विखर चुकी थी। मालवा के सुलतान गुजरात के वादशाह से मिलकर भी सागा के वीरों के आगे नही टिक सके। सांगा अस्सी हजार अश्वारोही, सात वडे राजा-महाराजा, नो राव एवं रावल तथा एक सौ चार रावत पदवीधारी सामत, पॉच सौ युद्ध करने वाले हाथियो को लेकर लडाई के मैदान मे उतरता था। आमेर और मारवाड़ के राजा उसके अधीन थे तथा ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, रायसेन, काल्पी, चदेरी, वूंदी, गागरौन, रामपुरा

6 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1. ले गौ ही ओझा, पृ 227-230

7 वही, पृ 347

1519 ई मे मांडू का सुलतान महमूद खिलजी गुजरात की सैन्य सहायता लेकर गागरोन तक चढ आया था। उस समय महाराणा ने उसके सैन्यबल को बुरी तरह कुचलकर स्वय सुलतान को कैद कर लिया और चित्तौड लाकर तीन माह तक रखा। महाराणा ने सुलतान महमूद से लडाई का खर्चा वसूल किया, माडू के राज्यचिह्न-रत्नजटित मुकुट और सोने की कमर पेटी नजराणे में ली तथा सुलातन के एक शाहजादे को ओल रखा। ऐसा करने के वाद महाराणा ने सुलतान को रिहा किया। इस समय तक रणथम्भोर, सारगपुर, भिलसा और चदेरी सहित मालवा के इलाके महाराणा के अधीन हो गये थे।[13] सांगा के राज्यकाल मे मेवाड की सीमा उत्तर में बयाना के निकट पीलाखाल नदी तक, पूर्व में सिन्द नदी तक, दक्षिण में मांडू की सीमा तक और पश्चिम मे सम्पूर्ण अरावली भू-भाग तक फैली हुई थी।[14] 1520 ई में महाराणा सांगा के हाथों बुरी तरह पराजित होने के वाद गुजरात के वादशाह मुजफ्फर ने माडू के सुलतान को मिलाकर पुन महाराणा से लडने की योजना वनाई और उसकी सेनाए मंदसोर तक पहुँची, किन्तु महाराणा स्वय सेना लेकर मन्दसोर के निकट नान्दसा गॉव तक आ पहुॅचा। इस पर शत्रु मेनाओं में हडकम्प मच गया और वे विखर कर लौट गई।[15] इन सभी लड़ाईयों में महाराणा का साथ देने वाले उसके सैनिक सरदारों के नामों का उल्लेख नही मिलता, फिर भी यह निस्सदेह है कि तत्कालीन सामतीप्रथा की रीति एवं व्यवस्था के अनुसार उसके सभी जागीरदार अपने अपने सैन्यवलों, अश्वारोहियों एव पैदल सिपाहिओं को साथ लेकर महाराणा के साथ रहे। निश्चय ही अजमेर से झाला भ्राताओं ने अपने वाधवों और राजपूत सैनिको के साथ महाराणा की सेना के साथ सभी लड़ाईयों में भाग लिया।

इस भॉति 1527 ई. में मेवाड का महाराणा सागा विस्तृत भू-भाग पर शासन करने वाला तत्कालीन उत्तरी एवं मध्यभारत का सर्वाधिक वलशाली एवं प्रतापी राजा था। इतना होने पर भी सागा ने कभी दिल्ली के मुस्लिम साम्राज्यों के नमूने पर सिसोदिया अथवा राजपूत साम्राज्य की कल्पना नही की। उसने इस प्रकार कभी नही सोचा और उसके कारण कोई योजना नही वनाई। उसका विस्तृत राज्य एवं अधीनस्थ प्रभाव क्षेत्र रहा, जो वादशाह वावर के विरुद्ध खानवा के युद्ध में महाराणा सागा के झडे के नीचे एकत्र राजाओ एवं सामतों की उपस्थिति से प्रकट होता है। वस्तुत महाराणा सागा तत्कालीन राजपूत एव हिन्दू राज्यो के सध का सिरमौर था।

सांगा का बाबर के साथ युद्ध

सोलहवी शताब्दी के प्रारंभिक काल की उत्तरी-पश्चिमी भारत की अस्थिर एवं अस्त-व्यस्त

---

13 Tuzk-i-Babari translated by Beveridge, P 483, 613
वीरविनोद, ले श्यामलदास, पृ 357
उदयपुर राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 354-355
Maharana Sanga by Harbilas Sarda, P 74

14 Annals and Antiquities of Rajasthan by James Tod, P 241

15 उदयपुर राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 357

राजनैतिक स्थिति तथा दिल्ली में लोदी वश के शासन की दुर्वलता और शासकवर्ग की पारस्परिक फूट एवं लड़ाई-झगड़े का फायदा उठाकर तुर्किस्तान के फरगना का वादशाह वावर एक वड़ी सेना एकत्र करके दिल्ली पर चढ़ आया और 20 अप्रेल, 1526 ई. के दिन पानीपत के मैदान में वादशाह इव्राहीम लोदी को पूरी तरह पराजित कर उसने दिल्ली पर कव्जा कर लिया। आगरा आदि आसपास के स्थानों पर अधिकार करके वावर महाराणा सागा से लडने हेतु आगे वढ़ा। मध्यएशिया में वावर ने वहुत उतार-चढ़ाव देखे थे और उसकी स्थिति सदैव अस्थिर रही थी। इसलिये वह भारत में अपना स्थायी साम्राज्य वनाना चाहता था। इस दृष्टि से महाराणा सांगा के साथ होने वाली लड़ाई को वह अपने भाग्य एवं भविष्य के लिये निर्णायक मानता था, जो उसके लिये जुए के समान था। इस लडाई के परिणाम पर उसका भारत में रहना अथवा लौट जाना निर्भर करता था। सांगा उसकी मंशा समझ गया और उसका इरादा वावर को भारत में अपना साम्राज्य स्थापित नही करने देना था। अतएव महाराणा सांगा वादशाह वावर से लड़ने हेतु अपनी विशाल सेना लेकर अपने राज्य के सीमा-स्थल वयाना आकर ठहरा।[16]

इस लड़ाई में शामिल होने के लिये महाराणा की सेना में हसन खॉ मेवाती और इव्राहीम लोदी का पुत्र महमूद लोदी भी अपनी सेनाओं सहित आ मिले। मारवाड़ के राव गांगा की ओर से मेड़ता का वीरमदेव राठोड़, रायमल और रतनसिंह राठोड़, आवेर का राजा पृथ्वीराज कछवाहा, ईडर का राजा भारमल राठोड़, डूंगरपुर का रावल उदयसिंह, वीकानेर का कुंवर कल्याणमल, देवलिया का रावत वाघसिह, चंदेरी का मेदनीराय, गागरोन का शत्रुसेन खीची नरसिंह देव, झाला अज्जा और सज्जा, चन्द्रभाण चौहान और माणिकचन्द चौहान, रावत रतनसिह, भूपतराय, कर्मसिंह, डूंगरसिंह, कांधलोत, रावत जोगा सारंगदेवोत, नरवद हाड़ा, वीरसिंह देव सोनगरा रामदास, दिलीपराय परमार, गोकुलदास, खेतसी तथा मेवाड़ के अन्य बड़े-छोटे जागीरदार महाराणा की सेना में अपने-अपने सैन्यबल लेकर शरीक हुए। महाराणा की सेना में एक लाख वीस हजार घुड़सवार सैनिक थे। वावर की सेना में लगभग साठ हजार अश्वारोही सैनिक थे।[17]

17 मार्च, 1527 ई. के दिन प्रात खानवा के मैदान में दोनों सेनाओं के मध्य तुमुल युद्ध प्रारंभ हुआ। प्रारंभ में सांगा की सेना का पलड़ा भारी रहॉ और वावर की सेना की पराजय के आसार दिखाई दिये। किन्तु वावर के तोपखाने की भीषण मार, उसके सैनिकों का एकजूट अनुशासन, वावर की पार्श्व सैन्य टुकड़ियों द्वारा दोनों ओर से घेरकर हमले की योजना आदि वातों के कारण राजपूतों का दवाव अधिक नही चला। तोपों और वन्दूकों के विना तलवारों

---

16 Tuzk-ı-Babarı, translated by Bevendge, P. 445-446, 547
Maharana Sanga by Harbılas Sarda, P. 120
उदयपुर राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 365

17. Tuzk-ı-Babarı translated by Bevendge, P 562
Maharana Sanga by Harbılas Sarda, P 144
वीरविनोद, ले कविराजा श्यामलदास, पृ 364
उदयपुर राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 373-376

और भालों से लड़ने वाली राजपूत सेना शीघ्र ही कमजोर पड़ने लगी। उनमें एकजूटतापूर्ण युद्धनीति और अनुशासन की भी कमी थी, चूंकि वह अन्य अन्य राजाओं एव सामंतों द्वारा लाई गई सैन्य टुकड़ियों की एकत्रित संयुक्त सेना थी। महाराणा सांगा ने हाथी पर सवार होकर अपनी सेना का सचालन किया। वह सम्पूर्ण राजपूतों एवं अन्य मुगल विरोधी सैनिकों का नेतृत्वकारी केन्द्र था, जिसके रणकौशल और सैन्य सचालन की क्षमता पर सभी को विश्वास था। दुर्भाग्य से लड़ाई शुरू होने के कुछ घंटों बाद एक तीर सांगा के सिर में आ लगा और वह मूर्छित होकर हाथी के होदे मे गिर गया।[18]

सांगा का घायल होना और सेना के नेतृत्व की समस्या

इस दुर्घटना से सागा की सेना में हड़बड़ाहट मच गई। महाराणा को घायलावस्था में तत्काल युद्ध-क्षेत्र से बाहर ले जाया गया। सेना के संचालक की नेतृत्वकारी भूमिका के अभाव में महाराणा की सेना की स्थिति विषम हो गई। तत्काल यह आवश्यक हो गया कि महाराणा सागा के स्थान पर उसी के समान उच्च वशवाले किसी ऐसे रणकुशल एवं प्रभावशाली वीर योद्धा के हाथों में सेना के नेतृत्व का दायित्व दिया जाय, जो सांगा की सेना में शामिल राज्याध्यक्षों एवं सेनापतियों को नेता के रूप में स्वीकार्य हो और जिसमें इस युद्ध के संचालन की क्षमता हो। उस समय मूल समस्या यह भी पैदा हुई कि मेवाड़ के महाराणा और भगवान एकलिंग के दीवान के उच्च स्थान को ग्रहण करने की प्रतिष्ठा किसको मिल सकती थी? उस वक्त उसका दावेदार कौन था? चूंकि अस्थायी तौर पर भी उस पर आसीन होना महाराणा बनने के बराबर था। वंश की दृष्टि से रणक्षेत्र में उस समय दो दावेदार मौजूद थे। प्रथम दावेदार था सिसोदिया राजवंश की सर्वोच्च चूंडावत खांप का मुखिया रावत रतनसिंह। इसके महाराणा सांगा पर सम्मानजनक स्थान को तत्काल ग्रहण करने के लिये प्रमुख सरदारों द्वारा रावत रतनसिंह से आग्रह किया गया, ताकि राजपूत सेना में हताशा उत्पन्न नही हो और उसकी एकता और जोश बना रहे। किन्तु रावत रतनसिंह ने उसको अस्वीकार करते हुए उत्तर दिया कि मेरे पूर्वज (रावत चूंडा) वचनबद्ध होकर राज्य छोड चुके हैं और मैं क्षण भर के लिये भी राज्यचिह्न धारण करके अपने पूर्वज की प्रतिज्ञा भंग नही कर सकता, चूंकि ऐसा करना महाराणा पद पर बैठने के तुल्य है। परन्तु अन्य कोई जो मेवाड़ के राज्यचिह्न धारण करके महाराणा की जगह लेकर युद्ध का संचालन करेगा, मै पूर्ण रूप से उसके अधीन रहकर लडूंगा और प्राणार्पण करूंगा।[19]

उस समय सागा का स्थान लेने की दृष्टि से दूसरा विकल्प मेवाड़ राजवंश की वरिष्ठ रावल शाखा का प्रतिनिधि डूगरपूर का राजा रावल उदयसिह हो सकता था, जो रणक्षेत्र में मौजूद था। किन्तु वह मेवाड से अलग स्वतत्र राज्य डूंगरपुर का राजा था और उसको इस स्थान पर आसीन करना युक्तिसंगत एवं व्यावहारिक नहीं था, चूंकि ऐसा करने पर भविष्य में कई प्रकार

---

18 वही।

19 वही।

की समस्याएं एवं संकट उत्पन्न होने की संभावनाएं बन सकती थीं। इसलिये मेवाड़ के वरिष्ठ सरदारों एवं सेनापतियों ने इस विकल्प पर विचार नहीं किया।

अज्जा द्वारा सांगा का स्थान ग्रहण और प्राणार्पण

नेतृत्व के अभाव में सांगा की सेना के सेनापतियों एवं सैनिकों पर होने वाले दुष्प्रभाव की आशंका को देखते हुए निर्णय तत्काल करना था। उस समय सभी की दृष्टि मेवाड़ दरबार के उच्च पदाधिकारी एवं वड़े जागीरदार एवं काठियावाड़ के हलवद राज्य के झाला राजवश के वड़े राजकुमार, वीर एवं रणकुशल योद्धा अज्जा पर पड़ी और एकाएक सभी ने एकमत से राजराणा अज्जा से महाराणा की जगह युद्ध के संचालन का दायित्व ग्रहण करने का आग्रह किया। संकट की इस घड़ी में इन्कार करने का कोई सवाल नही था। अज्जा ने तत्काल महाराणा के राज्यचिह्न, छत्र आदि धारण किये और हाथी पर सवार होकर रणक्षेत्र में अग्रिम पंक्ति की ओर वढ़ गया।[20] उसका सारा सैन्य दल और भ्राता सज्जा, वान्धवगण उसके साथ हो गये। कुछ ही मिनिटों में यह सव कुछ घटित हो गया।

मुगल तोपखाने की अग्निवर्षा से राजपूत सेना का वड़ा विनाश हुआ। फिर भी राजपूत योद्धा प्राणों की परवाह नही करते हुए शत्रुसेना का मुकावला करते रहे। किन्तु वावर की युद्ध-योजना के अनुसार जव वावर के घेरा डालने वाली सुरक्षित सेनाओं ने राजपूत सेना के दोनों पार्श्वों पर आक्रमण किया और मध्य भाग में तोपचियों एवं वन्दूकचियों ने आगे वढकर वार किया तो उनका भारी संहार हुआ और उनकी पराजय हो गई। उनके वड़े-वड़े योद्धा खेत रहे। हाथी पर सवार राजपूत सेना का संचालन करते हुए झाला वीर योद्धा अज्जा मारा गया। उसका छोटा भाई सज्जा और पुत्र सिंहा घायल अवस्था में बच गये। वागड़ (डूंगरपूर) का रावल उदयसिंह, हसनखां मेवाती, माणकचन्द चौहान, चन्द्रभान चौहान[21], रतनसिंह कांधलोत, पाली का रामदास सोनगरा, अजमेर का गोकलदास पंवार, जोधपुर का कुंवर रायमल राठोड, रतनसिंह मेड़तिया[22], खेतसी आदि कई योद्धा लड़ाई में मारे गये।

अज्जा के वंशजों को चिरकालिक सम्मान मिलना—

झाला अज्जा ने महाराणा के सब राज्यचिह्न धारण कर युद्ध में संचालन करते हुए प्राण दिये थे। उस वलिदान के फलस्वरूप उसके मुख्य वंशधरों (सादडी के राजराणा) को महाराणा

---

20. Annals and Antiquities of Rajasthan by James Tod, P 245
Tuzk-i-Babari edited by Beveridge, P. 568-573
Maharana Sanga by Harbilas Sarda, P 146-147
वीरविनोद, ले. श्यामलदास, पृ 316
उदयपुर राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 377-379

21 चन्द्रभान चौहान और माणकचन्द चौहान दोनों पूर्व से महाराणा की सहायतार्थ आये थे। इनके वशजो में वेदला, कोठारिया और पारसोली वाले मेवाड़ के प्रथम श्रेणी के सरदारों मे रहे।

22 वह सुप्रसिद्ध मीरावाई का पिता था।

के समान राज्यचिह्न धारण करने के चिरकालिक अधिकार मेवाड़ दरबार की ओर से दिये गये, जिनका उपयोग के पीढी दर पीढी करते रहे।[23] तथा मेवाड दरबार मे उनको बड़े उमरावों मे सबसे अव्वल दर्जे की पद-प्रतिष्ठा, ताजीम और कुरब आदि मिले।[24]

खानवा-युद्ध में पराजय के परिणाम मेवाड़ के लिये बहुत घातक सिद्ध हुए। एक ओर मेवाड़ के नेतृत्व में संगठित राजपूत-संघ बिखर गया और मेवाड़ की नेतृत्वकारी शक्ति का सदा के लिये लोप हो गया। दूसरी ओर मेवाड़ की अपनी शक्ति भी कमजोर हो गई और उसके अधीन राज्य उसकी प्रभुता से बाहर हो गये। भारी विनाश के कारण आंतरिक तौर पर मेवाड के सरदारो मे एक साथ निराशा, मतभेद और साहसहीनता का वातावरण छा गया। उसके परिणामस्वरूप आने वाले समय में महाराणा सांगा के बाद योग्य नेतृत्व के अभाव में मेवाड़ को बड़े दुष्परिणाम भुगतने पडे।

मुर्छित अवस्था मे महाराणा सांगा को युद्ध-स्थल से हटाने के बाद जयपुर राज्य के बसवा गॉव मे लाया गया, जहॉ से युद्ध से जीवित बचे सरदार और सैनिक पहुॅचे। 30 जनवरी, 1528 ई को उसका देहान्त हो गया। उसका दाह-सस्कार करने के बाद राजपरिवार, सामत और अवशिष्ट सेना चित्तौड़गढ़ लौटे। अन्य घायल सरदारों के साथ झाला सज्जा और कुंवर सिहा को घायल अवस्था मे लाया गया और उनकी चिकित्सा की गई।

---

23 उदयपुर राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 376

24 अज्जा के बलिदान के सम्बध में ध्रागध्रा महाराजा श्री राज मेघराजजी के उद्‌गार उद्‌धृत करना समीचीन रहेगा—

"In the clash Sanga was struck by an arrow and the seat of command fell vacant Who was now to head the war and rally the forces ? Who was to be overlord in the battle above whom could be held the peerless insignia of Mewar, now refulgent as the standard of India ? It could only be one equal in royalty and acceptable to the equal soreraigns present in the contention The mantle of command fell on Ajoji The undisputed choice was of one vested in Kingship

"Observe here the hand of fate, the promise of chance He, who had been debarred royal pre-eminence, which was his by birth in his ancestul home, assumed imperatorial precedence by election in the very hub of India Deprived of overlord-ship of a warrior clan, he was elevated to the overlordship of embattled kings Dispossessed in a mournful pass, of the proud sovereignty of a small domain, he ascended, in a glorious moment, to the supreme of a sub-continent Denied patrimony he rose to pariotism

"Encircled by the powers and majesty of Hindustan, in the circumstances of empire at Kanhwar during the war and in the thick of it, Ajoji was overborne"

(झाला मान पुस्तक की भूमि का A Blood Offering से साभार)

अज्जा के विवाह एवं संतति—

राजराणा अज्जा ने निम्नलिखित विवाह किये थे—

प्रथम, देवकंवर सोलंकणी, डूगरसिह लूणकरण सोलंकी, गांव लसुडिया की पुत्री के साथ,
दूसरा, चादकंवर मेड़तणी केसरसिह राठोड़, घाणेराव की पुत्री के साथ,
तीसरा, प्यारकंवर सराणा, जोधसिंह गाव माधुपुरा की पुत्री के साथ,
चौथा, डूंगरकंवर सोनगरी, रिडमलसिंह गांव आंवा की पुत्री के साथ,
पाचवां, मगनकंवर सिसोदिया, रावत रायमल (रायसिंह) ठिकाना देवलिया के साथ।

राजराणा अज्जा के चार पुत्र तथा एक पुत्री होने का उल्लेख मिलता है। पुत्र उतारसिंह (अवतारसिंह), सिंहा, वेरीसाल और जगमाल थे। पुत्री का नाम चांदकंवर वाई था, जिसका विवाह वूंदी के रावराजा सुरतानसिंह के साथ हुआ था।[25] प्रथम पुत्र के जीवित नही रहने से[26] अज्जा का दूसरा पुत्र सिंहा उसका उत्तराधिकारी हुआ।

---

25 वडवा मदनसिंह की पोथी के आधार पर।

26 सभव है वह खानवा युद्ध में मारा गया हो।

अध्याय - 4

मेवाड़ के अस्तित्व की रक्षा का संघर्ष और अज्जा की संतानों का बलिदान

2. राजराणा सिंहा (1527-1535 ई.)

खानवा की लडाई की पराजय के बाद मेवाड़ राज्य का विघटन प्रारम्भ हुआ। पराजय से मेवाड का शासकवर्ग निराश एव हतोत्साहित हो गया। सांगा के बाद योग्य और प्रभावशाली उत्तराधिकारी के अभाव मे इस विनाशात्मक प्रवृत्ति पर नियंत्रण नही किया जा सका। सामंत वर्ग मे मतभेद एवं फूट पैदा हो गये और महाराणा के प्रति उनकी स्वामिभक्ति की भावना मे शिथिलता आ गई।

1527 ई. के बाद तैरह वर्ष मेवाड़ राज्य के लिये भयानक संकट काल के रहे और उसके अस्तित्व के लिये ही खतरा पैदा हो गया। उससे आगे के सत्ताईस वर्ष दिल्ली, गुजरात और मालवा की मुस्लिम ताकतों के कमजोर पडने और उस ओर से मेवाड़ को बाहरी आक्रमण से खतरा पैदा नही होने से मेवाड़ के लिये अपेक्षाकृत शाति का काल रहा। किन्तु शासकवर्ग की कमजोरियो, अदूरदर्शितापूर्ण नीतियों और राजपूताने की शक्तियो से अनावश्यक लड़ाईयां मोल लेने के कारण मेवाड राज्य की गौरवपूर्ण स्थिति वापस नही लौटाई जा सकी और न राज्य को पूर्ण स्थायित्व एवं शक्ति प्रदान की जा सकी। दिल्ली में प्रबल मुगल साम्राज्य स्थापित होने के बाद पुन· मेवाड के अस्तित्व के लिये खतरा पैदा हो गया। महाराणा प्रताप के वीरतापूर्ण सघर्ष के कारण न केवल उसकी रक्षा हुई, अपितु उसको पूर्ण दासता के चंगुल से बचाया जा सका।

हलवद के झाला राजवंश को इतिहास में इस ृत का अप्रतिम गौरव मिलता है कि अज्जा से लेकर उसकी छ पीढियों के राजराणाओ अज्जा, सिहा, आसा, सुरताण, वीदा और देदा ने एक के बाद एक मेवाड राज्य की रक्षार्थ वीरतापूर्वक लड़ते हुए रणक्षेत्र में अपने प्राणार्पण किये। इतिहास में किसी अन्य क्षत्रिय वंश का इस प्रकार का कृतित्व एवं बलिदान नहीं पाया जाता। यह वश सामतो की फूटपरस्ती का शिकार नही हुआ और उसमे मेवाड़ के राज्यसिहासन

के प्रति वफादारी में कभी शिथिलता नही आई और प्रत्येक संकट के समय उसका मुकावला करने में आगे रहे। यही कारण है कि खानवा के युद्ध में अज्जा के वलिदान से मेवाड़ राज्यदरवार में उसके वंश को मेवाड़ के महाराणा के वरावर जो पद-प्रतिष्ठा मिली, मेवाड़ के सभी वड़े उमरावों में प्रमुखता प्राप्त हुई और उसको दरवारी शिष्टाचार में विशिष्ट प्राथमिकताएं एवं सर्वोच्चताएं प्रदान की गई, उन सव वातों का पीढ़ी दर पीढ़ी निर्वाह होता रहा।

खानवा के युद्ध के पश्चात् महाराणा सांगा की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र रतनसिंह 30 जनवरी, 1528 ई. को मेवाड़ की गद्दी पर वैठा। उधर राजराणा अज्जा का उत्तराधिकारी उसका पुत्र सिंहा हुआ। इस भांति सिंहा महाराणा सांगा की जीवितावस्था में ही अपनी जागीर का स्वामी वना।

महाराणा के राज्यचिह्न धारण करने के अधिकार मिलना

चित्तौड़गढ़ में महाराणा रतनसिंह की गद्दीनशीनी के समारोह में राजराणा सिंहा अपने चाचा सज्जा और अन्य वान्धवों एवं सैनिकों के साथ शरीक हुआ। इस समारोह में खानवा युद्ध में शहीद हुए योद्धाओं का स्मरण किया गया। खानवा के युद्ध में महाराणा सांगा का स्थान ग्रहण करके अपने प्राणार्पण करने वाले झाला राजराणा अज्जा को विशेष रूप से याद किया गया और उसके उत्तराधिकारी राजराणा सिंहा का भारी स्वागत-सम्मान किया गया। इस अवसर पर आयोजित दरवार में राजराणा अज्जा के वंशजों को महाराणा के वरावर प्रतिष्ठा देकर यह घोषणा की गई कि उनको पीढ़ी दर पीढ़ी महाराणा के समस्त राज्यचिह्नों, छत्रादि एवं लवाजमा को धारण करने का अधिकार रहेगा। उनके उत्तराधिकारियों से तलवारवंधाई का द्रव्य नही लिया जावेगा। उनका दर्जा मेवाड़ के उमरावों में सवसे अव्वल रहेगा और महाराणा के दरवार में उनकी वैठक महाराणा के पास दाहिनी ओर प्रथम उसके मुंह वरावर रहेगी। इसी पद-प्रतिष्ठा के अनुरूप उनकी ताजीम, कुरव आदि निश्चित किये गये।[1]

झाड़ोल का पट्टा मिलना

समारोह के इस अवसर पर महाराणा रतनसिंह द्वारा राजराणा सिंहा को अजमेर से वदलकर मेवाड़ में झाड़ोल एवं वीछीवाड़ा की जागीर का पट्टा दिया गया।[2] तथा इसी समारोह में स्वर्गीय अज्जा के छोटे भ्राता सज्जा को अलग से देलवाड़े की जागीर की पट्टा दिया गया।[3] इस भांति अज्जा और सज्जा दोनों भ्राताओं के वंशधरों के लिये अलग-अलग जागीरों का

---

1 उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, ले. गौ ही ओझा, पृ 376
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 10

2 वड़ी सादड़ी ठिकाने के प्राचीन अभिलेख।
वड़वा देवीसिंह के पुत्र ईश्वरसिंह की पोथी।

3 वड़ी सादड़ी ठिकानेके प्राचीन अभिलेख।
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 10

प्रबध हो गया। अजमेर की ओर से हटाकर मेवाड़ में उनको नई जागीरें देने का प्रधान कारण यह था कि वह इलाका खानवा युद्ध के बाद मेवाड़ राज्य के हाथों से निकल गया था। इस अवसर पर महाराणा रतनसिह ने अपनी फूफी (महाराणा सांगा की बहिन) रूपकंवर का विवाह राजराणा सिहा के साथ कर दिया, जिससे राजराणा की प्रतिष्ठा में अधिक बढ़ोतरी हुई।

जैसा ऊपर लिखा गया है कि खानवा युद्ध के बाद मेवाड़ राज्य की शक्ति बिखर गई। मेवाड के कई इलाकों पर से उसका अधिकार जाता रहा। फिर भी सुरक्षित दुर्ग रणथम्भोर मेवाड के अधिकार में बचा रहा, जहॉ महाराणा सांगा की महारानी कर्मवती अपने दो पुत्रों विक्रमादित्य और उदयसिह के साथ रहती थी। सांगा ने गृह-कलह को टालने के दृष्टि से अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व रणथम्भोर की पचास लाख की जागीर महारानी कर्मवती और उसके दो पुत्रों के नाम कर दी थी और रानी के भाई बूदी के राव सूरजमल हाड़ा को उनका संरक्षक बना दिया था। सांगा ने मालवा के सुलतान महमूद खिलजी से जो बहुमूल्य वस्तुएं सोने की क़मर पेटी और रत्नजटित मुकुट प्राप्त किये थे, वे भी महारानी के पास थीं। महाराणा रतनसिह ने चाहा कि वे वस्तुएं उसको दे दी जावें। उसके लिये रतनसिह द्वारा दबाव डालने पर उसके और बूंदी के राव सूरजमल हाड़ा के बीच वैमनस्य पैदा हो गया, जिसके परिणामस्वरूप आगे जाकर शिकार के समय उन्होंने एक-दूसरे की जान ले ली।[4]

महाराणा रतनसिह के गद्दीनशीन होते ही मालवा के सुलतान महमूद ने सांगा के हाथों अपनी हार का बदला लेने की योजना बनाई, उस समय रायसेन का सलहदी और सीवास का सिकन्दरखा उससे विद्रोह करके मेवाड़ चले आये थे। महमूद ने अपनी एक सेना मेवाड़ पर भेजी, जिसको खदेडता हुआ महाराणा सारगपुर तक जा पहॅुचा। उन दिनो मालवा और गुजरात के सुलतानो के बीच शत्रुता चल रही थी। ऐसी स्थिति में महाराणा रतनसिह और गुजरात के बादशाह बहादुर के बीच मैत्री संधि हो गई। बहादुर मेवाड़ से सैनिक सहायता लेकर मांडू पहॅुच गया और वहॉ कब्जा करके सुलातन महमूद को कैद करके अपने साथ ले गया। इस भाति मालवा का सूबा गुजरात के सुलतान के अधीन हो गया।[5]

महाराणा रतनसिह का राज्यकाल केवल तीन वर्ष ही रहा। उसने अपनी अदूरदर्शितापूर्ण नीति और कार्यवाही के कारण 1531 ई. में बूदी के राव सूरजमल हाड़ा को शिकार के समय मारने की चेष्टा की, उस समय वह स्वय भी अपनी जान गंवा बैठा।

झाड़ोल-बीछीवाड़ा का पट्टा प्राप्त करने के बाद राजराणा सिंहा अपना दलबल लेकर चित्तौड़गढ़ से मेवाड़ के पहाड़ी भाग में स्थित झाड़ोल के लिये रवाना हो गया। वहॉ जाकर

---

4 उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, ले गौ ही ओझा, पृ 393

5 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, ले गौ ही ओझा, पृ 391 । जब बहादुर शाहजादा था, वह अपने बाप मुजफ्फर से झगड़ा करके महाराणा सागा के पास चला आया था। वह महाराणा की शरण मे रहा। उस समय सागा की माता (हलवद की रूपकवर झाली) उसको बेटा कहा करती थी।

उसने अपनी शासन-व्यवस्था जमाने का कार्य शुरू किया। उसके चाचा राजराणा सज्जा ने अपनी नई जागीर देलवाड़े के लिये प्रस्थान किया।

गुजरात के बादशाह बहादुरशाह का प्रथम आक्रमण

महाराणा रतनसिह के मारे जाने पर महारानी हाड़ी कर्मवती रणथम्भोर से चित्तौड़गढ़ चली आई। रतनसिंह के निःसंतान रहने से सांगा का दूसरा वेटा और महारानी का वड़ा पुत्र विक्रमादित्य मेवाड़ की गद्दी पर वैठा। वह अल्पवयस्क था और शासन करने के लिये सर्वथा अयोग्य था। उसमें सभी प्रकार के चारित्रिक दोष विद्यमान थे। उसने अपने सामंतों के साथ दुर्व्यवहार शुरू किया और उनको अपमानित किया। इससे उनमें भारी असंतोष और विरोध भावना पैदा हो गई। कई सरदारों ने अपनी जागीर से राजधानी आना छोड़ दिया और असहयोग शुरू कर दिया। कतिपय सरदार गुजरात के वादशाह वहादुर से जा मिले।[6] उस समय तक मालवा भी वहादुर के अधीन हो गया था और उसकी शक्ति वहुत वढ़ गई थी। उसने मेवाड़ की आंतरिक फूट और दुर्व्यवस्था का लाभ उठाकर 1532 ई. के अंत में मेवाड़ पर चढ़ाई कर चित्तौड़ आ घेरा। उसने गढ़ के कई भागों पर कव्जा कर लिया। स्थिति से वाध्य होकर रानी कर्मवती ने मेवाड के अधीन मालवा के जिले तथा मालवा के सुलतान महमूद से लिये गये रत्नजटित मुकुट और सोने की पेटी वहादुर को लौटाकर मार्च 1533 ई. में उसके साथ संधि कर ली।[7] उस समय रानी कर्मवती के वुलाने पर राजराणा सिंहा अपने सैन्यदल को लेकर गुजरात की सेना से लड़ने हेतु चित्तौड़ आ पहुंचा था। मेवाड़ के राज्यसिंहासन के प्रति वफादारी की भावना रखने वाले कई अन्य सरदार भी अपनी सेनाएं लेकर चित्तौड़गढ़ आ गये थे। किन्तु अपनी कमजोर स्थिति में मेवाड़ राज्य को विनाश के संकट से वचाने हेतु महारानी ने गुजरात के सुलतान से समझौता करके उसको वापस लौटा दिया था।

इस घटना के वाद भी महाराणा विक्रमादित्य के चरित्र और व्यवहार में काई सुधार नही हुआ। मेवाड़ की आंतरिक स्थिति विगड़ती गई और विक्रमादित्य के हाथों अपमानित कई अन्य सरदार गुजरात के सुलतान के साथ सहयोग करने लगे। ऐसी स्थिति में मालवा के साथ मेवाड़ को भी अपने अधीन करने के इरादे से वह 1535 ई. में पुन चित्तौडगढ़ पर चढ़ आया।[8]

आसन्न संकट को देखकर रानी कर्मवती ने चित्तौड़गढ़ की रक्षा का वीड़ा उठाया। अकर्मण्य पुत्र महाराणा विक्रमादित्य को दूसरे पुत्र उदयसिंह के साथ अपनी ननिहाल वूंदी भेज दिया और मेवाड़ के समस्त सरदारों को तत्काल चित्तौड़गढ़ वुलाया। रानी ने उनको सम्वोधित करते हुए लिखा—"अव तक तो चित्तौड़ राजपूतों के हाथ में रहा पर अव उनके हाथ से निकलने का समय आ गया है। मैं किला तुम्हें सौंपती हूँ। चाहे तुम रखो चाहे शत्रु को दे दो। मान लो

---

6 वीर विनोद, भाग-2, ले श्यामलदास, पृ 27
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, ले गौ ही ओझा, पृ 395

7 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, ले गौ ही ओझा, पृ 397

8 वही।

तुम्हारा स्वामी अयोग्य है, फिर भी राज्य वश-परम्परा से तुम्हारा है, उसके शत्रु के हाथ में चले जाने से तुम्हारी वडी अपकीर्ति होगी।[9]"

इस आह्वान का सभी देशभक्त एवं शूरवीर सामंतों पर वाछित असर हुआ। इसके कारण मेवाड़ के अधिकांश सरदार विक्रमादित्य के प्रति अपना वैर-भाव भुलाकर मेवाड़ राज्य की रक्षार्थ अपनी-अपनी सेनाएं लेकर चित्तौड़गढ आ पहुँचे। उस समय चित्तौड़गढ राजस्थान के सभी राजपूतों के लिये उनकी एकता, स्वाभिमान, स्वतंत्रता और एकजूटता का प्रतीक था और उसकी रक्षा करने का अर्थ स्वयं की रक्षा करना था और उसका टूटना समस्त राजपूतों की शक्ति के विनाश के समान था। अतएव उस समय चित्तौडगढ की रक्षार्थ बूँदी के हाड़ा, पाली के सोनगरा, आवू के देवड़ा राजपूत सरदार भी अपनी सेनाएं लेकर चित्तौडगढ़ आ पहुँचे थे।[10] झाड़ोल से राजराणा सिंहा भी अपने सैनिकों को लेकर चित्तौड़गढ आ गया।

बहादुरशाह का दूसरा आक्रमण और राजराणा सिंहा द्वारा प्राणार्पण

चित्तौडगढ़ में एकत्र होकर मेवाड़ के सरदारों ने वहादुरशाह के आक्रमण का मुकावला करने हेतु एक युद्ध-परिपद वनाई और प्रतापगढ़ देवलिया के रावल वाघसिंह को महाराणा का प्रतिनिधि नियुक्त करके उसको मेवाड़ की सेना के नेतृत्व की वागडोर सुपुर्द की। इस युद्ध परिपद में रावत वाघसिंह के अलावा चूंडावत रावत साईदास रत्नसिहोत, हाड़ा राव अर्जुन, राजराणा झाला सिंहा, राजराणा झाला सज्जा, रावत सत्ता, सोनगरा माला, डोडिया भाण, सोलंकी भैरवदास, रावत नरवद आदि प्रमुख थे। सरदारों ने मिलकर सोचा कि राजपूत सैनिकों की संख्या वहुत कम है, जवकि वहादुरशाह के सैनिकों की संख्या वहुत अधिक है। दूसरी ओर चित्तौड़गढ में लडाई का सामान कम है और भोजन का सामान दो-तीन महीने तक का ही है। ऐसी स्थिति में चित्तौडगढ की रक्षार्थ लड़-मरने के अलावा अन्य कोई विकल्प नही है। इसी आधार पर रावत वाघसिंह ने सरदारों से मिलकर लड़ाई की योजना वनाई। रावत वाघसिंह स्वयं किले के वाहरी द्वार भैरवपोल पर अपने सैनिकों के साथ जा डटा। सोलंकी भैरवदास ने हनुमान पोल पर लडने हेतु अपने सैनिकों को लेकर मोर्चा वनाया। झाड़ोल का झाला राजराणा सिंहा और उसका चाचा राजराणा सज्जा अपने-अपने सैनिकों के साथ गणेशपोल पर डट गये और अपने सभी वांधवों और राजपूतों को द्वार के ऊपर, अन्दर और वाहर शत्रुओं से लड़कर मर मिटने के लिये जमा दिया। इसी भाति साईदास चूडावत, अर्जुन हाड़ा, भाण डोडिया, माला सोनगरा आदि ने गढ के अन्दर के द्वारों,परकोटों एवं अन्य स्थानों पर अपने-अपने मोर्चे संभाल लिये। उन्होंने वहादुरशाह की सेना को गढ़ के भीतर वढ़ने से रोक दिया। किन्तु शत्रु का वल अधिक होने और पुर्तगाली अफसर द्वारा वारूदी गोले वरसाने के कारण राजपूतों पर दवाव वढ़ गया। शत्रु द्वारा वीकाखोह की ओर से दीवाल उड़ा दी गई और तोपों की मदद लेकर वह

---

9 वही, पृ 398

10 Annals and Antiquities of Rajasthan by James Tod, P 240

किले की पाडनपोल, सूरजपोल और लाखोटावारी पर हमला बोलकर आगे वढ़ आया। तव अंतिम समय आया मान कर राजपूत सरदारों ने दुर्ग के सभी द्वार खोल दिये और एक साथ गुजराती सेना पर टूट पड़े। उन्होंने शत्रु सैनिकों का बड़ी संख्या में संहार किया और स्वयं वीरतापूर्वक लड़ते हुए काम आये। मेवाड़ की सेना का सेनापति रावत वाघसिंह और रावत नरवद पाडनपोल पर लड़ते हुए मारे गये जवकि झाला राजराणा सिंहा और उसके चाचा देलवाड़ा के राजराणा सज्जा ने अपने कई राजपूतों के साथ लड़ते हुए हनुमानपोल पर अपने प्राण अर्पित किये। देसूरी का सोलंकी भैरवदास भैरवपोल पर काम आया। राव अर्जुन हाड़ा, चूंडावत रावत दूदा और सत्ता वीकाखोह पर मारे गये। इस लड़ाई में मारे गये अन्य राजपूत सरदारों में माळा सोनगरा, रावत देवीदास सूजावत, रावत वाघ सूरचंदोत, रावत नगा सिंहावत, रावत कर्मा चूंडावत, भाण डोडिया आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अपनी अद्‌भुत वीरता का परिचय दिया। चित्तौडगढ़ की रक्षार्थ राजपूतों की लगभग हर खाप ने अपना वलिदान दिया। इस युद्ध में कई हजार राजपूत मारे गये। राजपूतों द्वारा अंतिम लड़ाई लड़ने से पहिले अपने सतीत्व की रक्षार्थ रानी कर्मवती ने चित्तौड़गढ़ में उपस्थित स्त्रियों के साथ अग्नि में प्रवेश कर अपने प्राणों की आहुति दे दी। 1535 ई. का यह जौहर चित्तौड़ के दूसरे शाके के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[11]

इस भाति जव हलवद के राजकुमार अज्जा ने 1527 ई. में खानवे के युद्ध में महाराणा का स्थान लेकर राजपूत सेना का संचालन करते हुए अपने प्राणार्पण किये तो उसके पुत्र सिहा ने आठ वर्ष वाद चित्तौड़गढ़ की रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति दी। मेवाड़ की रक्षार्थ यह अज्जा की दूसरी पीढ़ी का वलिदान था।

राजराणा सिंहा के विवाह एवं संतति

राजराणा सिंहा द्वारा पांच विवाह करने का उल्लेख मिलता है। उसका प्रथम विवाह गढ संवर के रावत वलराम की वेटी देवकंवर से हुआ, जिसकी कोख से कुंवर आसा, अगर और करण उत्पन्न हुए। दूसरा विवाह महाराणा सांगा की वहिन और महाराणा रतनसिंह की फूफी रूपकंवर के साथ हुआ, जिसकी कोख से कुंवर सुरताण सिंह और मालदेव हुए। तीसरा विवाह वांसवाड़े के रावल जगमाल की वेटी दीपकंवर के साथ हुआ, जिसकी कोख से कुंवर कान्हा, वेरीसिंह और शेरसिंह हुए। चौथा विवाह वूंदी के राव हाड़ा जूझारसिंह की पुत्री उम्मेदकंवर के साथ हुआ, जिसकी कोख से कुंवर किशनसिंह, लूणकरण और हरनाथ तथा पुत्री दीपकंवर हुए। पांचवां विवाह माणचा के रावत दलसिंह की वेटी सरसकंवर के साथ हुआ, जिसकी कोख से कुंवर मानसिंह (रामचंद्र ?) हुआ।[12]

---

11 Annals and Antiquities of Rajasthan by James Tod, P 250
उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, ले गौ ही ओझा, पृ 399
वीरविनोद, ले श्यामलदास, भाग-2, पृ 31

12 बड़वा मदनसिंह की पोथी के आधार पर। विवाह सम्वन्धी सूचनाए मदनसिंह और ईश्वरसिंह की पोथियों में भिन्न-भिन्न मिलती हैं।

राजराणा सिहा की पुत्री दीपकंवर का विवाह महाराणा रतनसिंह के साथ हुआ।[13]

राजराणा सिहा के पुत्रों की संतानों के पास निम्नलिखित जागीरें होने का उल्लेख मिलता है—

1. आसा झाड़ोल में उत्तराधिकारी हुआ।
2. सुरताण (सुलतान) राजराणा आसा के निस्सतान मरने पर झाडोल में उत्तराधिकारी हुआ।
3. मालदेव के वंशजो के पास पाटन इलाके में कनवाडा, रातीतलाई, सरावोई, वावडीखेड़ा और रूपपुरा की जागीरें रही।
4. कान्हा की संतानों के पास देलवाड़ा पट्टे में गोरेला और सरडाया की जागीरें रही।
5. बिरजराज (बेरीसाल) की सतानों के पास सातल्यावास, पीतमपुरा, नवलपुरा, वोरूदी, एहामतखेड़ी और खेतारोडो (कानोड़ पट्टा) की जागीरें रहीं।
6. शेरसिंह की संतानों के पास देलवाड़ा पट्टे में राठासन के गुडे की जागीर रही।
7. किशनसिह को देलवाड़ा पट्टे में धायजी का गुडा और वडल्या खेड़े की जागीर मिली।
8. लूणकरण को बड़ी सादड़ी पट्टे में सोकरी और वोयणा की जागीरें मिली।
9. हरनाथ को देलवाड़ा पट्टे में परलाया और वुंवल्या का गुडा की जागीरें मिली।
10. रामचन्द्र (मानसिह) की सतानों के पास सेलु का गुड़ा की देलवाड़ा पट्टे में जागीर रही।
11. करणसिह की सतानों के पास गोगूंदा पट्टे में चोरवावड़ी का गुडा की जागीर रही।
12. अगर की सतानों के पास गोगूदा पट्टे में कलजी का गुड़ा की जागीर रही।

राजराणा सिंहा 1527 ई. से 1535 ई. तक झाड़ोल जागीर का स्वामी रहा।

---

13 बड़ी सादड़ी ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज़ों के आधार पर। बड़वा मदनसिंह की पोथी मे देसूरी के सोलकी जयसिंह की पुत्री पेपकवर के साथ भी सिंहा का विवाह होने का उल्लेख है।

3. राजराणा आसा (1535-1540 ई.)

1535 ई. में चित्तौड़ की रक्षार्थ राजराणा सिंहा के मारे जाने के वाद उसका पुत्र आसा झाड़ोल में उसका उत्ताराधिकारी हुआ। महाराणा विक्रमादित्य द्वारा उसको तिलक और तलवार वंदी की रस्म पूरी की गई। उस समय आसा की आयु केवल अठारह वर्ष की थी। चित्तौड-पतन के वाद शेष वचे राजपूत सरदार और सैनिक अपनी-अपनी जागीरों में लौट गये थे। आसा ने चित्तौड-युद्ध में भाग नही लिया था। चित्तौड़ से झाड़ोल लौटकर आये वांधवों ने आसा को विधिवत झाड़ोल में गद्दीनशीन किया।

चित्तौड़गढ़ पर वहादुरशाह का कव्जा कायम नहीं रहा। मालवा और गुजरात पर अधिकार रखने वाले चित्तौड़ विजेता वहादुर को दुर्भाग्य ने आ घेरा। उसके अमीरों में फूट पड़ गई और उसके विरोधियों के आमंत्रण पर मुगल वादशाह हुमायूं अपनी सेना लेकर वहादुरशाह के खिलाफ चढ़ आया। वहादुर अपनी कमजोर स्थिति के कारण भयभीत होकर मंदसौर से 25 मार्च, 1535 ई. को मांडू की ओर भाग गया। हुमायूं द्वारा पीछा करने पर वह चांपानेर और खंभात होता हुआ, दीव के टापू में पुर्तगालियों की शरण में चला गया, जहाँ से लौटते हुए वह मारा गया। इस घटना से मध्य एवं पश्चिमी भारत की राजनैतिक स्थिति में एकदम परिवर्तन आ गया। गुजरात और मालवा की सलतनतें विखर गईं और चित्तौड़ में भीषण विनाश होने के वावजूद, मेवाड़ के राजपूतों को कुछ ही महीनों में चित्तौड़ को पुन. हस्तगत करने का अवसर मिल गया, जिन्होंने वहादुर द्वारा चित्तौड़ में छोड़े गये सैनिकों को मार भगाया। महाराणा विक्रमादित्य वापस चित्तौड़ लौट आया।

बनवीर द्वारा चित्तौड़गढ़ पर कव्जा करना

मालवा और गुजरात की सलतनतों के कमजोर होने और दिल्ली में राजनैतिक अस्थिरता वनी रहने के कारण मेवाड़ को वाहरी आक्रमणों से खतरा नहीं रहा। किन्तु महारानी कर्मवती द्वारा जौहर कर लेने के कारण राजपूत सरदारों की एकता का सूत्र टूट गया और आंतरिक दृष्टि से महाराणा विक्रमादित्य की स्थिति विकट हो गई। अधिकांश सरदारों ने पुनः उससे असहयोग कर लिया और वे विमुख होकर चित्तौड़ से दूर अपनी अपनी जागीरों में जाकर रहने लगे। केवल कुछ चापलूस लोग ही उसके पास वचे रहे। विक्रमादित्य की इस कमजोर स्थिति में चित्तौड़गढ़ के राजमहलों में एक षड़यन्त्र ने जन्म लिया। महाराणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के अनोरस (पासवानिया) पुत्र वणवीर ने अवसर देखकर विक्रमादित्य को मार डाला और उसके प्रीति-पात्रों को अपनी ओर मिला लिया। महाराणा सांगा का तीसरा पुत्र एवं विक्रमादित्य का छोटा भाई अल्पवयस्क राजकुमार उदयसिंह उस समय चित्तौड़गढ़ में मौजूद था। वणवीर ने निष्कंटक रूप से मेवाड़ का शासक वनने की दृष्टि से वालक उदयसिंह का वध करने का प्रयास किया किन्तु उदयसिंह की धाय पन्ना ने उदयसिह के समवयस्क अपने पुत्र का राजकुमार के स्थान पर वलिदान करवा कर उसको वचा लिया। चित्तौड़गढ़ के इस घटनाक्रम के प्रति मेवाड़

का सामंत वर्ग उदासीन वना रहा। धाय पन्ना प्रतापगढ़ और डूंगरपुर में शरण नही मिलने पर, वालक उदयसिह को लेकर कुम्भलगढ़ पहुँची, जहाँ किलेदार आशा देपुरा ने उदयसिंह की सुरक्षा का उत्तरदायित्व ले लिया।[1]

कुम्भलगढ़ में उदयसिंह को महाराणा बनाना

जव मेवाड़ के सरदारों को राजकुमार उदयसिंह के जीवित होने और कुम्भलगढ़ में विद्यमान होने की सच्चाई का पता चला तो वे एक के वाद एक वहा पहुंचने लगे। 1936 ई. में यद्यपि वनवीर चित्तौडगढ पर अधिकार करके महाराणा वन वैठा था किन्तु उसके पासवानिया पुत्र होने के कारण मेवाड़ के सरदार उसको अपना शासक महाराणा मानने के लिए तैयार नही थे। उधर वनवीर ने भी अपनी धाक जमाने के लिये मनमानी करनी शुरू की और चित्तौड़गढ़ में मौजूद सरदारों एव राजपूतों का अनादर करने लगा। इस पर एक वार फिर वे अपने आपसी मतभेद दरकिनार करके अगले वर्ष कुम्भलगढ़ में एकत्र हुए। समाचार पाकर राजराणा आसा अपने सहयोगियों के साथ झाड़ोल से रवाना होकर कुम्भलगढ पहुँचा। उसी समय कोठारिया से रावत चौहान खान, रावत साईदास चूडावत, विजोलिया से राव सज्जनसिंह पंवार, केलवा से रावत जग्गा चूंडावत और वागोर से रावत सांगा चूंडावत तथा उनके अलावा साचोर का पृथ्वीराज और लूणकरण जेतावत,पाली का अखेराज सोनगरा आदि कई प्रधान राजपूत सरदार भी वहाँ पहुँचे। सभी ने मिलकर 1539 ई में राजकुमार उदयसिंह का तिलक करके मेवाड़ का महाराणा घोपित कर दिया। उस समय उदयसिंह की आयु सत्रह वर्ष की थी।[2] कुछ ही समय में प्रतापगढ़ रावत रायसिंह, ईडर का राव भारमल, वूंदी का राव सुलतान हाड़ा, डूंगरपुर का कुंवर आसकरण, वांसवाड़े का महारावल जगमाल, मारवाड़ से कूंपा महाराजोत आदि भी अपने-अपने राजपूतों को लेकर उदयसिंह की सहायतार्थ पहुँच गये।[3] कुम्भलगढ़ में एकत्र सरदारों ने मेवाड़ के शेप जागीरदारों को भी ससैन्य वहाँ वुला लिया।

राजराणा आसा का चित्तौड़गढ़ की लड़ाई में मारा जाना—

1540 ई में महाराणा उदयसिंह सभी एकत्र राजपूत सहयोगियों की सेना लेकर कुम्भलगढ़ से चित्तौड़गढ़ की ओर रवाना हुआ। मार्ग में मावली के पास वनवीर की सेना के साथ युद्ध हुआ, जिसमें उदयसिह विजयी रहा। उसने आगे वढ़कर वणवीर के सहयोगी मल्ला सोलंकी से ताणा छीन लिया और उसके वाद चित्तौड़गढ़ घेर लिया। सभी राजपूत सरदारों ने अलग-अलग

---

1 उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, ले गौ ही ओझा, पृ 403

2 प रणछोड़ भट्ट कृत अमरकाव्य ग्रथ मे उल्लेख है कि वि स 1597 (1540 ई) में चित्तौड़गढ़ विजय के समय उदयसिंह की आयु 18 वर्ष की थी। चतुर्दश सर्ग प्रथम श्लोक

3 Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol 1. by James Tod P. 253
उदयपुर राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, भाग-1, पृ 403
प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 87-88

मोर्चे सम्भाल लिये और गढ़ में प्रवेश करने का उपाय करने लगे। कुछ दिनों की लड़ाई के वाद महाराणा के प्रधान आशाशाह देपुरा ने वनवीर के प्रधान चील मेहता को मिलाकर दुर्ग के द्वार खुलवा लिये। उदयसिंह की सेना का गढ़ में मौजूद वनवीर के पक्षधर सैनिकों ने मुकावला किया। उस समय युवक झाड़ोल राजराणा आसा ने अपने भाई सुरताण तथा अन्य वांधवों एवं सैनिकों के साथ रामपोल के पास वनवीर के मैनिकों के साथ युद्ध किया। राजराणा आसा ने वड़ी वीरता दिखाई किन्तु लड़ाई में मारा गया। महाराणा उदयसिंह ने गढ़ पर कब्जा कर लिया। वनवीर गढ़ से वच कर निकल कर भाग गया। कुछ का अनुमान है कि वह मारा गया।[4]

इस भाँति तैइस वर्ष की आयु में राजराणा आसा महाराणा उदयसिंह की सहायता करते हुए काम आया। वह अज्जा की तीसरी पीढ़ी में था जिसने अपने दो पूर्वज राजराणाओं अज्जा और सिंहा के क्रम में अपने प्राणार्पण किये। आसा के निस्संतान होने से उसका छोटा भाई सुरताण झाड़ोल का उत्तराधिकारी हुआ।

राजराणा आसा केवल पांच वर्ष तक शासन कर सका। चित्तौड़ में उसकी मृत्यु होने पर झाड़ोल में उसकी रानी राठोड़ उदेकंवर सती हुई। वड़वा ईश्वरसिंह की पोथी के अनुसार राजराणा आसा का विवाह मेड़ता के सेवाजी राठोड़ की वेटी उदेकंवर के साथ हुआ था। मदनसिंह वड़वा की पोथी के अनुसार उसका विवाह झाड़ोल गांव के चूंड़ावत गजसिंह की वेटी जड़ावकंवर के साथ हुआ था।

---

4 उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, ले गौ. ही ओझा, पृ 404

वड़ी सादड़ी ठिकाने के प्राचीन अभिलेख। श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड के अनुसार सवत् 1591 के वहादुरशाह के प्रथम आक्रमण के समय सिंहा काम आया। (पृष्ठ 10) उसका उत्तराधिकारी आसा वहादुरशाह के दूसरे आक्रमण के समय सवत् 1592 (1535 ई) में मारा गया। (पृ 13) श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड में राजराणा आसा की वीरता का वर्णन इस भाति किया गया है—यद्यपि राजराणा आसा कि आयु केवल 18 वर्ष की थी। तथापि वे यवन नरेश (वहादुर) के सन्मुख युद्धार्थ जा उपस्थित हुए। आसा ने हाथी पर सवार शाह पर साग शस्त्र से प्रहार किया। वादशाह तो वच गया किन्तु साग ने हाथी के कपोल को शरीर से पृथक् कर दिया। उस समय आसा शत्रु के एक सैनिक की तलवार के वार से मारे गये। (पृ 14) किन्तु श्यामलदास कृत वीर विनोद भाग-2 (पृ 31) और ओझा कृत उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, (पृ 399) पर वहादुरशाह के 1535 ई के दूसरे आक्रमण में राजराणा सिंहा का मारा जाना लिखा है। तदनुसार आसा 1535 ई में राजराणा वना।

4. राजराणा सुरताणसिंह (सुलतानसिंह) प्रथम 1540-1568 ई.

1540 ई मे राजराणा आसा के चित्तौडगढ में मारे जारे के वाद उसके निस्सतान रहने से उसका छोटा भाई सुरताण (सुलतान) झाड़ोल की गद्दी पर वैठा। वह भी अभी अल्पवयस्क था और उसने युवावस्था मे प्रवेश किया था। उसका जन्म सीसोदणी रानी रूपकंवर[1] की कोख से हुआ था। महाराणा उदयसिंह द्वारा नये राजराणा का तिलक एवं तलवारबन्दी का दस्तूर चित्तौडगढ में विधिवत् किया गया। सुरताण ने चित्तौड़गढ से झाडोल जाकर अपनी जागीर की व्यवस्था का उत्तरदायित्व ग्रहण किया।

1540 ई से लगाकर 1567 ई तक दिल्ली, मालवा और गुजरात की सलतनतों में व्याप्त अस्थिरता के कारण मेवाड बाहरी आक्रमणों से बचा रहा। फलस्वरूप महाराणा उदयसिंह के राज्यकाल मे मेवाड विनाश और अशान्ति से अपेक्षाकृत बचा रहा। किन्तु अपनी अदूरदर्शिता एव अविवेकपूर्ण नीति के कारण उसने अनावश्यक रूप से मारवाड़ के शासक राव मालदेव और अजमेर के शासक हाजीखा के साथ झगडा मोल लिया। अन्तत· 1557 ई. में उसको दोनों की सयुक्त सेना के साथ हरमाडा स्थान पर युद्ध करना पड़ा, जिसमें उसकी पराजय हुई। फिर भी महाराणा उदयसिह को जो दीर्घकालीन शान्ति नसीव हुई, उसके कारण उसने उदयसागर तालाब का निर्माण करवाया और उदयपुर नगर बसाकर उसमें महल आदि बनवाये।

अकबर द्वारा चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण (1567 ई.)

उधर मुगल बादशाह हुमायू का शेरशाह सूरी के हाथों पराजित होने के वाद उसको लगभग पन्द्रह वर्ष सिन्ध और अफगानिस्तान मे इधर से उधर अस्थिर अवस्था में भटकना पडा। उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी अकबर ने पानीपत की दूसरी लडाई में 5 नवम्बर, 1556 ई के दिन हेमू को परास्त करके दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उसके बाद भारत में मुगल राजवश के दीर्घकालीन स्थायी साम्राज्य का प्रारम्भ हुआ। अपने शासन के प्रारम्भिक दस वर्षों में उसने उत्तरी, पश्चिमी और पूर्वी भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार किया, साथ ही उसने गुजरात और मालवा की मुस्लिम सलतनतों का खात्मा कर दिया।

राजपूताने के अलवर, अजमेर, जैतारण आदि इलाको पर अकबर ने 1557 ई. में अधिकार कर लिया था। 1562-63 ई मे आमेर और मेडता भी उसके अधीन हो गये। उसके साथ ही उसने राजपूत शासकों के प्रति उदार नीति का व्यवहार करके उनके साथ भावी इतिहास पर

---

1 सीसोदणी रूपकवर महाराणा रायमल की पुत्री, सागा की बहिन और रतनसिंह की फूफी थी, जिसका विवाह रतनसिंह ने राजराणा सिंहा के साथ किया था।

श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड में चित्तौड़ के दूसरे शाके के समय राजराणा आसा के मारे जाने का उल्लेख है, जो उचित नही है। आसा बनवीर के विरुद्ध लड़ाई मे चित्तौड़ मे खेत रहा था।

निर्णायक प्रभाव डालने वाला वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया और लगभग विना रक्तपात किये ही मेवाड़ और उससे सटे हुए कुछ इलाके को छोड़कर सारे राजपूताने को अपने अधिकार में कर लिया। 1567 ई. में जाकर पुनः 27 वर्ष वाद दिल्ली की ओर से मेवाड़ को वाहरी आक्रमण का संकट उत्पन्न हुआ। अन्य राजपूत राज्यों की नीति के विपरीत महाराणा उदयसिंह और सामंतवर्ग द्वारा अकवर की अधीनता एवं चाकरी करना मंजूर नहीं करने पर अकवर 1567 ई. के अक्टूवर माह में मेवाड़ पर चढ़ आया और राजधानी चित्तौड़गढ़ का घेरा डाल दिया।

राजराणा सुरताण का ससैन्य चित्तौड़ जाना

मेवाड़ पर चढ़ाई से पहिले वादशाह अकवर ने महाराणा उदयसिंह के दूसरे पुत्र शक्तिसिंह को, जो उस समय वादशाह के दरवार में मौजूद था, अपनी भेदनीति के अनुसार उसको वुलाकर मेवाड़ का राज्य देने का प्रलोभन देकर, चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण में उसका साथ देने के लिये उसको उकसाया।[2] किन्तु वतनपरस्त शक्तिसिंह तत्काल चुपचाप अकवर का साथ छोड़कर चित्तौड़गढ़ आ गया और अपने पिता को आसन्न संकट के सम्बन्ध में पूर्व सूचना दी। इस पर महाराणा ने तत्काल मेवाड़ के वड़े सरदारों की राज्यपरिषद वुलाई। महाराणा का रुक्का प्राप्त होने पर राजराणा सुरताण फौरन अपने सैन्यदल को लेकर झाड़ोल से चित्तौड़गढ़ के लिये रवाना हो गया। शेष सभी उमराव भी चित्तौड़गढ़ आ गये। राज्य परिषद की वैठक में प्रधानतः जयमल वीरमदेवोत मेड़तिया, राजराणा सुरताण झाला, रावत पत्ता, राव वल्लू सोलंकी, सांडा डोडिया, राव संग्रामसिंह, रावत नेनसी आदि सरदारों ने भाग लिया। राजनीतिक एवं सामरिक स्थिति स्पष्ट थी। पहली वार मेवाड़ सर्वथा अकेला पड़ गया था। सदा सहयोगी रहे अन्य राजपूत राज्य शत्रु के सहयोगी वन चुके थे अथवा तटस्थ थे। अकवर की सैन्यशक्ति अत्यन्त प्रवल थी और उसकी सेना में पहिले मेवाड़ के अधीन अथवा मित्र रहे कई राजपूत एवं हिन्दू राजा एवं सामंत शामिल थे तथा उसके पास शक्तिशाली तोपें थी। अपनी अत्यल्प शक्ति के होते हुए भी मेवाड़ का शासकवर्ग वादशाह अकवर की दासत्व-जनक सेवा की शर्तों के सामने अपने आत्मगौरव और स्वतंत्रता का समर्पण करने के लिये तैयार नहीं था। अतएव राज्यपरिषद ने संकट के स्वरूप का गंभीरता के साथ विवेचन करते हुए यह निश्चय किया कि महाराणा उदयसिंह अपने परिवार, युवराज प्रतापसिंह और सेना का एक भाग साथ लेकर मेवाड़ के पर्वतीय भाग में चला जावे और आवश्यकता होने पर पहाड़ों में दीर्घकालीन संघर्ष चलाकर मेवाड़ की स्वतंत्रता को कायम रखे। परिषद के निर्णयानुसार चित्तौड़गढ़ की रक्षा करने और अकवर की सेना से लोहा लेने के लिये मेवाड़ के लगभग सभी वड़े-वड़े सरदार अपनी-अपनी सेनाओं के साथ चित्तौड़गढ़ में नने रहे तथा युद्ध-संचालन की वागडोर मेड़ता के राठोड़ ठाकुर जयमल एवं पत्ता सिसोदिया (चूंडावत) को दी गई। किले की रक्षार्थ लगभग 8000 राजपूत रहे। राजराणा सुरताण ने झाड़ोल से अपने अन्य वान्धवों एवं राजपूतों को या तो चित्तौड़गढ़

---

2 शोध द्वारा अभी तक इस वात की जानकारी नहीं मिल पाई है कि कुवर शक्तिसिंह वादशाह अकवर की सेवा में किस पद पर था अथवा उसको वादशाह द्वारा क्या कार्य सौंपा गया था?

बुला लिया अथवा पहाडी भाग में महाराणा का साथ देने के लिये उसके साथ कर दिया।

झाडोल गॉव और ठिकाना मेवाड के घने पहाडी प्रदेश में स्थित है और भोमट क्षेत्र से सटा हुआ है। वह क्षेत्र झालावाड कहलाता है।[3] निश्चय ही महाराणा उदयसिंह को 1567 ई. से 1572 ई के दौरान मेवाड़ के पहाडी भाग में पानरवा के सोलंकियों और भोमट के चौहानों के साथ-साथ झाड़ोल के झालाओं की वडी मूल्यवान सहायता मिली। बाद में लगभग पचीस वर्षो तक महाराणा प्रतापसिह के दीर्घकालीन मुगल-विरोधी युद्ध में मेवाड़ के पर्वतीय भाग में प्रताप को जो कामयाबी हासिल हुई उसमें सोलकियों एवं चौहानों के साथ झाड़ोल के झालाओं द्वारा सभी प्रकार से जो सहायता की गई, उसका आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है। प्रताप द्वारा आवरगढ में स्थापित की गई राजधानी झाडोल के निकट ही स्थित थी।

हुसैनकुलीखां द्वारा महाराणा उदयसिंह का पीछा करना

जब अकबर ने आकर चित्तौडगढ का घेरा डाला तो उसको महाराणा उदयसिंह के पहाड़ों में चले जाने की सूचना मिली। उसने अपने सेनापति हुसैनकुलीखां को सेना देकर उदयसिंह का पीछा करने हेतु उदयपुर की ओर भेजा। हुसैनकुलीखां उदयपुर पहुँचा, जहाँ राजपूतों ने उसके विरुद्ध मोर्चा लिया। हुसैन ने उदयपुर में भारी मारकाट की और वहुत सा माल-असवाव लूटा। वहॉ से वह गोगूदा हेतु हुए कुम्भलगढ तक पहुँचा। मार्ग में राजपूतों एव भीलों ने जगह-जगह पर मुगल सेना का मुकावला किया, जिससे कई मुगल सैनिक मारे गये। हुसैन ने चारों ओर महाराणा का पता लगाने की कोशिश की, किन्तु उसको निराश होकर लौटना पड़ा। उस समय महाराणा उदयसिंह गोगूदा से पश्चिमी पहाड़ों में प्रवेश करके वाकल नदी के किनारे चलता हुआ पानरवा ठिकाने के घने वनीय भाग में पहुॅच गया था। वहाँ के सोलंकी अधिपति रावत हरपाल ने उसको पूर्ण सुरक्षा एव सहायता प्रदान की ।[4]

चित्तौड़गढ़ की लड़ाई में राजराणा सुरताण का मारा जाना

उधर चित्तौडगढ में मौजूद राजपूत सरदार बादशाह अकबर का सामना करने हेतु कटिबद्ध हो गये। उस समय जयमल राठोड़ ने सरदारों की सलाह से अकबर के साथ मेवाड़ की दृष्टि से सम्मानजनक संधि करके युद्ध टालने का प्रयास किया। उनकी ओर से अकवर से आग्रह किया गया कि वह महाराणा को मुगल दरबार में सेवा हेतु बुलाने की शर्त छोड़ दे और मेवाड़ के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नही करने की बात स्वीकार कर ले। किन्तु बादशाह ने मेवाड

3 यह ध्यातव्य है कि झाला लोग जहा भी गये और रहे उस क्षेत्र का नाम उनके नाम से जाना गया। काठियावाड़ में उनके निवास का भू-क्षेत्र झालावाड़ कहलाता है। मारवाड़ में अज्जा और सज्जा जिस क्षेत्र में जाकर रहे, वह झालामड नाम से प्रसिद्ध हुआ। झाड़ोल भू-भाग का नाम भी झालावाड़ पड़ा। हाड़ौती भू-क्षेत्र का वह भाग भी झालावाड़ नाम से प्रसिद्ध हुआ, जहा कोटा राज्य के प्रशासक एव सेनापति झाला जालिमसिंह ने अपना अलग राज्य कायम किया।

4 पानरवा का सोलकी राजवश, ले डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 45

के सरदारों की शर्तें मंजूर नहीं की। अकवर ने गढ़ का घेरा कायम रखा और छुटपुट लड़ाइयाँ होती रहीं। अंत में अकवर ने किले की तलहटी तक सुरंग और सावात वनवाकर किले की दीवाल और वुर्ज तोड़ डाले। इससे दुर्ग पर मुगलों का कव्जा निश्चित हो गया। ऐसी स्थिति में राजपूतों ने गढ़ की रक्षार्थ अंतिम लड़ाई का निर्णय कर लिया। अंतिम लड़ाई से एक दिन पूर्व राजपूत स्त्रियों और वच्चों ने पत्ता सिसोदिया, राठोड़ साहिवखान और ईसरदास चौहान आदि सरदारों की हवेलियों में अग्नि प्रज्ज्वलित करके उसमें प्रवेश करके प्राण दे दिये। यह जौहर चित्तोड़ का तीसरा शाका कहलाता है।[5] दूसरे दिन राजपूतों ने केसरिया वस्त्र धारण किये। उन्होंने अलग-अलग द्वारों एवं स्थानों पर अपने मोर्चे वना लिये और लड़ने हेतु दुर्ग के द्वार खोल दिये। राजपूतों ने गढ़ में प्रवेश करते हुए मुगल सैनिकों की भारी मारकाट की और राजपूतों के लगभग सभी वड़े सेनाध्यक्ष सरदार अलग-अलग स्थानों पर वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारे गये। झाड़ोल राजराणा सुरताण सूरजपोल के निकट अपने राजपूतों के साथ लड़ते हुए काम आया। उसके साथ उसके भाई लूणकरण, मालदेव और मंडलीक के अलावा राव भुवान हथामहता (कुंवरहता ?) और ढोली भोपत और नंदराम भी खेत रहे। इस शाके में खेत रहे अन्य प्रमुख सरदारों में जयमल मेड़तिया, युवक रावत पत्ता सिसोदिया (चूंडावत), डोडिया सांडा, ईसरदार चौहान, रावत साईदास, रावत साहिवखान, राठोड़ नेनसी, राजराणा जैता झाला (देलवाड़े के सज्जा का पुत्र जैतसिंह) राव संग्रामसिंह, आदि थे। अकवर ने चित्तौड़गढ़ में प्रवेश करके मेवाड़ में अपना आंतकपूर्ण सिक्का जमाने के लिये गढ़ में मौजूद लगभग तीस हजार असैनिक लोगों का संहार किया और अव्दुलमजीद आसफखां को किलेदार नियुक्त करके अजमेर लौट गया। जयमल और पत्ता की अनुपम वीरता से प्रभावित होकर उसने उनकी पाषाण मूर्तियाँ वनवाकर आगरे के किले के द्वार पर खड़ी की।[6]

इस प्रकार राजराणा अज्जा के चौथे वंशधर राजराणा सुरताण ने चित्तौड़गढ़ की रक्षार्थ अपने भ्राताओं के साथ शत्रु सेना से लड़ते हुए अपना आत्मोसर्ग किया। हलवद के झाला राजवंशियों का मेवाड़ की रक्षार्थ यह क्रमागत चौथा आत्मवलिदान था।

चित्तौड़गढ़ की लड़ाई में मारे जाने से वच गये राजपूत सैनिक युद्ध के वाद अपने-अपने ठिकानों अथवा पहाड़ी भाग में महाराणा उदयसिह के पास चले गये। मुगल सेना ने शीघ्र ही मेवाड़ के सारे मैदानी भाग पर कव्जा कर लिया। उसके फलस्वरूप मेवाड़ के लगभग सभी जागीरदार महाराणा की आज्ञा से पहाड़ी भाग में उसके पास पहुँच गये। राजपूत योद्धाओं की पुरानी एवं अनुभवी पीढ़ी के अधिकांश लोग इस युद्ध में मारे जा चुके थे अतएव जो योद्धा महाराणा उदयसिंह के पास पहाड़ी भाग में एकत्र हुए उनमें अधिकतः नई पीढ़ी के लोग थे।

---

5 उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, ले गौ ही ओझा, पृ 417

6 उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, ले गौ ही ओझा, पृ 417

सुरताण के विवाह और संतति

राजराणा सुरताण के मारे जाने पर झाड़ोल में उसकी रानी लालकंवर चौहान सती हुई ।[7] बडी सादडी ठिकाने की प्राचीन पत्रावलियों एव वशावलियों के अनुसार राजराणा सुरताण के निम्नानुसार विवाह हुए—

प्रथम विवाह कोठारिया के चौहान जयसिंह की पुत्री लालकंवर के साथ हुआ ।[8] दूसरा विवाह प्रतापगढ देवलिया के रावत रायसिह सिसोदिया की बेटी सेमकंवर के साथ हुआ, जिसकी कोख से कुवर मानसिह (वीदा) का जन्म हुआ । तीसरा विवाह ईडर के राठोड़ वाघसिंह की बेटी कुसलकवर के साथ हुआ । चौथा विवाह भीडर रावत दुलहसिंह की बेटी केसरकवर के साथ हुआ ।[9]

उनके तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ होने का उल्लेख है—पुत्र[10] हत्ता, मानसिंह (वीदा) और राजसिंह तथा पुत्रियॉ—पदमकवर और चतरकवर । बडवा पोथी में पदमकंवर का विवाह मेड़ता के राठोड रतनसिह के साथ होना और उससे इतिहासप्रसिद्ध मीरावाई का जन्म होने का उल्लेख है ।[11]

---

7 वड़वा ईश्वरसिंह की पोथी ।

8 बड़वा मदनसिंह की पोथी में उसको बेदला के चौहान नगाजी की पुत्री बताया गया है ।

9 वड़वा मदनसिंह की पोथी के अनुसार सुरताण का विवाह बेदला के चौहानजी के अलावा श्रीनगर के पवार मालदेव की पुत्री दौलतकवर के साथ और बूदी के हाड़ा रतनसिंह की पुत्री जेतकवर के साथ हुआ था ।

10 हता सम्भवत चित्तौड़गढ की लड़ाई में मारा गया ।

11 राजराणा सुरताण की पुत्री का विवाह मेड़ता के राठोड रतनसिंह के साथ होना कालक्रम के अनुसार सही प्रतीत नही होता । मेड़ता के रतनसिंह और झाड़ोल के राजराणा सुरताण के काल में वहुत अतर है । मीरा का जन्म 1504 ई होना माना जाता है (मीरावाई, ले डॉ हुकमसिंह भाटी, पृ 9) और उसका विवाह महाराणा सागा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ था । 1504 ई मे राजराणा सुरताण का जन्म भी नही हुआ था ।
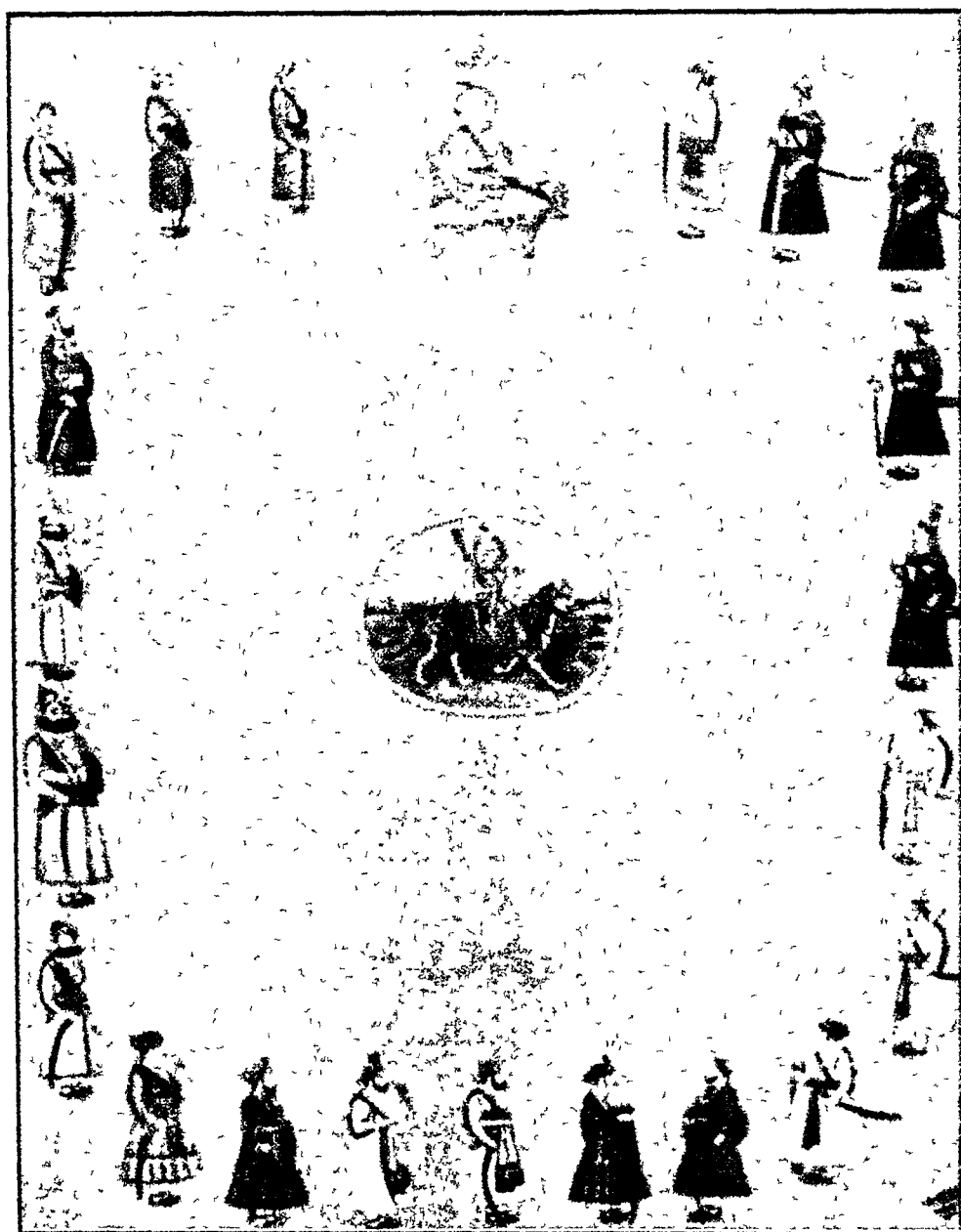
वड़ी सादडी के राजराणाओं की वंशावली वीच में
कुलमाता आदमाता का चित्र है

राजराणा अज्जा जी जो
खानवा के युद्ध में महाराणा
की जगह शहीद हुए

राजराणा सिंहजी जो चित्तोडगढ
के युद्ध में शहीद हुए

राजराणा आसाजी जो चित्तोडगढ
के युद्ध में शहीद हुए

राजराणा सुरताणसिंह जी प्रथम
जो चित्तोडगढ के युद्ध में शहीद हुए

राजराणा मानसिंहजी (बीदाजी)
जो हल्दीघाटी के युद्ध में शहीद हुए

राजराणा देदाजी जो राणकपुर
की लडाई में शहीद हुए

राजराणा हरिदासजी जो
मेवाड-मुगल संधि कराने में अग्रणी रहे

राजराणा रायसिंहजी प्रथम जो दिल्ली दरवार
में अपनी वीरता-प्रदर्शन के लिये प्रसिद्ध हुए
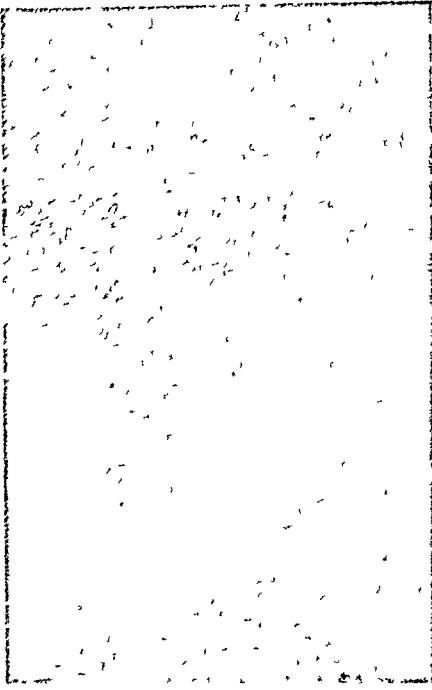
राजराणा कीरतसिंहजी द्वितीय
V.S. 1974-1922 A.D. 1817-1865

राजराणा शिवसिंहजी
V.S. 1922-1939 A.D. 1865-1882

राजराणा रायसिंहजी तृतीय
V.S. 1939-1954 A.D. 1882-1897

राजराणा दूलहसिंहजी
V.S. 1954-1992 A.D. 1897-1936

राजराणा कल्याणसिंहजी
V.S. 1992-2001 A.D. 1936-1944

राजराणा हिम्मतसिंहजी वर्तमान
V.S. 2001 A.D. 1944

बडी सादडी कस्बे का तोपखाने से लिया गया चित्र

बडी सादडी ठिकाने के पारसोलीगढ का चित्र

वडी सादडी में जलाझूलानी एकादशी पर राजमहल में आती हुई रामरेवाड़ियों का जुलूस

देलवाडा स्थित वीजासन माता का मन्दिर
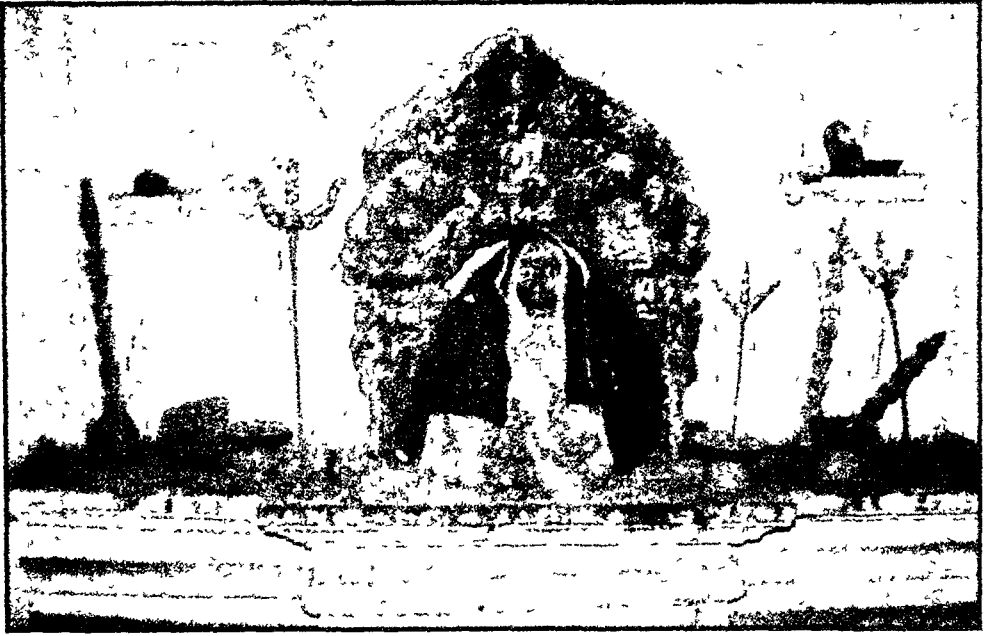
कानोड (राजपुरा) में स्थित माता कुलदेवी आदमाता का मंदिर

गुन्दलपुर में सतीमाता का मंदिर

देवगढ (प्रतावगढ) में महल में श्रीमाता जी का मन्दिर

कानोड स्थित राजराणा हरिदास जी द्वारा निर्मित हर मंदिर जो अब गोपाल मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है

मोती मगरी उदयपुर पर झाला मान की मूर्ति

वड़ी सादड़ी ठिकाने की जनानी ड्योढी का चित्र
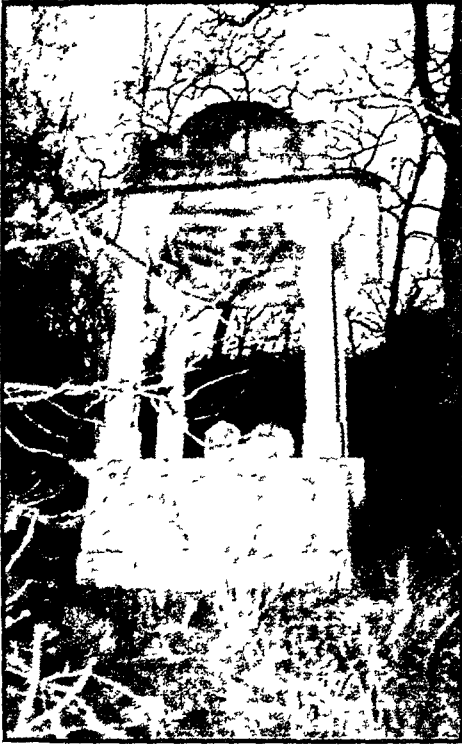
राजराणा देदा जी की छत्री
रणकपुर
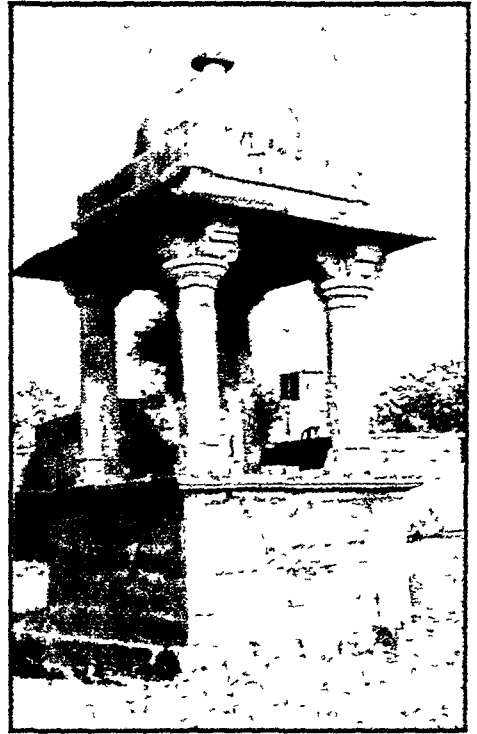
हल्दीघाटी स्थित राजराणा झाला मान
की छत्री का चित्र
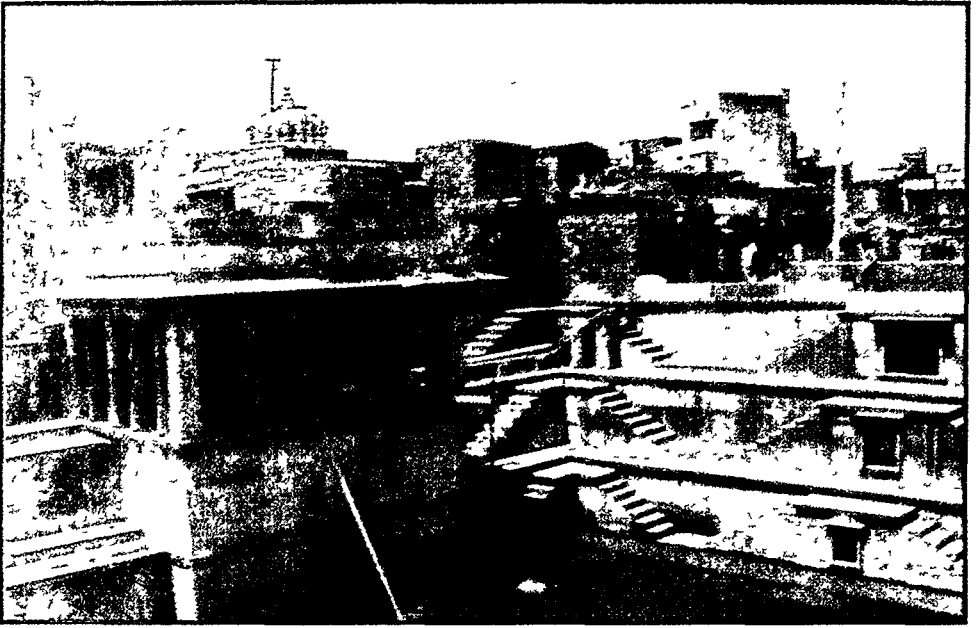
धर्मशाला के पास बडा कुण्ड बडी सादडी

बयाना रेलवे स्टेशन के बाहर राजराणा अज्जा जी का स्मारक

चित्तोडगढ का रामपोल जहां राजराणा श्री आसा जी
लडते हुए शहीद हुए
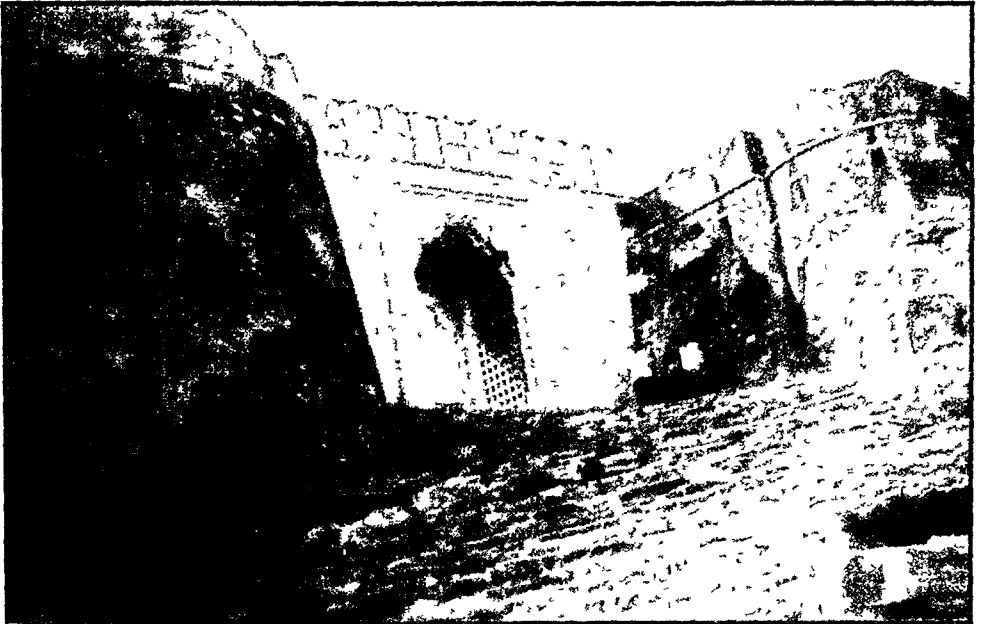
चित्तोडगढ का सूरजपोल जहां राजराणा सुल्ताण सिह जी
युद्ध में शहीद हुए
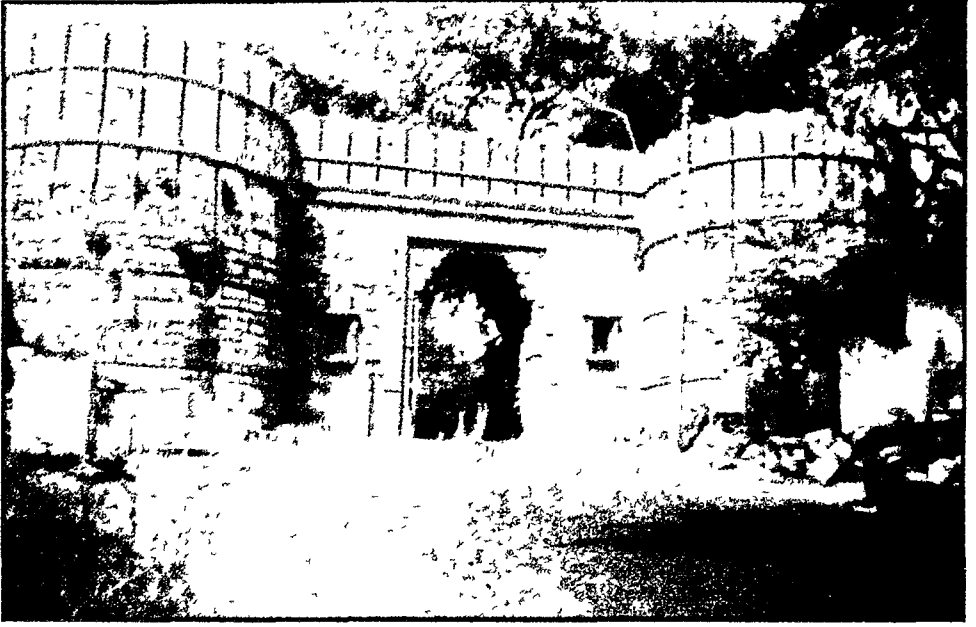
चित्तौडगढ का भैरवपाल जहां पर राजराणा सिंह जी युद्ध में शहीद हुए
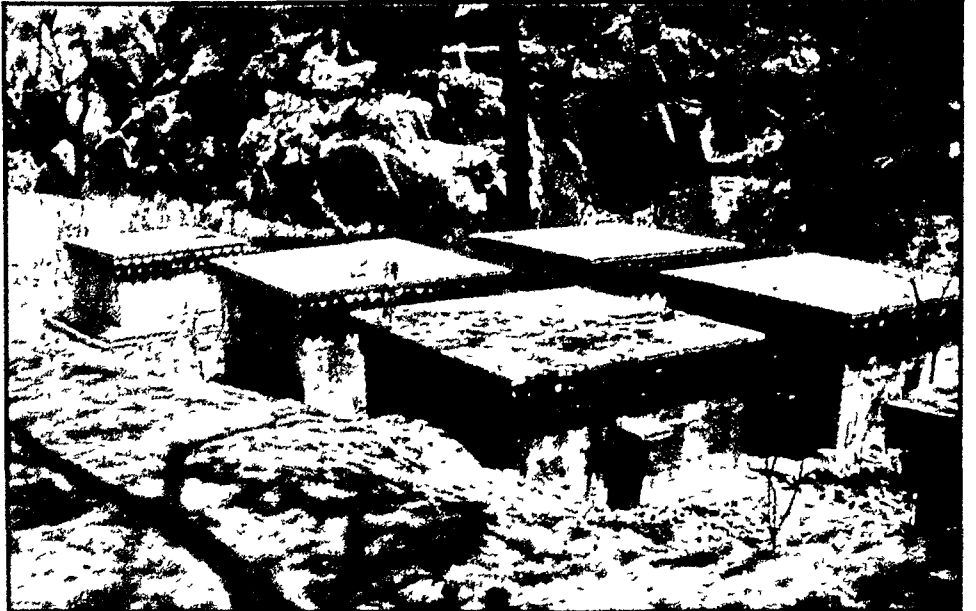
एकलिंग जी के निकट स्थित (देलवाडा) श्मशान में
राजराणा शिवसिंहजी का चबूतरा

वडी सादड़ी राजमहल का त्रिपोलिया द्वार का चित्र
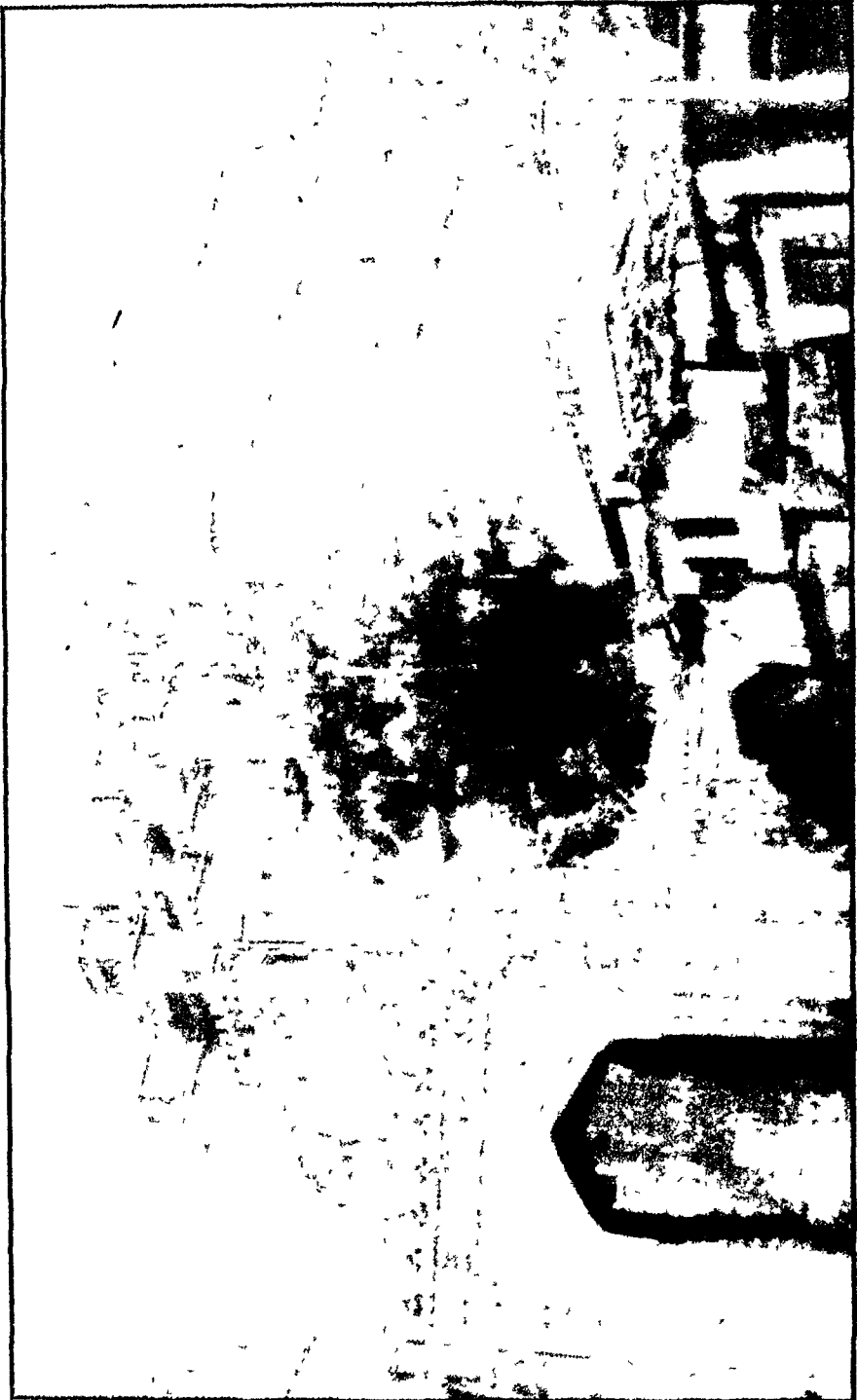
बडी सादडी ठिकाने के राममहल का मुख्य द्वार जो शाही दरवाजे में नाम से प्रसिद्ध है
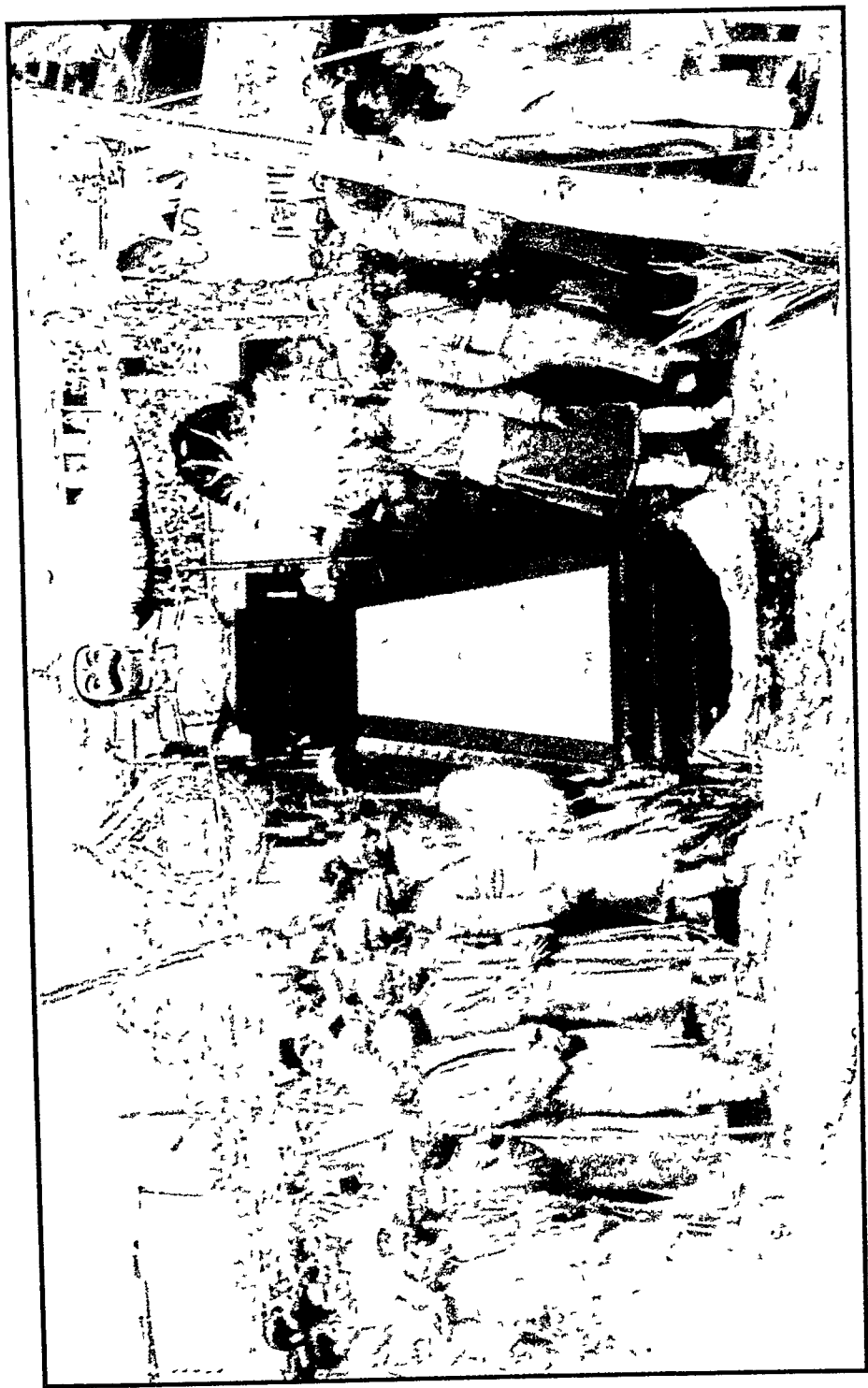
बडी सादडी से भालामान की स्थापित मूर्ति

राजस्थान के राज्यपाल श्री जोगेनद्र सिंह जी द्वारा
झाला मान की मूर्ति का अनावरण

राजराणा कल्याणसिंहजी महाराणा भूपालसिंह के दरीखाने में बिराजे हुए
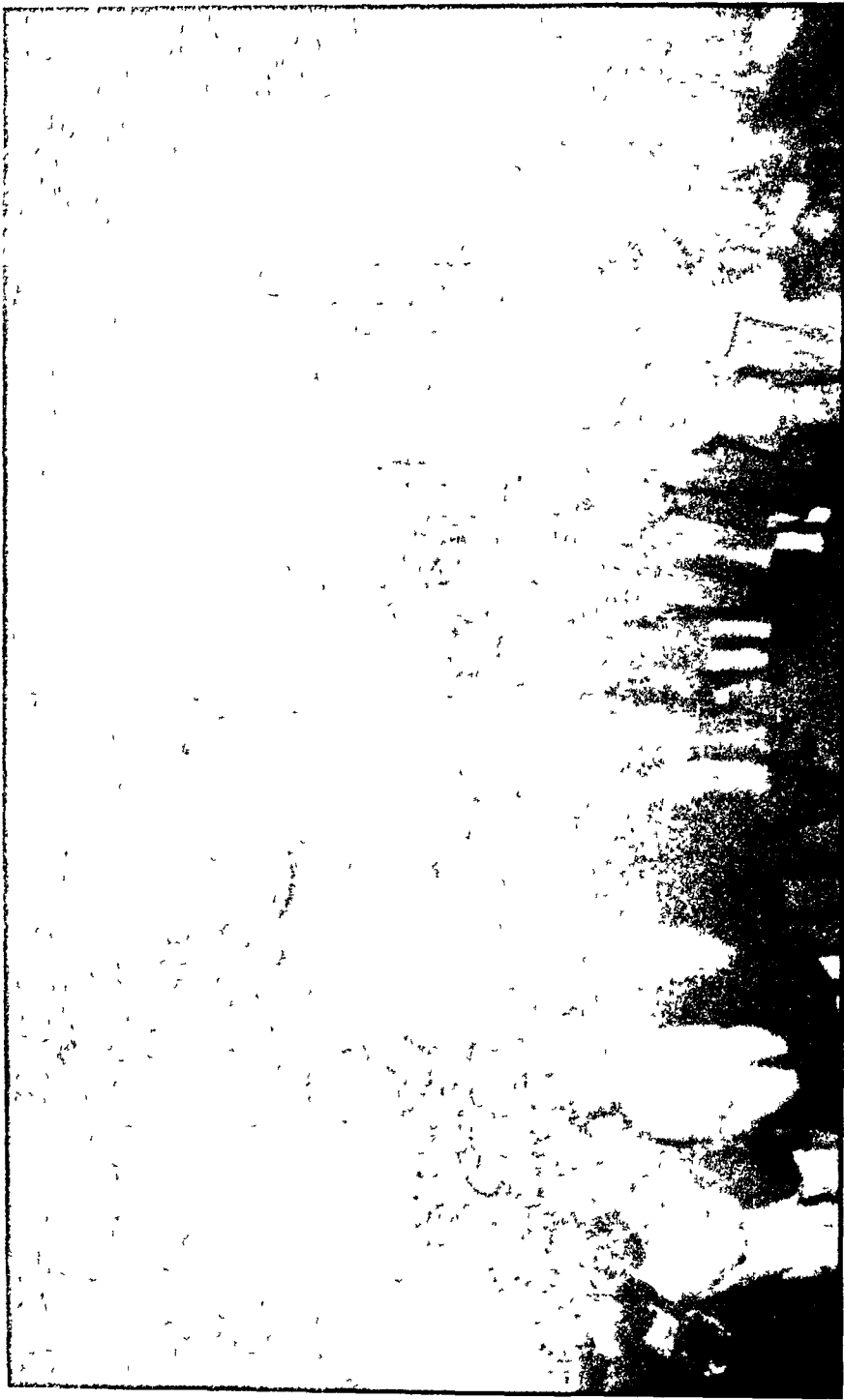
राजराणा हिम्मतसिंहजी भाद्राजून से विवाह कर के बडी सादडी में आकर सवारी के साथ राजमहल का चित्र
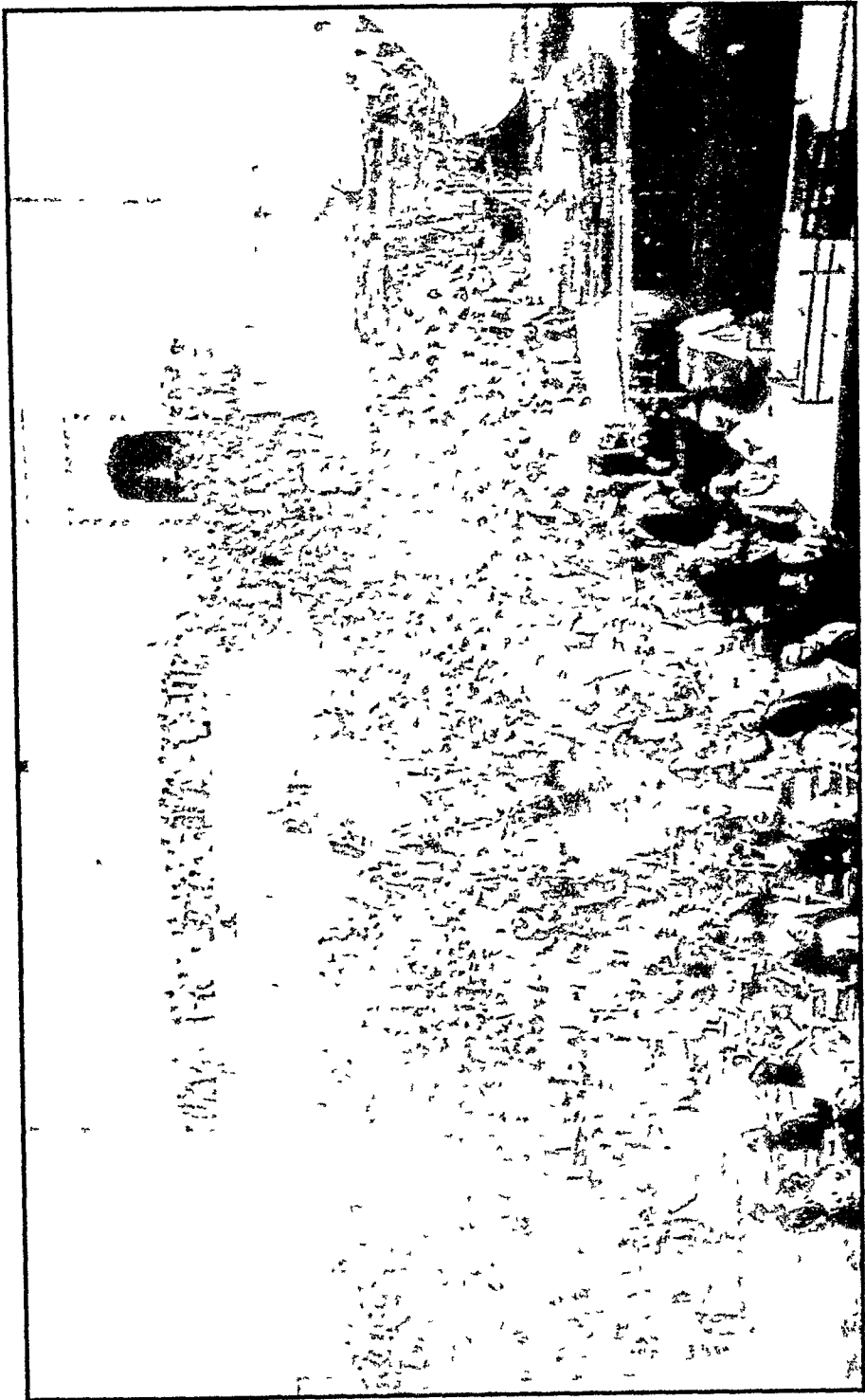
राजराणा कल्याणसिंहजी की शादी के समय की वर निकासी की सवारी
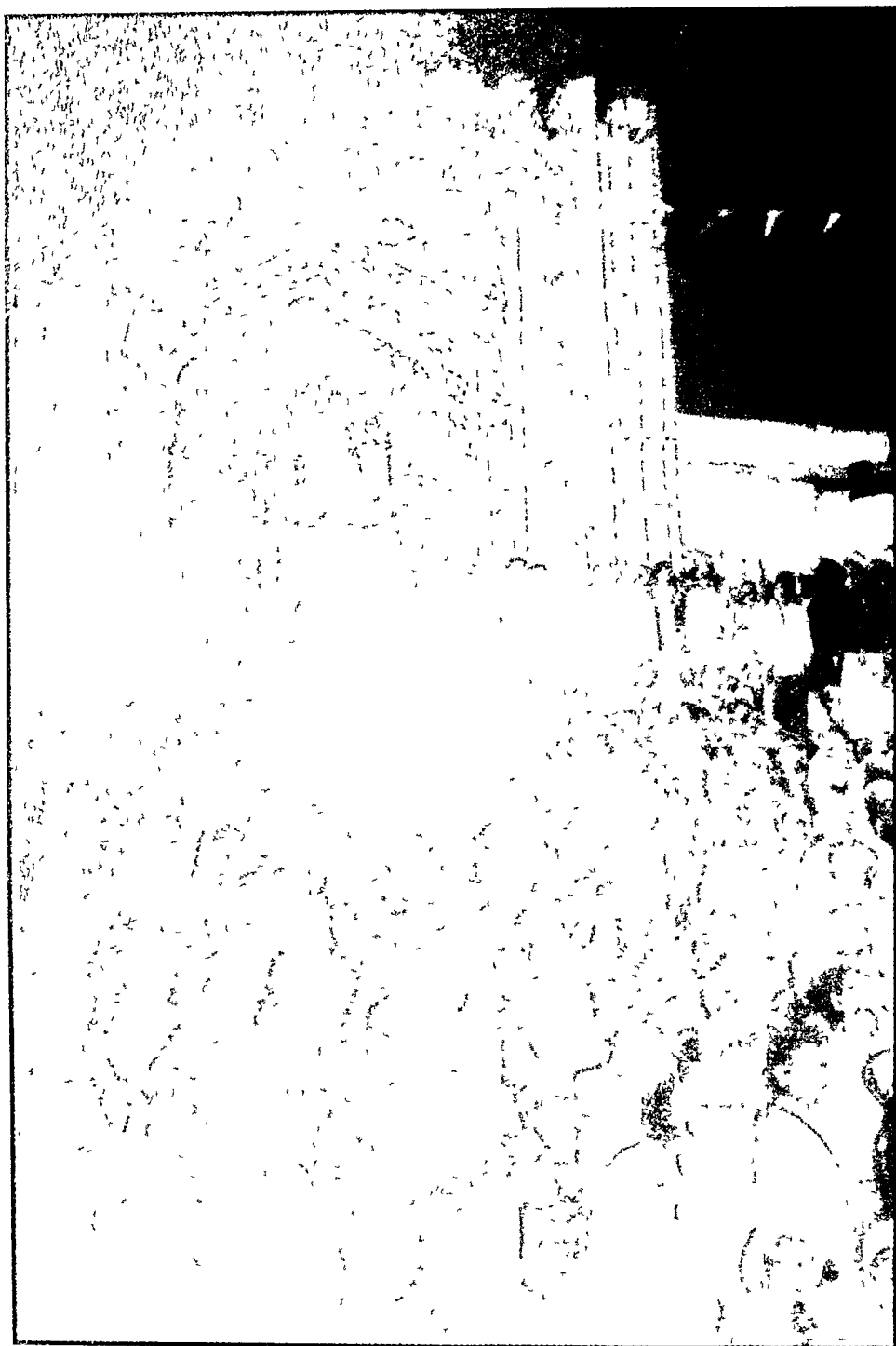
राजराणा हिम्मतसिंहजी की शादी की वर निकासी का चित्र
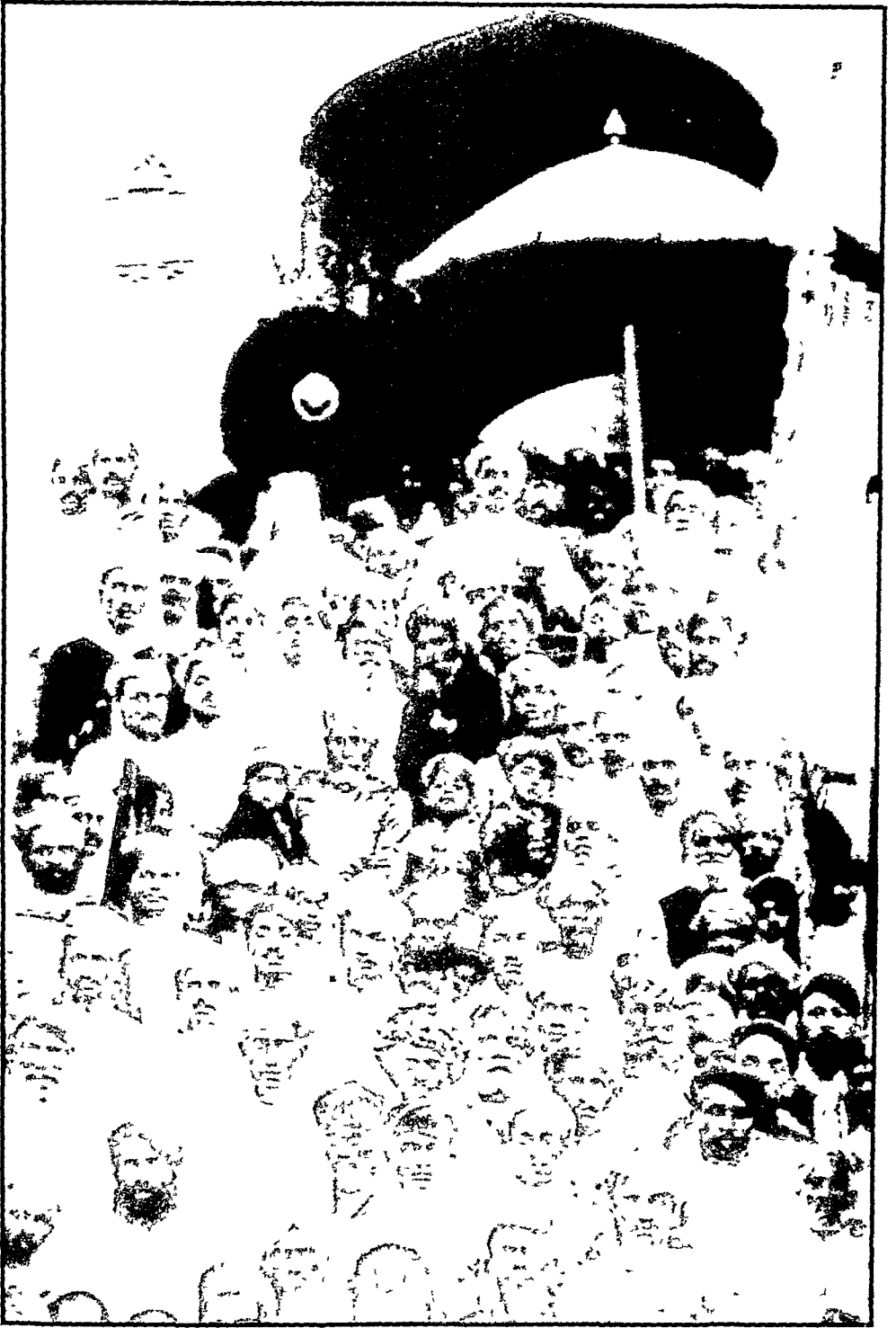
राजराणा कल्याणसिंह की आसोज सुदी 9 की महलों से
चालकरायजी माताजी के मंदिर को जाती हुई सवारी का चित्र
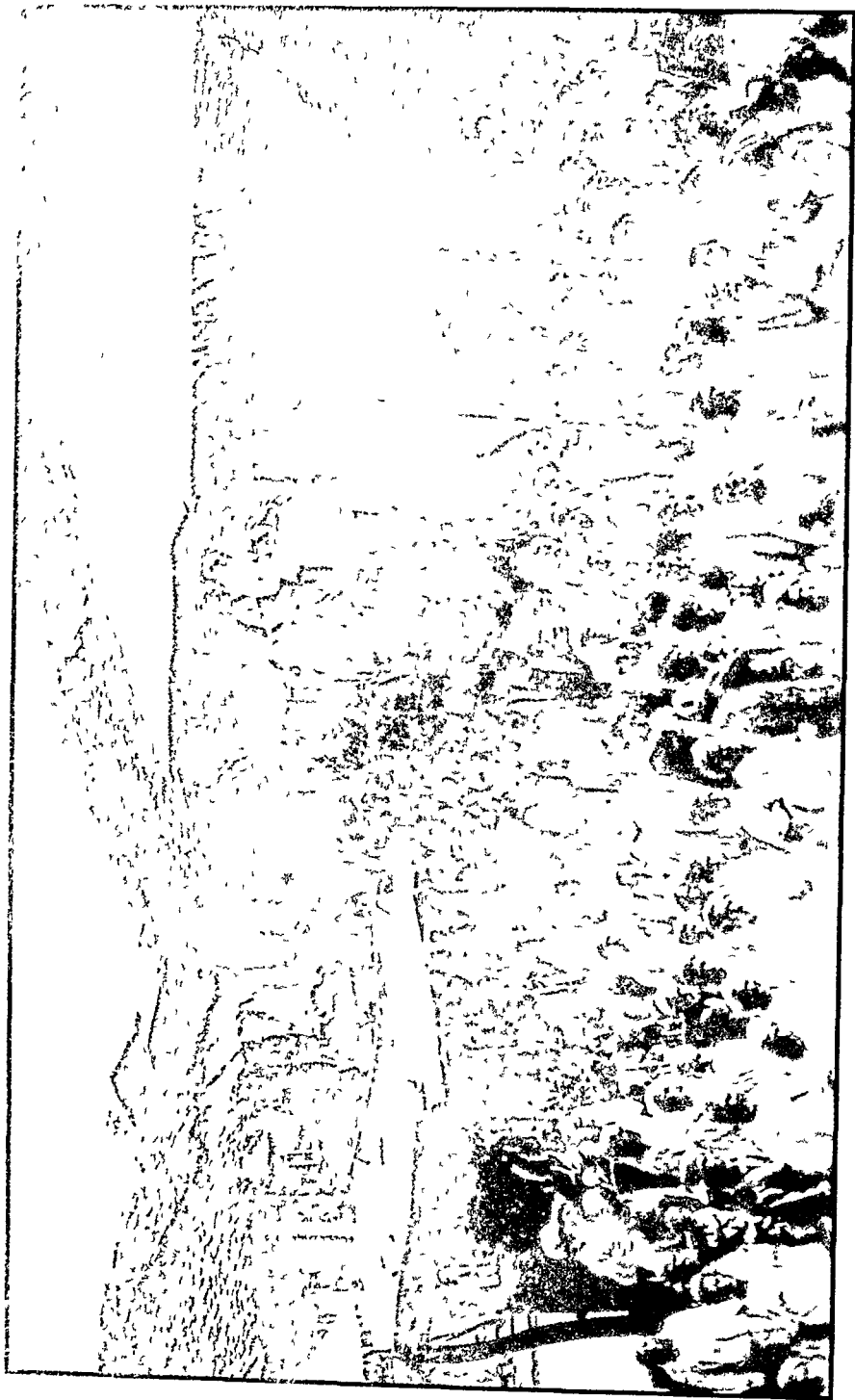
राजराणा कल्याणसिंह के जन्मदिन पर सवारी से बडे मंदिर को जाती हुई सवारी का चित्र

[illegible] सिंह जी तलवार बन्दी के समय पर लिया गया फोटो
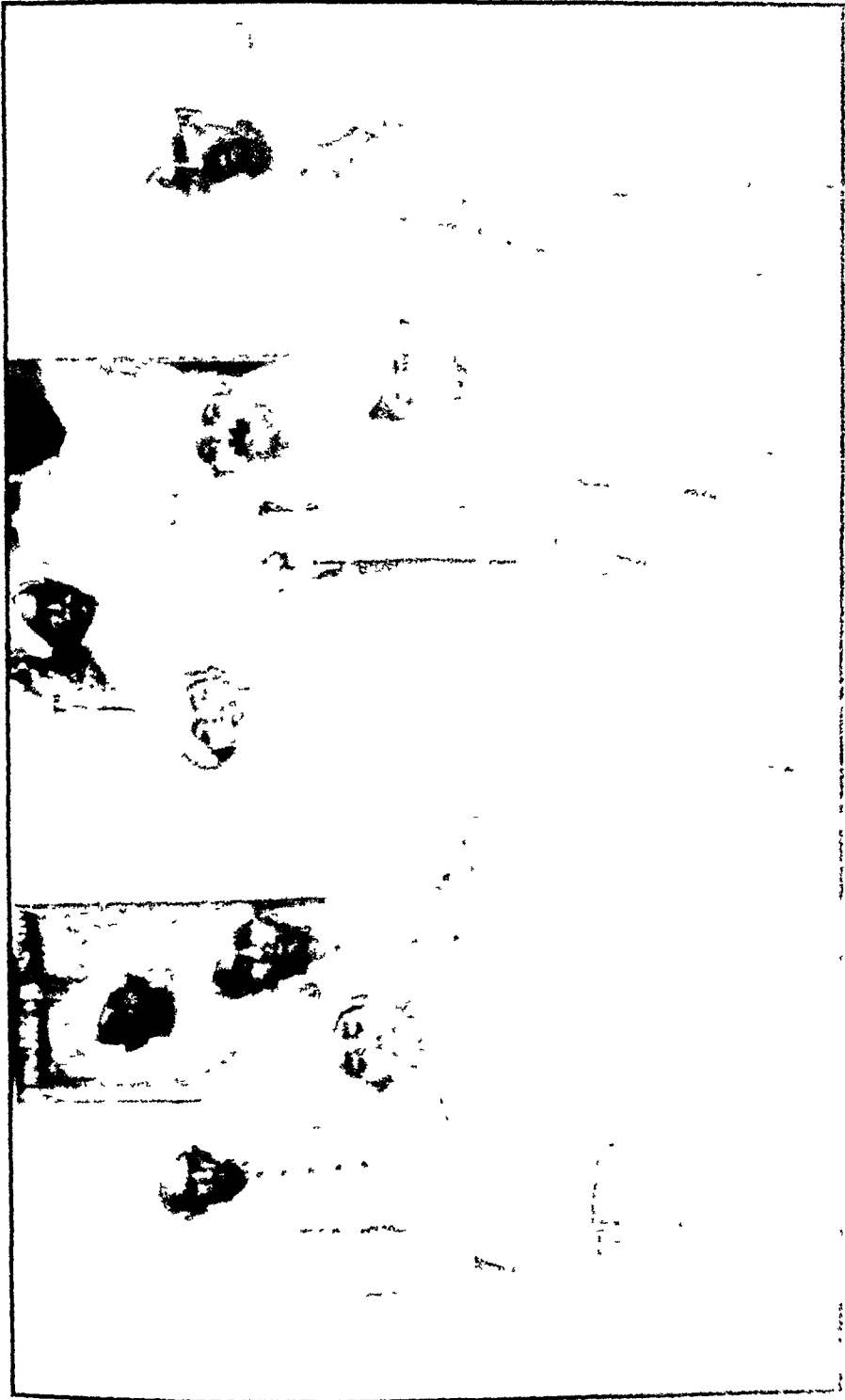
राजराणा हिम्मतसिंहजी की तलवार-बंदी के बाद हवेली में दरीखाना
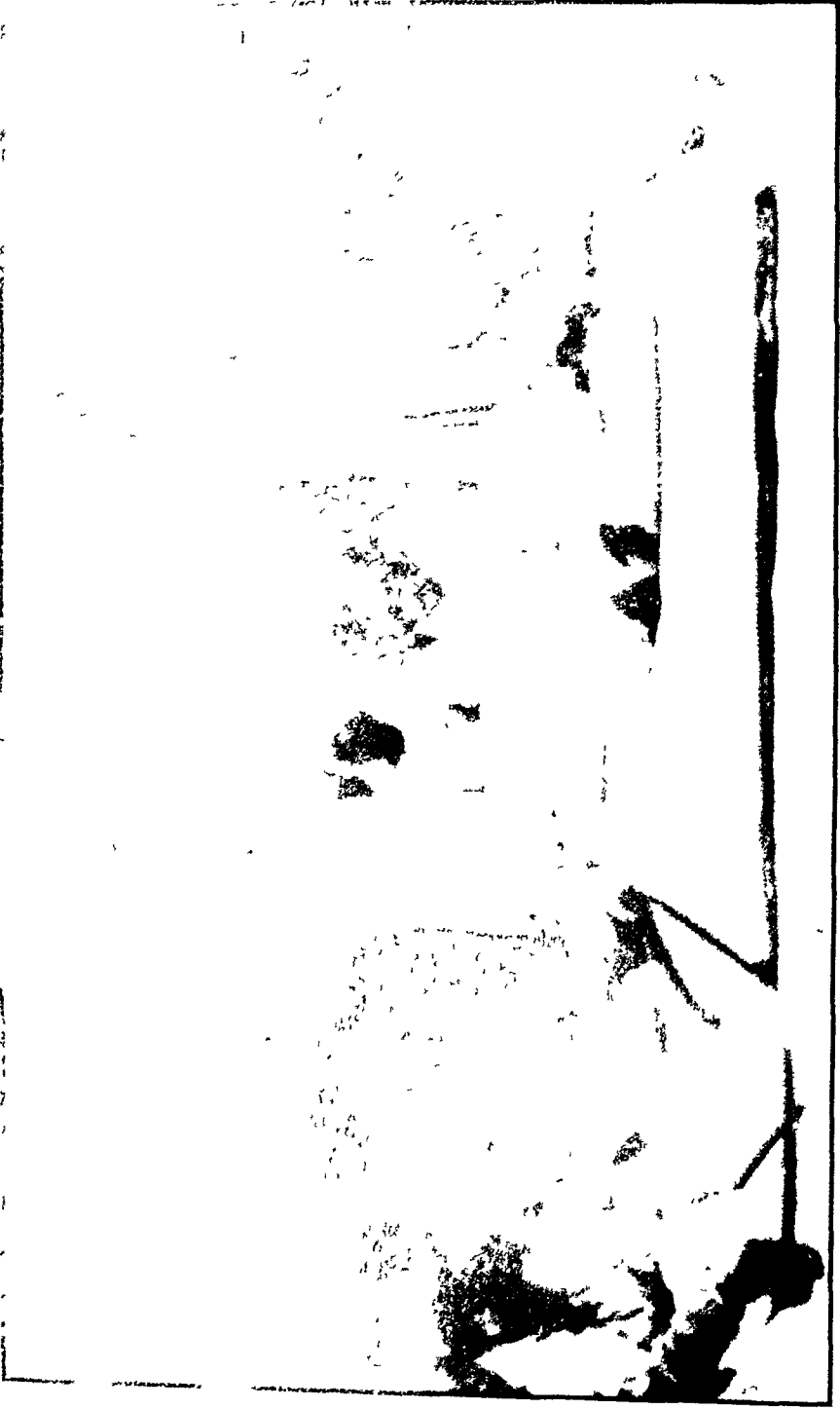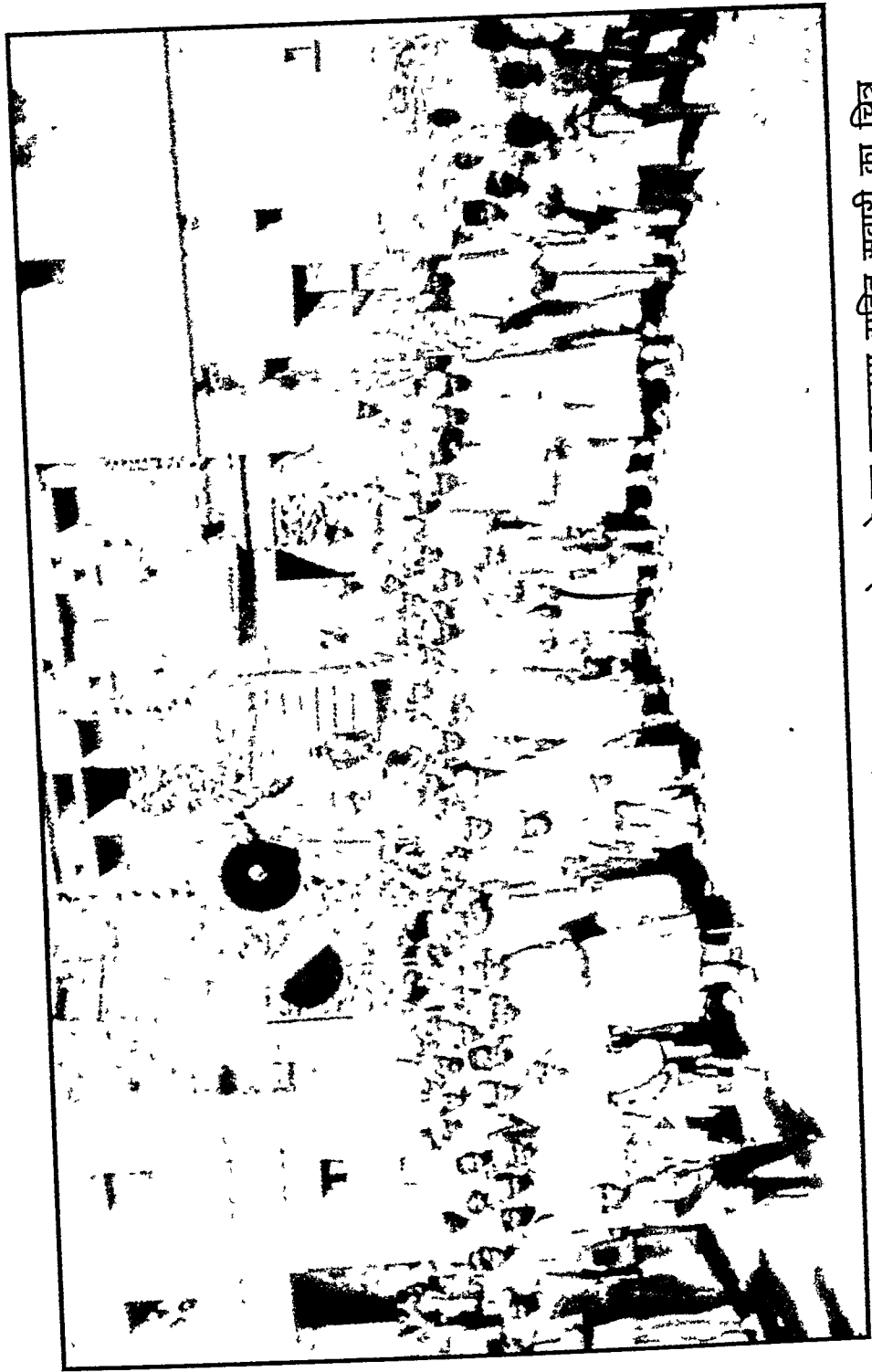
राजराणा हिम्मतसिंहजी की तलवार बन्दी हेतु राजमहल को जाते हुए लवाजमा सहित सवारी का चित्र

राजराणा कल्याणसिंहजी की जनेऊ के समय का चित्र

मऊस्थित सेंट मेरीज कान्वेंट स्कूल में अध्ययनरत
राजराणा हिम्मत सिंह जी सबसे आगे खड़े हुए

राजराणा हिम्मतसिंहजी कोटा महाराव भीमसिंहजी से पुरस्कार प्राप्त करते हुए

5. राजराणा वीदा (मानसिंह) – (1568-1576 ई.)

झाड़ोल में वीदा की गद्दीनशीनी

25 फरवरी, 1568 ई. को चित्तौड़गढ़ में राजराणा सुरताण के काम आने के पश्चात् उसका दूसरा पुत्र मानसिंह झाड़ोल की गद्दी पर बैठा, जो इतिहास में वीदा (वेदा) के नाम से जाना गया। राजराणा सुरताण ने 27 वर्षो तक झाड़ोल में शासन किया। मारवाड़ के राव मालदेव और हाजीखां के विरुद्ध लड़ाईयों में सुरताण ने महाराणा उदयसिंह का साथ दिया था। उसके सिवाय सुरताण का काल शाति का काल रहा और उसको अपने इलाके में कृषि एवं उद्योग की तरक्की का अवसर मिला। किन्तु वीदा के गद्दीनशीन होते ही प्रारम्भ से ही मेवाड़ के पर्वतीय भाग में मुगलों के विरुद्ध छापामार लड़ाई की तैयारी की दृष्टि से उसको महाराणा उदयसिंह की सहायता करनी पड़ी। उसने चित्तौड़गढ़ में हुए विध्वंस की क्षति की पूर्ति शुरू की और सैनिक दल का पुनर्गठन किया। पहाड़ों में छापामार लड़ाई की आवश्यकताओं को देखते हुए शस्त्रों, तलवारों, भालों आदि के निर्माण तथा भील मुखियों द्वारा भीलों को संगठित करना प्रारम्भ किया। उसने चित्तौड़ में मारे गये अपने भायपों, अधीनस्थ जागीरदारों आदि के परिजनों, राजपूत सैनिकों के परिवारों के भरण-पोषण की सुव्यवस्था की तथा वयस्क पुरुषों को सेना में भर्ती करना शुरू किया।

उधर मुगल सेनापति हुसैनकुलीखां के अपनी सेना के साथ वापस पहाड़ी भाग से चले जाने के बाद महाराणा उदयसिंह पानरवा की ओर से गोगूंदा लौट आया। उस समय मुगल सेना की ओर से पहाड़ी भाग में सैनिक थाने कायम नही किये गये थे। महाराणा ने मैदानी भाग के सभी जागीरदारों को अपनी जन-धन की शक्ति को लेकर पहाड़ों में बुला लिया। पहाड़ी भाग पर अकबर के आसन्न आक्रमण का मुकाबला करने की दृष्टि से महाराणा उदयसिंह ने अपने सरदारों के साथ मंत्रणा की और छापामार युद्ध की योजना बनाई। राजराणा वीदा ने इस मंत्रणा में भाग लिया। महाराणा के पास केवल पहाड़ी भूमि ही बची थी और सामंती सैनिक व्यवस्था चरमरा गई थी। अतएव पहाड़ी युद्ध की नवीन स्थितियों और आवश्यकताओं को देखते हुए अतिरिक्त केन्द्रीय सैन्यबल के गठन और भील समुदाय से संगठित सहयोग की प्राप्ति की ओर ध्यान दिया गया। पहाड़ों में प्रवेश करने के चार वर्ष बाद 28 फरवरी, 1572 ई. को महाराणा उदयसिंह का गोगूंदा में देहान्त हो गया।

बीदा का महाराणा प्रताप के राज्यारोहण में भाग लेना

महाराणा उदयसिंह के देहान्त के समाचार पाकर राजराणा वीदा तत्काल झाड़ोल से रवाना होकर गोगूंदे पहुँचा और दिवंगत महाराणा की दाह-संस्कार-क्रिया में भाग लिया। महाराणा उदयसिंह का छोटा पुत्र जगमाल उसकी दाह-संस्कार-क्रिया में शरीक नहीं हुआ और पीछे रहकर वह स्वयं मेवाड़ के राज्यसिहासन पर आसीन हो गया। अपनी मृत्यु से पहिले

महाराणा उदयसिंह अपनी रानी धीरकंवर भाटी के वशीभूत होकर उसके छोटे पुत्र जगमाल को अपना उत्तराधिकारी बना गया था जो उत्तराधिकार के सदीप से प्रचलित कानून के विपरीत था। दाह-संस्कार से लौटते समय सभी सरदारों को इस बात का पता चला। उस समय मेवाड़ के लगभग सभी बड़े सरदार तथा सगे-सम्बन्धी मौजूद थे, जिनमें ग्वालियर का राजा रामसिंह (रामशाह), प्रधान चूंडावत सरदार किशनदास, झाड़ोल राजराणा बीदा झाला, पाली का मानसिंह सोनगरा (महाराणा उदयसिंह का साला), सांगा चूंडावत (देवगढ़), प्रतापसिंह चौहान (बेदला), पृथ्वीराज चौहान (कोठारिया), शुभकरण पंवार (बिजौलिया), गोविन्ददास चूंडावत (बेगूं), करणसिंह चूंडावत तथा देलवाड़ा का झाला मानसिंह प्रधान थे। सरदारों की राज्यपरिषद ने एकमत से महाराणा उदयसिंह के निर्णय को अमान्य करके कुंवर जगमाल को राज्यगद्दी से उतार कर ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह को गोगूंदा के राजमहल में गद्दी पर बिठाकर सबने उसको नजराणा कर दिया। कुंवर प्रतापसिंह उस समय 32 वर्ष का था और सभी प्रकार से योग्य था। वह श्रेष्ठ योद्धा था और अपनी युवास्था में उसने बागड़, छप्पन और गोडवाड परगनों की विजय करके अपने सेनापतित्व के गुणों को उजागर किया था।[1] उस काल की यह आश्चर्यजनक घटना थी कि मेवाड़ में इस उत्तराधिकार के परिवर्तन से सरदारों में किसी प्रकार का मतभेद अथवा कलह नहीं पैदा हुआ, जबकि उसकाल में अन्य राजपूत राज्यों में राज्याधिकार को लेकर गृह-कलह चल रहे थे। मेवाड़ की राज्यपरिषद का यह निर्णय मेवाड़ राज्य के लिये वरदान सिद्ध हुआ। वह ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई, चूंकि उसके द्वारा नियुक्त महाराणा प्रताप ने अपनी आजादी की अदम्य एवं अटूट लड़ाई द्वारा स्वयं का और मेवाड़ का नाम इतिहास में अमर कर दिया। निश्चय ही झाला अज्जा के वंशधर बीदा ने कुंवर प्रताप को गद्दी पर बिठाने में अपनी दृढ़ एवं अग्रिम भूमिका निभाई।

राजपूत राज्यों के संघ का निर्णय

महाराणा प्रतापसिंह के कुम्भलगढ़ में सम्पन्न राज्यारोहण-समारोह में मेवाड़ के सभी बड़े-छोटे सरदारों के अलावा तथा ग्वालियर का भूतपूर्व शासक राजा रामसिंह तंवर और उसके पुत्रों के साथ, जोधपुर का राव चन्द्रसेन, डूंगरपुर का रावल आसकरण, सिरोही का राव सुरताण, ईडर का राव नारायणदास, प्रतापगढ़ का रावत तेजसिंह अपने काका कांधल सहित, बांसवाड़े का रावल प्रतापसिंह, भोमट के पानरवा ठिकाने का राणा पूंजा सोलंकी तथा पठान हकीम खां सूर आदि शरीक थे।[2] यह मेल छोटे स्तर पर राजपूतों के विघटित हो गये परिसंघ के पुनर्जीवित होने का नजारा था। समारोह में बड़ी संख्या में राजपूत एवं धनुष-बाण धारण किये भील लोग उपस्थित थे। इस अवसर पर बड़े उत्साह, जोश और आशा के वातावरण में सभी ने एकमत से मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह के नेतृत्व में बादशाह अकबर द्वारा थोपी जा रही दासता के

1 महाराणा प्रताप महान ले डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 3-5

2 वही, पृ 6

विरुद्ध मिल-जुलकर स्वतंत्रता की लड़ाई जारी रखने का निर्णय लिया। वह लड़ाई न केवल मेवाड़ की स्वाधीनता एवं गरिमा की रक्षा के लिये होगी अपितु सारे राजपूताने की स्वाधीनता और एकता को पुनर्स्थापित करने के उद्देश्य से लड़ी जावेगी, जिसमें राजपूताने के विभिन्न वंशों, सिसोदियों, गहलोतों, कछवाहों, राठोड़ों, चौहानों, भाटियों, पंवारों, तंवरों आदि के राजपूत शासक और सैनिक शरीक होंगे जो वादशाह अकवर की दासताजनक अधीनता के विरोधी होंगे। उस समय कुम्भलगढ़ में उपस्थित सभी राजनीतिक शक्तियों ने यह भी आशा प्रकट की थी कि महाराणा प्रताप के नेतृत्व में संचालित मुगल विरोधी संघर्ष आगे चलकर विदेशी मुगल-दासता विरोधी संघर्ष का प्रतीक वन जावेगा और भारत की अन्य मुगल विरोधी शक्तियों को प्रेरित एंव एकजूट करने वाले संघर्ष का स्वरूप धारण कर लेगा जो मुगल वादशाह की स्वेच्छाचारी एवं दासताजनक नीतियों एवं कार्यवाहियों को चुनौती दे सकेगा। सभी को मेवाड़ की दुर्गम पर्वतीय भूमि के भीतर महाराणा प्रताप की छापामार-युद्ध-योजना की सफलता पर विश्वास था।

छापामार-युद्ध-नीति

महाराणा प्रताप ने अपने पिता उदयसिंह द्वारा तैयार की गई छापामार-युद्ध-योजना को मूर्त रूप दिया। उसने 320 मील की परिधि वाली मेवाड़ की पहाड़ी भूमि को एक दुर्ग के रूप में ढाल दिया। पहाड़ी भूमि के सभी प्रवेश मार्गों पर सैनिक नाके कायम करके उनको वन्द कर दिया। पहाड़ों के भीतर के सैनिक दृष्टि से सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर राजपूतों एवं भीलों के सैनिक दस्ते नियुक्त कर दिये तथा प्रशासन को इस भांति विकेन्द्रित कर दिया, जिससे सारे पहाड़ी भाग में शत्रु के विरुद्ध एक साथ और अलग-अलग सैनिक कार्यवाहियां करना संभव हो सके। पहाड़ों की ऊंची घाटियों एवं कन्दराओं में राजपरिवार, जागीरदारों के परिवार तथा प्रशासनिक अधिकारियों एव सैनिकों के परिवारों की सुरक्षा और राज्यकोप एवं शस्त्रागारों की भंडार-व्यवस्था का प्रवंध किया गया। इन सव कार्यों में पर्वतवासी भीलों की क्षमता का पूरा उपयोग किया गया। इसके साथ प्रताप ने पहाड़ी भाग में उपलव्ध सम्पूर्ण कृपि योग्य भूमि का विभिन्न आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन के लिये उपयोग करने की योजना लागू की। मुगल साम्राज्य के साथ युद्ध टालने की दृष्टि से भी प्रताप ने चतुर कूटनीति का सहारा लिया। एक ओर राजपूताने की मुगल विरोधी शक्तियों का संघ वनाने की चेष्टा जारी रखी, दूसरी ओर उसने वादशाह अकवर को कतिपय शर्तों पर सुलह करने के संकेत दिये, जिसे अकवर को यह आशा हुई कि भूमि, सैन्यवल और साधनों की दृष्टि से कमजोर हो गया महाराणा प्रताप सम्भवत· उसके अधीन हो जायेगा। इसके कारण उसने 1572-73 ई. के दौरान सुलह-वार्ता के लिये क्रमश· जलाल खां कोर्ची, कुंवर मानसिंह, भगवंतदास और टोडरमल के नेतृत्व में चार दूतमंडल भेजे और वरावर आग्रह किया कि प्रताप उसके दरवार में आकर उपस्थित हो जाय। प्रताप ने टकराव अथवा आक्रामक रुख छोड़कर शांतिपूर्ण वार्ताएं की और सम्मानजनक शर्तों के आधार पर सुलह करने की इच्छा प्रकट की, जिसमें वादशाह के दरवार में हाजिर नही होने और चाकरी

नही करने की शर्त शामिल थी। प्रताप ने एकदम इन्कार भी नहीं किया और बहाने करने और आश्वासन देने की कूटनीति पर चलता रहा। परिणामस्वरूप तत्काल युद्ध का खतरा टल गया और अवश्यम्भावी युद्ध हेतु प्रताप को पहाड़ी भूमि मे सभी प्रकार से युद्ध की तैयारियां करने का समय भी मिल गया।[3]

मानसिंह की मेवाड़ पर चढ़ाई

राजपूताने में मेवाड के पहाडी भाग का स्वतन्त्र रहना सम्राट अकबर के अहंकार को चुनौती के समान था। वह भाग दिल्ली से समुद्र की ओर जाने के मार्ग में भी पड़ता था। राजपूत राज्यों के सघ का नेता रहे मेवाड़ को स्वतंत्र छोड़ना राजपूतों को स्थायी तौर पर अधीन रखने की दृष्टि से भी बाधक था, चूंकि अब भी स्वतत्र मेवाड़ राज्य उसके अधीनस्थ राजपूतों एव हिन्दुओं के लिये प्रेरणा और आदर्श का केन्द्र बना हुआ था। अतएव 1576 ई. में उसने आमेर के कछवाहा कुंवर मानसिह को 5000 की सेना देकर मेवाड़ पर भेजा, जो जून माह के प्रारम्भ में अरावली पर्वतमाला के बाहर खमनोर के पास बनास नदी के किनारे मोलेला गाव में आकर ठहरा। मानसिंह की कूच की खबर पाकर प्रताप ने सभी सरदारों एवं सैन्य अधिकारियों को परवाने भेजकर अपनी-अपनी सैन्य टुकडियॉ लेकर गोगूदा बुलाया। महाराणा का आदेश मिलते ही राजराणा वीदा झाड़ोल से अपने भायप सरदारों, अधीनस्थ जागीरदारों एवं राजपूत सैनिकों को लेकर गोगूंदा पहुॅचा। मानसिह का इरादा खमणोर के पास वाले हल्दीघाटी के मार्ग से पहाडों मे घुसने का था, चूंकि अब तक प्रताप ने पहाडों से बाहर निकलकर मुगल सेना का सामना नही किया था।[4]

युद्ध-परिषद में राजराणा वीदा का भाग लेना

महाराणा ने सभी सरदारों और अधिकारियों की युद्धपरिषद बुलाकर उसकी बैठक में युद्ध-नीति के सम्बन्ध में मत्रणा की। परिषद की बैठक में राजराणा वीदा झाला के अलावा ग्वालियर का राजा रामसिह तवर, राजराणा मानसिह झाला (देलवाडा), राव संग्रामसिंह, भीमसिह डोडिया, डूंगरसिंह पवार, शेरखान चौहान, कल्याणसिह चूडावत, हरिदास चौहान, नाथा चौहान, दुर्गादास, प्रयागदास भाखरोट, आलम राठौड, नदा प्रतिहार, सेदू महमूद खान, मानसिह सोनगरा, जयमल कूपावत, भामाशाह, हकीमखां सूर, काधल सिसोदिया (देवलिया) आदि प्रधान रूप से शामिल थे। परिषद की सामान्य राय यह थी कि मानसिह की सेना के साथ पहाडी भाग से वाहर खुले मैदान में युद्ध नही किया जाय और मानसिह द्वारा सेना सहित पहाड़ी भाग में प्रवेश करने के वाद छापामार युद्ध-प्रणाली से उस पर हमले किये जाय। किन्तु कछवाहा कुवर मानसिह के सेनापतित्व में मुगल सेना के आगमन से सभी राजपूत योद्धा बहुत क्रुद्ध एव उत्तेजित थे

---

3 Akbar the Great, Vol 1, by Dr A L Srivastava, P 135
महाराणा प्रताप महान ले डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 12-15

4 वही।

और वाहर निकलकर उससे दो-दो हाथ करने के लिये आतुर थे। चूंकि मानसिंह पहाड़ी भाग की तलहटी में आ चुका था, अतएव मिश्रित युद्ध-नीति की योजना वनाई गई। पहाड़ी भाग से निकल कर खुले भाग में मुगल सेना पर धावा वोलना और उसका अधिकाधिक संहार करके उसको पराजित करना तथा विपरीत स्थिति होने पर अपने सैनिकों को सुरक्षित रखने की दृष्टि से वापस समय पर पहाड़ों में लौट आना, पीछे से शत्रु सेना के प्रवेश करने पर उसको पहाड़ों के ऊपर से आक्रमण करके छिन्न-भिन्न करके नष्ट करना।[5]

खमणोर की लड़ाई वीदा का मेवाड़ के राज्यचिह्न धारण करना और आत्म-वलिदान

महाराणा प्रताप 17 जून, 1576 ई. को गोगूंदा से लोसिंग होते हुए खमणोर के निकट वाले पहाड़ी भाग की ओर के प्रवेश मार्ग के भीतरी भाग के खुले भाग (इत्रों का वाग,जो वाद में शाहीवाग के नाम से प्रसिद्ध हुआ) में आकर ठहरा और दूसरे दिन 18 जून को प्रातः अपने 3000 सैनिकों को दो भागों में विभाजित करके वह घाटी से वाहर निकला और खमणोर के खुले भाग में व्यूह-रचना में खड़ी मुगल सेना पर धावा वोल दिया। मुख्य प्रवेश मार्ग से चेटक घोड़े पर सवार महाराणा प्रताप हाथियों सहित सेना का प्रधान भाग लेकर वाहर निकला और काजीखां के नेतृत्व वाले मुगल सेना के वायें पार्श्व पर जोरों से धावा वोलकर उसको पीछे खदेड़ दिया। मेवाड़ की सेना का वायां भाग हकीमखां सूर पठान के नेतृत्व में पहाड़ी भाग से नीचे उतरा और आसफखां के नेतृत्व वाले मुगल सेना के मध्य भाग पर तीव्र हमला करके उसको पीछे भगा दिया। मेवाड़ की सेना के हमले इतने शक्तिशाली रहे कि मुगल सेना नदी की ओर कई मील पीछे भागती रही। झाड़ोल के राजराणा वीदा झाला के साथ रामसिंह तंवर, देलवाड़े का मानसिंह झाला, प्रतापगढ़ का कांधल सिसोदिया, पाली का मानसिंह सोनगरा, धाणेराव का गोपालदास राठोड़ तथा शेरखान चौहान, हरिदास चौहान, राव संग्रामसिंह, कल्याणसिंह चूंडावत, नेतसिंह सारंगदेवोत, भामाशाह, ताराचंद आदि कई वड़े सरदार महाराणा प्रताप के साथ रहकर लड़ने वालों में प्रधान थे।[6]

लड़ाई के प्रारम्भिक दो घण्टों में मुगलों को भारी पराजय का सामना करना पड़ा। मुगल सेना के मध्य एवं वायें पार्श्व के सैनिक मेवाड़ी सेना के तीव्र आक्रमण के आगे नहीं टिक सके और लगभग चार कोस पीछे की ओर भाग गये। किन्तु मुगल सेना के वायें पार्श्व के सैयद सैनिक हकीमखां सूर के अफगान एवं राजपूत सैनिकों के आगे डटे रहे। चेटक घोड़े पर सवार महाराणा प्रताप ने वड़ा युद्ध-कौशल दिखाया। उसी प्रकार रामसिंह तंवर और राजराणा वीदा झाला ने प्रताप का साथ देते हुए वड़ी वीरता एंव रणकौशल का प्रदर्शन किया। पीछे की ओर

---

5 महाराणा प्रताप महान, ले डॉ देवीलाल पालीवाल।

6 उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, ले गौ ही ओझा, पृ 104
Akbar the Great Vol 1 by Dr A L. Srivastava P 186
महाराणा प्रताप महान ले डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 35

भागती हुई मुगल सेना का पीछा करते हुए महाराणा प्रताप मुगल सेना के मध्य भाग में पहुँच गया, जहाँ हाथी पर सवार मानसिह मौजूद था। मानसिह पर खतरा आया देखकर माधोसिह के कछवाहा सैनिकों ने मानसिह के रक्षार्थ उसके इर्द-गिर्द घेरा बना लिया। प्रताप ने उसको चीरते हुए सीधे हाथी पर सवार मानसिह पर हमला कर दिया। चेटक घोडे के आगे के दो पैर हाथी के मस्तक पर टिकाकर प्रताप ने मानसिह पर सीधा भाले का वार किया। मानसिंह ने होदे में झुक कर वार बचा लिया किन्तु उसका महावत मारा गया। उसी समय हाथी की सूंड की तलवार के वार से चेटक घोडे का पिछला पैर कट गया। उसी समय कछवाहों ने प्रताप को घेर कर उस पर वार शुरू कर दिये। तीन पैरों वाले चेटक घोडे पर सवार घायल प्रताप बडी वीरता, साहस और कौशल के साथ चारों ओर वार करता हुआ कछवाहों के घेरे को तोड़ने लगा। उस समय रामसिह तंवर और उसके तीनों पुत्र, झाला राजराणा वीदा, हकीमखां सूर, मानसिंह सोनगरा आदि आगे बढ़कर कछवाहों के घेरे को तोड़ने में सफल रहे और घायल चेटक पर सवार क्षत-विक्षत प्रताप को बाहर निकाला। अन्य राजपूत योद्धा भी लड़ते हुए मध्य भाग की ओर झपटे हुए आये। प्रताप को कई घाव लग चुके थे और मेवाड़ की स्वतंत्रता की रक्षार्थ प्रताप का जीवित रहना आवश्यक था। समय रहते मेवाडी सेना को एक साथ पीछे लौटाने का अवसर नही रहा था। उधर मुगलों की भागती हुई सेना 'बादशाह अकबर मदद के लिये आ गया है' की अफवाह सुनकर लौटने लगी तथा उसके साथ मुगलों की रिजर्व टुकडी भी मैदान में उतर आई और मेवाड़ी सेना को तीन ओर से घेर लिया।[7]

इस भांति तीन घण्टे के युद्ध के बाद युद्ध की स्थिति में परिवर्तन आ गया और विजयश्री मेवाडी सेना के हाथ से जाती रही। उस समय प्रताप को युद्ध-क्षेत्र से सुरक्षित निकालना तात्कालिक आवश्यकता हो गई। एक बार फिर 1527 ई के खानवा युद्ध की स्थिति पैदा हो गई। बाबर के पौत्र अकबर की सेना का दबाव महाराणा सागा के पौत्र प्रताप की सेना पर बढता जा रहा था। जिस प्रकार राजराणा झाला अज्जा ने महाराणा सांगा का स्थान लेकर उसको सुरक्षित युद्ध-क्षेत्र से बाहर निकाला था, उसी प्रकार अज्जा की पॉचवी पीढी के वंशधर राजराणा वीदा झाला ने वही बलिदानपूर्ण कर्तव्य पूरा किया। कछवाहो के घेरे से क्षत-विक्षत चेतक घोड़े पर सवार घायल अवस्था में महाराणा प्रताप के बाहर निकलकर आने पर राजराणा वीदा ने तत्काल महाराणा प्रताप के छत्रादि राज्यचिह्न धारण कर लिये और महाराणा बन कर युद्ध का संचालन करने लगा।[8] अन्य राजपूत सैनिक भी महाराणा प्रताप की जय' का नारा लगाते हुए उसके साथ

---

7 Akbar the Great, Vol 1 by Dr A L Srivastava, P 195
महाराणा प्रताप महान ले डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 37-38

8 कर्नल जेम्स टॉड ने अपने ग्रथ में इस घटना का वर्णन करते हुए लिखा है—"Marked by the 'royal umbrella', which Pertab (Pratap) would not lay aside and which collected the might of the enemy against him, pertab was thrice rescued from amidst the foe, and was

होकर लड़ने लगे। इसके परिणामस्वरूप प्रताप पर शत्रु सैनिकों का दवाव कम हो गया और हकीमखां सूर तथा अन्य राजपूत सरदारों ने महाराणा प्रताप को युद्ध क्षेत्र से वाहर पहुँचा दिया। मेवाड़ी सेना के योद्धा डटकर युद्ध करते रहे। राजराणा वीदा कछवाहों और मुगल सैनिकों के घेरे में आकर वीरतापूर्वक लड़ता हुआ काम आया। उधर मेवाड़ी सेना के वडे-वड़े योद्धा भी मारे गये जिनमें रामसिंह तंवर और उसके पुत्र, हकीमखां सूर, भीमसिह डोडिया, मानसिंह सोनगरा, मानसिह झाला, रामदास मेड़तिया आदि प्रमुख थे। प्रताप के युद्ध से निकल जाने के वाद मेवाड़ की सेना ने धीरे-धीरे पीछे हटना शुरु किया और अंत में पहाड़ों में लौट गई।

राजराणा वीदा की इस कर्तव्यपरायणता और आत्मवलिदान के फलस्वरूप मेवाड़ के इतिहास में हलवद के झाला राजवंश का नाम पुनः उजागर हो गया।[9] झाला वंश का मेवाड़ की रक्षा हेतु क्रमागत यह पॉचवी प्राणाहुति थी। जो ख्याति अज्जा ने अर्जित की थी, वही वीदा को मिली। अज्जा के वलिदान स्वरूप इस वंश को मेवाड़ के राज्यचिह्न धारण करने और

---

at length nearly overwhelmed when the Jhala Chief gave a signal instance of fidelity, and extricated him with the loss of his own life Manah (Jhala Man) seized upon the insignia of Mewar and rearing the 'gold sun' over his own head, made good his way to an intricate position, drawing after him the brunt of the battle, while his prince was forced from the field With all his brave vassals the noble Jhala fell, and in remembrance of the deed his descendants have, since the day of Haldighat, borne the royal ensigns of Mewar, and enjoyed the right hand of her princes" (Annals and antiquities of Rajasthan, Vol I, P 270)

कविराजा श्यामलदास ने अपने ग्रथ वीर विनोद मे इस घटना का जिक्र नही किया है। गौ ही ओझा ने अपने ग्रथ उदयपुर राज्य के इतिहास मे (पृ 441) पादटिप्पणी केवल यह लिखा है कि जेम्स टॉड ने वीदा के वलिदानस्वरूप वड़ीसादड़ी के झालाओं को जिस विशेष पद-प्रतिष्ठा प्राप्त होने का उल्लेख किया है, वे उनको खानवा के युद्ध में झाला अज्जा को वलिदान स्वरूप पहिले से प्राप्त थे। वड़ी सादड़ी ठिकाने के प्राचीन अभिलेखों से प्राप्त सूचनाओं से हल्दीघाटी की लड़ाई में झाला वीदा (मान) द्वारा महाराणा प्रताप से राज्य-चिह्न लेकर स्वय धारण करने का उल्लेख मिलता है।

अकवर महान् ग्रथ के लेखक सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने अपने ग्रथ में इस घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है—"Before the Rana had quitted the field, Jhala Bida of Badi Sadri, out of pure devotion, snatched away the royal unbrella from over the head of his chief, who surrounded by the enemy was in imminent danger, and rushing forward against Man Singh's men cried out that he was the Rana This released the pressure on Pratap and, accompanied by Hakim Khan Sur, he was able to escape safely through the Haldighati pass to Gogunda" (Akbar the Great, Vol I, P 194) - Maharana Pratap Smriti Granth, Ed by Dr Devilal Paliwal, P 175-161)

9 कविवर नाथूदान के शब्दों में—
"आवापी झाला अजव, छत्र चमर सुरथान।
सागा सु अजमल लिया, पातल सु फिर मान॥"

महाराणा के वरावर प्रतिष्ठित होने का जो सम्मान मिला था, उसकी महाराणा प्रताप द्वारा पुनः पुष्टि की गई।[10]

वीदा के विवाह और संतति

वड़वा ईश्वरसिंह की पोथी के अनुसार राजराणा वीदा के हल्दीघाटी में मारे जाने पर झाड़ोल मे उसकी दो रानियाँ रामपुरा की हरकंवर चंद्रावत उदेसिंह की वेटी तथा राजकंवर राठोड़ जुनिया के पृथ्वीसिंह की वेटी सती हुई। वड़वा मदनसिंह की पोथी में इन रानियों के नाम राणावत उदयसिंह की वेटी हरकंवर तथा मूलधान के राठोड़ पृथ्वीसिंह की वेठी शंभूकंवर दिये गये हैं।

उसके अलावा राणीमंगा की सूची के अनुसार राजराणा वीदा के निम्नलिखित रानियां थीं—पहली मैनपुरी के चौहान नाहरसिंह की पुत्री मयाकंवर जिसकी कोख से कुंवर देदा का जन्म हुआ। दूसरी जोधपुर के राव चन्द्रसेन राठोड़ की पुत्री श्यामकंवर। तीसरी राजपीपला के रावत भारमल की पुत्री किशनकंवर। चौथी पोखरण के राठोड़ करणसंह की वेटी मानकंवर।

राजराणा वीदाके पुत्र देदा (दूदा) और रघुनाथसिंह तथा पुत्रियां व्रजकंवर एवं वच्चूकंवर होने का उल्लेख मिलता है।

---

10 राजराणा वीदा की सतानों को मेवाड़ दरवार में विशिष्ट स्वत्व प्राप्त हुए उनमें प्रधान रहे—1 महाराणा के वरावर मेवाड़ के राज्यचिह्न, छत्रादि धारण करना और लवाजमा रखना। 2 राजराणा की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारी को महाराणा द्वारा मातमपुर्सी और तलवार वंधाई के लिये महाराजकुमार द्वारा ठिकाने में जाकर उदयपुर लाना। 3 राजराणा के राजमहलों पर आगमन के समय उसका नक्कारा और दुदुभी ठेठ महलो के द्वार तक वजना। 4 झाकी के जुहार के लिये राजराणा का नहीं ठहरना। 5 राजदरवार में महाराणा के दाहिनी की ओर की प्रथम वैठक पर मुंह वरोवर वैठना। आदि।

6. राजराणा देदा (दूदा) (1576-1611 ई.)

महाराणा प्रताप हल्दीघाटी से निकलकर पहाड़ी भाग में झाड़ोल के निकट कोल्यारी जाकर ठहरा, जहाँ उसने अपनी सारी सेना को घायल सैनिकों के साथ बुला लिया। जब घायल प्रताप अपने घोड़े चेटक पर सवार लड़ाई के मैदान से बाहर निकला तो घोड़े चेटक की हालत बहुत क्षत-विक्षत थी और उसका एक पांव कट चुका था। फिर भी वह तीन पैरों के बल पर अपने स्वामी को लेकर दौड़ रहा था। प्रताप को जाता देखकर दो मुगल सैनिकों ने प्रताप का पीछा किया। उस समय प्रताप का छोटा भाई शक्तिसिंह अपने सहयोगियों के साथ रणक्षेत्र के निकट पहाड़ी भाग में मौजूद था। उसने जब देखा कि मुगल अश्वारोही उसके भाई प्रताप को मारने हेतु उसका पीछा कर रहे थे तो उसने उनका पीछा करके दोनों सैनिकों को मार डाला। चेटक ने घाटी के ऊपर पहुंच कर अपने प्राण छोड़ दिये थे। प्रताप और शक्ति दोनों भ्राताओं का मिलन हुआ और शक्तिसिह ने अपना घोड़ा प्रताप को देकर विदा किया।[1]

प्रताप कोल्यारी पहुँचा। वह झाड़ोल गांव से दो मील दूर उस ठिकाने का गांव था। पहाड़ी भाग के अन्दर दूर दूर तक फैली ठिकाने की यह कृषि योग्य घाटी झालावाड़ कहलाती थी, जो अब भी इसी नाम से जानी जाती है। यह भोमट के घने वनीय भाग से सटा हुआ भू-भाग है। वहाँ उसने अपने समस्त सैनिकों को एकत्र किया, घायलों की चिकित्सा का प्रबन्ध किया और सेना के पुनर्गठन का कार्य शुरू किया।

देदा का झाड़ोल में उत्तराधिकारी होना

झाड़ोल में राजराणा बीदा का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र देदा हुआ। मेवाड़ का महाराणा प्रतापसिंह स्वयं कोल्यारी में मौजूद था। उसने अपने राजकुमार अमरसिंह को भेजकर नये राजराणा को विधिवत बुलवाया और उसका तिलक किया एवं तलवारबन्दी की रस्म पूरी की और ठिकाने के अधिकार प्रदान किये। देदा की गद्दीनशीनी के जलसे में मेवाड़ के अधिकांश सरदारों ने भाग लिया और उसको बधाई दी, जो उस समय वहाँ झालावाड़ में महाराणा के पास मौजूद थे। महाराण प्रताप ने हल्दीघाटी की लड़ाई में राजराणा बीदा के बलिदान की स्मृति में नये राजराणा देदा का अपने दरबार में बड़ा सम्मान किया और अज्जा के वंशजों द्वारा मेवाड़ के लिये किये आत्मोत्सर्ग का बड़ा गुणगान किया। महाराणा ने देदा को राज्यचिह्न धारण कराये और दरबार में अपने मुंह बराबर बैठक प्रदान की। मेवाड के सभी बड़े सरदारों में उसको सर्वोपरि दर्जा दिया और उसको विशिष्ट कुरब एवं ताजीम आदि दिये। महाराणा के निवास तक (उदयपुर में राजमहलों के द्वार तक) नक्कारा एवं दुंदुभी बजाते हुए घोड़े पर सवार होकर आने का विशिष्ट स्वत्व प्रदान किया। नये उत्तराधिकारी राजराणा को तलवारबन्दी के लिये महाराजकुमार द्वारा ठिकाने में जाकर लिवाकर लाने तथा तलवारबन्दी के समय कैद-खालसा

---

1 महाराणा प्रताप महान—ले डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 45

चावंड में राजधानी स्थानांतरिक करने के बाद भी झाडोल एवं झालावाड़ का सामरिक महत्त्व बना रहा। राजराणा देदा ने इस इलाके में प्रताप की सुरक्षात्मक योजना के सभी कार्यों को पूरा करने में अपना योगदान दिया, जिनमें प्रधानतः स्त्रियों एवं बच्चों की रक्षा और देखभाल, शास्त्रास्त्रों के निर्माण का कार्य, राजकोष की सुरक्षा आदि प्रधान थे। राजराणा देदा स्वयं समय-समय पर अपने राजपूत सैनिक लेकर प्रताप के मालवा एवं गुजरात आदि की ओर किये गये सैनिक अभियानों में भाग लेता रहा।

19 जनवरी, 1597 ई. को महाराणा प्रताप का देहावसान होने के बाद महाराणा अमरसिंह चावड में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। प्रताप के जीवन के अंतिम बारह वर्षों के दौरान मेवाड़ राज्य ने सम्पूर्ण शान्ति एवं समृद्धि का उपभोग किया। उसकी मृत्यु के बाद आगे के तीन वर्ष भी मेवाड़ मुगल-आक्रमण से बचा रहा। 1600 ई. में अकबर ने पुनः मेवाड़ विजय का इरादा किया। इससे आगामी पन्द्रह वर्षों तक पुनः मेवाड़ और मुगल साम्राज्य के बीच युद्ध चलता रहा। 1605 ई. में बादशाह अकबर का देहान्त होने के बाद उसके पुत्र जहांगीर ने प्रताप के उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंह के विरुद्ध शाहजादे परवेज को मेवाड़ पर भेजा, किन्तु महाराणा ने देवारी से बाहर निकलकर ऊंटाला के निकट परवेज को बुरी तरह पराजित किया। उसके बाद 1608 ई. में महावतखां के सेनापतित्व में चढ़कर आई मुगल सेना की भी वही दुर्दशा हुई। उसके अगले वर्ष 1609 ई. में जहांगीर ने अब्दुल्लाखाँ को बड़ी सेना देकर मेवाड़ पर भेजा।[7]

राणपुर की लड़ाई में देदा का काम आना

मुगल सेनापति अब्दुल्लाखाँ को भी बराबर पराजय और निराशा हाथ लगी। छुटपुट छापामार प्रणाली की लड़ाइयों में मुगल सेना को जन-धन की बहुत हानि हुई। दो वर्ष तक निरन्तर हमले करते हुए अब्दुल्लाखां इधर-उधर भटकता रहा। वि.सं. 1668 (1611 ई.) में उसने राणपुर की घाटी की ओर से चढ़ाई की। झाड़ोल राजराणा देदा अन्य सरदारों के साथ उससे लडने के लिये भेजा गया। राणपुर की घाटी की लड़ाई में राजराणा देदा वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। राणपुर की नाल में उसके मृत्यु-स्थल पर बनाई गई स्मारक-छत्री अभी तक विद्यमान है। देदा के अलावा मेवाड़ी सेना के कई अन्य सरदार, देवगढ़ का दूदा सांगावत, नारायणदास सोनगरा, सूरजमल, आसकरण, पूर्णमल शक्तावत, हरिदास राठोड़, केशवदास चौहान, मुकुंददास राठोड और केसरीदास कछवाहा आदि भी खेत रहे।[8] किन्तु इस युद्ध में भी मेवाड़ी सेना की विजय रही और गोड़वाड़ प्रदेश पुनः मेवाड़ के अधीन हो गया। यद्यपि महाराणा

---

7 वीर विनोद, भाग-2, ले श्यामलदास, पृ 225

8 गौ ही ओझा ने देदा को सादड़ी का झाला देदा लिखा है। किन्तु उस समय तक अज्जावशी झालाओं के पास सादड़ी नहीं था। देदा उस समय झाड़ोल का स्वामी था।
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, ले गौ ही ओझा, पृ 485
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 33

अमरसिंह के कई प्रसिद्ध योद्धा इस लड़ाई में मारे गये किन्तु महाराणा की विजय से जहांगीर की प्रतिष्ठा को वड़ा आघात लगा और उसने नाराज होकर अव्दुल्लाखां का मेवाड़ से हटाकर गुजरात भेज दिया।[9] झाला वंश की मेवाड़ की रक्षा हेतु क्रमागत यह छठी प्राणाहुति थी।

देदा का मूल्यांकन

राजराणा देदा पैंतीस वर्षों तक झाड़ोल ठिकाने का स्वामी रहकर मेवाड़ द्वारा मुगल साम्राज्य के विरुद्ध लड़े गये दीर्घकालीन संघर्ष में अपनी सेवाएं अर्पित करते हुए अंत में राणपुर की लड़ाई में 1611 ई. में काम आया। इस भांति में वह हलवद राजवंश के राजराणा अज्जा के वंश का छठा उत्तराधिकारी था, जिसने क्रमागत अपने पांच पूर्व पुरुषों की भांति मेवाड़ की रक्षार्थ अपने प्राणार्पण किये। अपने वश की आत्मवलिदान को धरोहर का निर्वाह करते हुए और अपने पिता वीरवर वेदा के पदचिह्नों पर चलते हए राजराणा देदा अनवरत रूप से मेवाड़ की स्वतंत्रता की लड़ाई में भाग लेता रहा। चूंकि मेवाड़ की राजधानी उसके ठिकाने के भू-भाग में आ गई थी। उसका उत्तरदायित्व अत्यधिक वढ़ गया था। किन्तु उसने अपना हौसला और धैर्य वनाये रखा। उसने वड़ी कार्य-क्षमता और संगठन शक्ति के साथ अपने कर्तव्यों को अंजाम दिया और महाराणा प्रताप के छापामार-युद्ध के दौरान अपनी वीरता, साहस और कौशल का परिचय दिया। जव तक आवरगढ़ महाराणा प्रताप की राजधानी रही, उसने केन्द्रीय प्रशासनिक, आर्थिक और सैनिक व्यवस्था में वढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और प्रताप द्वारा दिये गये सभी कार्यों को कुशलतापूर्वक पूरा किया। 1579 ई. के वाद मेवाड़ की राजधानी चावंड जाने के वाद उसने अपने क्षेत्र में सभी प्रकार के सुरक्षा-दायित्वों को सफलतापूर्वक पूरा किया। 1600 ई. में पुन. मुगल-मेवाड़ युद्ध शुरू होने के वाद उसने ठिकाने की व्यवस्था तथा उस क्षेत्र के सुरक्षात्मक कार्यो का दायित्व अपने पुत्र हरिदास को देकर वह अपना सैन्यदल लेकर महाराणा की सेना के साथ वना रहा और 1611 ई. की लड़ाई में खेत रहा।

राजराणा देदा के योगदान को संक्षेप में इस भांति आंका जा सकता है—

1. महाराणा प्रताप द्वारा झालावाड़ क्षेत्र में आवरपर्वत पर गढ़ वनाकर वहां लगभग चार वर्षो तक राजधानी कायम रखने के दौरान देदा ने गढ़ एवं भवनों के निर्माण एवं राजधानी की व्यवस्था के विभिन्न दायित्वों को पूरा किया।
2. झालावाड़ क्षेत्र के प्रजाजनों, कृपकों, शिल्पियों, भीलों आदि को महाराणा प्रताप के स्वतत्रंता संघर्ष में सक्रिय भाग लेने और युद्ध-योजना के अनुसार कृषि एवं वस्तु-उत्पादन, शस्त्रास्त्र निर्माण तथा व्यवसाय कार्य को संचालित करने का कार्य किया।
3. राज्यकोप तथा शस्त्रास्त्रों एवं आवश्यक वस्तुओं के भंडारण एवं उनकी सुरक्षा का कार्य तथा राजपरिवार एवं युद्ध-रत लोगों के परिवारों के स्त्रियों एवं वच्चों को सुरक्षित स्थानों

---

9 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, ले गौ ही ओझा, पृ 485

पर रखकर उनकी देखभाल के कार्य में योगदान दिया।

4. उपरोक्त कार्य करते हुए देदा अपने सैन्य दल के साथ निरन्तर रूप से महाराणा प्रताप और उसके बाद महाराणा अमरसिंह की सेना के साथ रहते हुए लड़ाईयों में भाग लेता रहा।

देदा के राणपुर की लडाई में मारे जाने पर झाडोल में उसका ज्येष्ठ पुत्र हरिदास उसका उत्तराधिकारी हुआ।

विवाह और संतति

राजराणा देदा ने निम्नलिखित विवाह किये—

प्रथम विवाह जोधपुर नरेश राव सूरसिंह के पुत्री डाडमकंवर राठोड के साथ हुआ। उसकी कोख से हरिदास, रामसिंह और नरहरदास पुत्र तथा रतनकंवर पुत्री हुए। रतनकंवर का विवाह पारसोली ठिकाने के मोखमसिंह के साथ हुआ।[10]

दूसरा विवाह पीपरडा के रामसिंह गहलोत की बेटी गुलाबकंवर के साथ हुआ, जिससे सुमेरसिंह पुत्र और भूरकंवर पुत्री हुए।[11]

तीसरा विवाह बेगूं के सावंतसिंह की बेटी केसरकंवर सिसोदणी के साथ हुआ।[12]

चौथा विवाह महाराणा प्रतापसिंह की बेटी तथा महाराणा अमरसिंह की बहन आसाकंवर राणावत के साथ हुआ, जिससे श्यामसिंह और रतनसिंह पुत्र तथा व्रजकंवर पुत्री हुए।

महाराणा अमरसिंह के भानेज श्यामसिंह को महाराणा द्वारा झाड़ोल का पट्टा दिया गया।[13]

कुंवर रामसिंह को सरोड, पीदड़ी, भीडाणा, भाणुजा, मुकुनपुरा, नारजी का खेड़ा, झालारों साल की जागीर मिली।

कुंवर नरहरदास को कुडला, मकोड्या, हरजी खेड़ा, नपाण्या, पारापीपरी की जागीर मिली।

---

10 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 32

वड़वा मदनसिंह की पोथी में डाडमकवर को जोधपुर के राठोड़ पृथ्वीराज वीरमदेवोत की पुत्री लिखा है। वड़वा ईश्वरसिंह की पोथी में डाडमकवर को घाणेराव के ठाकुर वीरमदेव राठोड़ की पुत्री लिखा है।

11 वड़वा ईश्वरसिंह की पोथी में गुलाबकवर को बालेचा रायमल की पुत्री होना लिखा है।

12 वड़वा मदनसिंह की पोथी में तीसरा विवाह भूरसिंह रायसिंह की बेटी गुमान कवर के साथ होना लिखा है।

13 वड़वा मदनसिंह की पोथी मे चौथा विवाह देवाली उदयपुर के खगारजी राव सावतसिंह की बेटी सूरजकवर सिसोदणी होना लिखा है, जिससे श्यामसिंह, रतनसिंह और रामसिंह हुए। आगे श्यामसिंह को दरबार (महाराणा अमरसिंह) का भाणेज होना भी लिखा है। किन्तु वड़वा ईश्वरसिंह की पोथी में स्पष्टत महारामा प्रताप की पुत्री आशाकवर के साथ विवाह होना लिखा है।

7. राजराणा हरिदास (1611-1622 ई.)

उत्तराधिकार सम्बंधी कलह

राणपुर के युद्ध में 1611 ई में राजराणा देदा के मारे जाने के समाचार सुनकर उसका ज्येष्ठ पुत्र हरिदास झाड़ोल में उसका उत्तराधिकारी हुआ और झाड़ोल में मौजूद उसके भायपों एवं अधीनस्थ जागीरदारों ने उसको नजराणा पेश किया। हरिदास डाडमकंवर राठोड़ की कोख से उत्पन्न जोधपुर का भानेज था। उस समय देदा के छोटे कुंवर और महाराणा अमरसिंह के भानेज श्यामसिह ने भी झाड़ोल के स्वामित्व के लिये अपना दावा पेश किया, चूकि वह मेवाड़ के राजघराने की कन्या एवं महाराणा प्रताप की पुत्री आशाकंवर का वैटा था।[1] मेवाड़ के राजपरिवार की महिलाओं का श्यामसिंह के पक्ष में महाराणा पर दवाव पड़ा। कई सरदार भी, जैसा प्राय: ऐसे अवसरों पर होता है, श्यामसिंह के पक्षधर हो गये। महाराणा अमरसिह धर्मसंकट में पड़ गया। वह उस समय गृह-कलह एवं पारस्परिक फूट का खतरा मोल नहीं ले सकता था, चूकि उससे मुगल वादशाह जहांगीर के विरुद्ध लड़े जा रहे युद्ध पर दुष्प्रभाव पड़ता। वैसे भी उत्तराधिकार के सदीप से चले आते नियम के मुताबिक ज्येष्ठ पुत्र हरिदास ही जागीर का वास्तविक हकदार था। महाराणा ने उस समय युद्ध का संकट वताकर श्यामसिह को शांत किया और आश्वासन देकर झाड़ोल में उत्पन्न उत्तराधिकार के संकट को टाल गया। महाराणा उस समय छापामार पर्वतीय लड़ाई में व्यस्त था और उसको सभी राजपूत सरदारों एवं उनके सैनिकों तथा भील लोगों की एकताबद्ध सहायता की आवश्यकता थी। परिणामस्वरूप झाड़ोल से हरिदास के साथ श्यामसिंह भी मुगल-विरोधी युद्ध में अपने लोगों के साथ जुट गया।

हरिदास को कानोड़ की जागीर मिलना (1615 ई.)

उत्तराधिकार के सम्बन्ध में उत्पन्न विवाद के कारण महाराणा द्वारा राजराणा हरिदास की तलवार-बंदी की रस्म पूरी करने का कार्य शीघ्र ही सम्पन्न नहीं हो पाया, यद्यपि झाड़ोल पर हरिदास के उत्तराधिकार को महाराणा जागीर से खालसा की उठंत्री करके स्वीकार कर चुका था। हरिदास भी उस संकटकाल में किसी भी प्रकार की जल्दी अथवा उत्तेजना नही दिखाकर अपने पिता की भाति महाराणा के साथ हर प्रकार से सहयोग करता रहा। उसके वीरता और रण-कौशल को देखते हुए महाराणा ने उसको अपनी सेना का सेनापति नियुक्त किया। जहांगीर द्वारा मुगल सेनापति अब्दुल्लाखां को मेवाड़ से वुला लेने के बाद 1612 ई. में उसने राजा वसु को बड़ी सेना देकर मेवाड़ पर भेजा, उस समय उसको आगे बढ़ने से रोकने हेतु मेवाड़ की सीमा पर शाहाबाद में राजराणा हरिदास ने वड़ी वीरता दिखाई। महाराणा उसकी वीरता, युद्ध-कौशल और कुशल सैन्य संचालन से वड़ा प्रसन्न और प्रभावित हुआ। उसने झाड़ोल के

---

1 श्री झाला-भूपण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शरमा, पृ 33
वड़वा मदनसिंह की पोथी। प्राचीन पत्रावलियों में इस राजराणा का नाम हरदास लिखा मिलता है।

झाला परिवार के उत्तराधिकार सम्वंधी विवाद कि हल के लिये राजराणा हरिदास को बुलाकर बातचीत की। चूकि हरिदास उसके दरवार के सुयोग्य, अनुभवी एव प्रभावशाली सरदारों में से था और महाराणा उसको अप्रसन्न नही करना चाहता था, अतएव सांप भी मर जाय और लकड़ी भी नही टूटे वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए महाराणा ने हरिदास को झाड़ोल के अलावा पहाडी भाग के बाहर कानोड की वडी जागीर देने पर झाड़ोल की जागीर श्यामसिह के पक्ष में छोडने के लिये राजी कर लिया। मान-अपमान की समस्या को टालने की दृष्टि से यह तय किया गया कि पहिले महाराणा राजराणा हरिदास को कानोड़ का पट्टा देगा और हरिदास स्वयं झाडोल की जागीर अपने भाई श्यामसिंह को दे देगा अर्थात् उसके हक में छोड देगा। इस निर्णय से श्यामसिह को झाडोल की जागीर मिल गई और हरिदास को कानोड की जागीर प्राप्त हुई।[2] जागीर की यह अदला-वदली 1615 ई में मेवाड-मुगल संधि के वाद हुई।

उधर मेवाड़ की सीमा पर शाहाबाद में राजा वसु के मर जाने के वाद कुछ समय ठहरकर 1513 ई. में बादशाह जहांगीर ने मेवाड-विजय की पूरी योजना तैयार की। मुख्य समस्या पहाड़ी भाग के घने भीतरी भागों भोमट, झालावाड और छप्पन में प्रवेश करके महाराणा की शक्ति को नष्ट करने की थी। उसने पहाडी भाग के जानकार राजपूत राजाओं एवं अन्य अनुभवी मुगल अमीरों से सलाह करके मेवाड़ के सम्पूर्ण पहाडी भाग में एक साथ प्रवेश करके सभी महत्वपूर्ण सैनिक स्थानों पर बडे-बडे मुगल सेनापतियों की अध्यक्षता में मुगल सैनिक थाने कायम करने का निर्णय लिया, जिससे कि महाराणा और उसके साथियो के लिये छिपने, भागने एवं लडने की स्थिति नही रहे। इस योजना को कारगर बनाने में मेवाड़ के महाराणा के साथ रिश्ते में वधे राजपूत राजाओ द्वारा दी गई जानकारी एव सलाह बड़ी महत्वपूर्ण रही, इनमें जोधपुर का राजा सूरसिह, किशनगढ का राजा कृष्णसिंह, बूदी का राव रत्ना और महाराणा प्रताप का भाई एवं अमरसिंह का चाचा सगर आदि प्रधान लोग थे।

---

2 वड़वा ईश्वरसिंह की पोथी में हरिदास को कानोड़ एव सादड़ी की जागीर दिया जाना लिखा है। चड़वा मदनसिंह की पोथी मे सादड़ी पाना लिखा है। श्री झाला भूषण मार्तण्ड में लिखा है कि महाराणा अमरसिंह ने प्रसन्न होकर हरदास को झाड़ोल के अतिरिक्त कानोड का ठिकाना प्रदान किया। राजराणा हरदास ने भी महाराणा की हार्दिक इच्छा जानकर व भ्रातृ-प्रेम दर्शाते हुए झाड़ोल का ठिकाना अपने लघुभ्राता श्यामसिंह को प्रदान किया। (पृष्ठ 34)

नोट—1600 ई मे बादशाह अकवर द्वारा पुन मेवाड़ के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने से पहिले महाराणा प्रताप ने मेवाड़ के मैदानी भाग का अधिकाश भाग अपने कब्जे मे ले लिया था, किन्तु पुन. लड़ाई छिड़ने के बाद चित्तौड़, भीलवाड़ा, वदनोर पुर, बागोर, माडलगढ, ऊपरमाल, बेगू, कपासन, सादड़ी, कानोड़, भीडर, बानसी, मदारिया, नीमच, भैंसरोड़, जीरण, फूसिया, जहाजपुर, बसार (शाहाबाद), गयासपुर आदि इलाकों पर पुन मुगल शासन कायम हो गया। जब 1615 ई में मेवाड़-मुगल सधि हुई तो चित्तौड परगने के उपरोक्त सभी इलाके, जिनमें से बहुत से सगर को मिले हुए थे, बादशाह जहागीर द्वारा मेवाड के युवराज कर्णसिंह के नाम जागीर में करके वापस मेवाड़ को लौटाये गये थे। अतएव महाराणा द्वारा राजराणा हरिदास को सादड़ी एव कानोड़ की जागीर 1615 ई में ही दी गई होगी और तभी श्यामसिंह को झाड़ोल की जागीर मिली होगी और उसी वर्ष ही दोनों की तलवारवन्दी की गई होगी।

हरिदास का मेवाड़ की सेना का अध्यक्ष नियुक्त होना

योजनानुसार बादशाह ने शाहजादे खुर्रम को दिसम्बर 1513 ई. में बड़े-बड़े अनुभवी सेनापतियों के साथ विशाल सेना देकर मेवाड पर भेजा। उनमें जोधपुर का राजा सूरसिंह, नवाजिशखां, सैफखां, तरवियतखां, अब्दुलफतह, राजा कृष्णसिंह (किशनगढ़), राणा सगर (महाराणा प्रताप का भाई), राव रत्ना हाड़ा (बूंदी), राजा सूरजमल तंवर, राजा विक्रमाजीत, जगतसिंह, वीरसिंह बुन्देला, सैयदअली, सैयद हाजी, मिर्जा वदीउज्जमां, तथा अन्य थे। उसने योजनानुसार मांडल पर जमातखां तुर्की, कपासन पर दोस्तबेग, ऊंटाले पर सैयदहाजी, नाहरमगरे पर अरबखां, डबोक और देवारी पर बारहा के सैयद शिहाब को बड़ी सैन्य के साथ नियुक्त करते हुए पहाड़ी भाग में प्रवेश किया।

महाराणा अमरसिह की सैन्य शक्ति बहुत क्षीण हो चुकी थी। उसने मुगल सेना का मुकाबला करने के लिये झाला हरिदास, चौहान राव बल्लू, चौहान रावत पृथ्वीराज, रावत भाण सारंगदेवोत, देलवाड़े का राठोड़ मनमनदास[3], पंवार शुभकर्ण, रावत मेघसिंह चूंडावत, रावत मानसिंह चूंडावत, झाला कल्याण, सोलंकी वीरमदेव, सोनगरा केशवदास, डोडिया जयसिंह आदि सरदारों तथा अपने भाईबन्धुओं को अपने-अपने सैन्यदलों को लगा दिया। महाराणा ने अपनी सम्पूर्ण सेना का सेनाध्यक्ष कुशल योद्धा झाडोल के राजराणा झाला हरिदास को नियुक्त किया, जिसके सेनापतित्व में सम्पूर्ण मेवाड़ी सेना ने बढ़ती हुई मुगल सेना का मुकावला किया।[4] किन्तु शाहजादे ने मेवाड़ के घने पहाड़ी भाग में प्रवेश करके सभी स्थानों पर मुगल सेनापतियों को नियुक्त कर दिया। उसने कुम्भलगढ़ में वदीउज्जमां, आंजणे में दिलावरखां, बीजापुर में बैरमबेग, गोगूंदे में राणा सगर, झाडोल में सैयद सैफखां पानरवे में सजावारखां, ओगणे में फरीदूखां, मादड़ी में मिर्जा मुराद, चावंड में हाड़ा रत्नसिंह, सादड़ी में राठोड़ राजा सूरसिंह[5], जावर में इब्राहीमखां और केवड़े में जाहदबेग को बड़े-बड़े सैन्य दलों के साथ नियुक्त किया। मुगल सेनापतियों ने पहाड़ी भाग में चारों ओर मारकाट एवं लूटमार मचा दी तथा स्त्रियों एवं बच्चों को कैद करना शुरू कर दिया।

मेवाड़-मुगल संधि में हरिदास का योगदान

राजपूतों के लिये विकट स्थिति उत्पन्न हो गई। उनके सन्मुख मरमिटने, मेवाड़ त्यागने

---

3 देलवाड़ा राजराणा शत्रुशाल जो नाराज होकर मारवाड़ चला गया था, वापस लौटा, जिसको उसका छोटा भाई कल्याण महाराणा के कहने से वापस बुलाने गया था। लौटने पर वह पहाड़ों में शाहजादे खुर्रम की सेना के साथ लड़ते हुए मारा गया। महाराणा ने यह समाचार सुनकर उसके छोटे पुत्र कान्हसिंह को बादशाह से 1615 ई में सुलह हो जाने के बाद अलग से गोगूदे की जागीर प्रदान की। शत्रुशाल के जोधपुर चला जाने पर महाराणा ने देलवाड़े की जागीर बदनोर के राठौड़ कुवर मनमनदास को दे दी थी। मनमनदास के मारे जाने के बाद देलवाड़ा ठिकाना शत्रुसाल के छोटे भाई कल्याण को वापस दिया गया।

4 अमरसार, सर्ग 1, श्लोक 259, मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, ले डॉ गोपीनाथ शर्मा, पृ 90

5 जोधपुर के राजा सूरसिंह की पुत्री के साथ राजराणा देदा का विवाह हुआ था, जिसकी कोख से राजराणा हरिदास का जन्म हुआ था। अतएव सूरसिंह हरिदास का नाना था। उसी सूरसिंह ने अपने दोहित्र के खिलाफ आकर सादड़ी में मुगल कब्जा कायम किया।

अथवा मेवाड को मुगल अधीनता में छोड़ने का संकट पैदा हो गया। सरदारों ने मिलकर मुगल शाहजादे से सम्मानजनक संधि करने पर विचार किया। संधि की वही प्रधान शर्त रखी गई जो 1567 ई. में चित्तौड़ पर आक्रमण के समय मेवाड़ के सरदारों द्वारा वादशाह अकवर के सन्मुख रखी गई थी कि मेवाड का महाराणा स्वयं वादशाह के दरवार में हाजिरी नही देगा और उसकी चाकरी नही करेगा। वह अपने युवराज को वादशाह के दरवार में भेज देगा। महाराणा ने सधि-प्रस्ताव लेकर राजराणा हरिदास झाला और पंवार शुभकर्ण को शाहजादे खुर्रम के पास भेजा।[6] वादशाह जहांगीर स्वयं मेवाड़ के साथ संधि के लिये आतुर था। उसने महाराणा की वह शर्त मंजूर कर ली, जो उसके पिता अकवर ने पहिले अस्वीकार कर दी थी। पिछले सैंतीस वर्षों तक लड़ाई करके मुगल वादशाह मेवाड़ को अधीन नही कर सका था। जहांगीर ने मेवाड को अधीन करके बहुत खुशी मनाई। 5 फरवरी, 1615 ई. को गोगूंदे में शाहजादे खुर्रम और महाराणा अमरसिंह के बीच संधि हो गई। सधि हेतु प्रस्ताव करने, शर्तो सम्बन्धी सलाह-मशविरा करने, तदर्थ महाराणा अमरसिंह को राजी करने, संधि की शर्तों को लेकर शाहजादे खुर्रम के पास जाने और उससे सफलतापूर्वक वार्ता करने में राजराणा हरिदास झाला की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस अवसर पर उसकी वुद्धिमता, दूरदर्शिता, चातुर्य और राजनीति का दीर्घकालीन अनुभव वड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। हरिदास की वुद्धिमत्ता और वातचीत से खुर्रम वहुत प्रभावित हुआ, जिसके सम्बन्ध में उसने अपने पिता जहांगीर को लिख भेजा।

वादशाह जहांगीर अपनी आत्मजीवनी तुज्क-ए-जहांगीरी में लिखता है—"मेरे वेटे (खुर्रम) से प्राप्त समाचार को पढ़कर मुझे वहुत खुशी हुई कि ऐसा (मेवाड का अधीन होना) मेरे ही राज्याधिकार में हुआ। महाराणा अमरसिंह और उससे पहिले के राणा कभी भी हिन्दुस्तान के किसी भी वादशाह के आगे नही झुके थे। यह सौभाग्य मुझे मिला था। और इस अवसर को मैं अपने हाथ से नही निकलने देना चाहता था। मैंने अपने हाथ से एक मैत्रीपूर्ण फरमान राणा को लिख भेजा कि हमारी ओर से सभी प्रकार से संतोष रखे और तुम्हारी सभी प्रकार से सहायता की जावेगी। उसके मान-सम्मानार्थ मैंने उस पत्र पर अपने हाथ से पंजा जमा दिया। खुर्रम ने उस पत्र को हरिदास झाला और शुभकर्ण के साथ राणा के पास भेजा। मैंने खुर्रम को लिखा कि इस प्रतिष्ठित राजा के साथ बहुत आदर एवं सम्मान के साथ पेश आना और उसकी हार्दिक इच्छाओं के अनुसार व्यवहार करना।"[7]

सधि की शर्तों में मेवाड़ द्वारा शाही सेना में 1000 सवार रखने और चित्तौड़गढ़ की मरम्मत नहीं करना भी तय पाया गया। इस सधि के वाद महाराणा अमरसिंह ने चावंड छोड़कर उदयपुर में अपनी राजधानी कायम की।

◆◆◆

6 उदयपुर राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 489 एव 818

7 Tuzk-ı-Jahangırı, Vol I, P 247 Annals and Antıquıtıes of Rajasthan by James Tod, Vol I, P 287

अध्याय – 5

मुगल साम्राज्य के अधीन मेवाड़ तथा सादड़ी के झाला राजराणा

राजराणा हरिदास

5 फरवरी, 1615 ई. को गोगूंदे में मुगल शाहजादे खुर्रम और महाराणा अमरसिंह के वीच संधि होने के वाद मेवाड़-मुगल सम्वन्धों में मौलिक परिवर्तन आ गया। महाराणा अमरसिंह उदयपुर को राजधानी वनाकर राज्य करने लगा। वादशाह जहांगीर ने सगर को राणा पद से खारिज करके उसको दिये हुए मेवाड़ के इलाके तथा मुगलाधीन अन्य मेवाड़ के इलाके मेवाड़ को लौटा दिये। महाराणा जागीरों का वंटवारा और प्रवन्ध नये ढंग से करने लगा। इसी नये प्रवन्ध से राजराणा हरिदास के पास झाड़ोल के वजाय कानोड़ की जागीर रही और उसके छोटे भाई और महाराणा अमरसिंह के भानेज श्यामसिंह को झाड़ोल की जागीर प्राप्त हुई। किन्तु झाड़ोल की जागीर की गिनती मेवाड़ के अव्वल दर्जे के ठिकानों में नहीं रही और राजराणा अज्जा और हल्दीघाटी में शहीद हुए राजराणा वीदा को मेवाड़ दरबार में प्राप्त सर्वोच्च पद-प्रतिष्ठा और अव्वल दर्जा राजराणा देदा के ज्येष्ठ पुत्र राजराणा हरिदास के पास बने रहे।[1]

हरिदास का कुंवर कर्णसिंह के साथ जहांगीर के दरबार में जाना—

संधि के वाद महाराणा अमरसिंह ने अपने ज्येष्ठ कुंवर कर्णसिंह को वादशाह जहांगीर के दरवार में भेजा। महाराणा ने कुंवर के साथ संधि में प्रधान भागीदारी निभाने वाले राजराणा हरिदास झाला और शुभकर्ण पंवार को उसका सलाहकार वनाकर भेजा। राजराणा हरिदास झाला ने संधि के समय जिस वुद्धिमता, कार्यदक्षता और व्यवहारकुशलता का परिचय दिया, उसके कारण वह महाराणा अमरसिंह का प्रधान विश्वासपात्र सलाहकार वन गया था।[2] वादशाह जहांगीर ने कुंवर कर्णसिंह की बड़ी आवभगत की। वादशाह की प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं था। उसने कुंवर को अपने दरबार में वुलाकर छाती से लगाया और सिर चूमा तथा दाहिनी

---

1 श्यामसिंह के वशज झाड़ोल के झाला ठिकानेदारों की गिनती मेवाड़ के तृतीय श्रेणी के सरदारों में रही और 'राज' उनकी उपाधि रही।—ओझा कृत उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, पृ. 980

2 उदयुपर राज्य का इतिहास, भाग-1, ले गौ ही ओझा, पृ 272, 498
Tuzk-ı-Jahangirı, Vol. I, P. 277-278

ओर की पंक्ति में सबसे प्रथम खडा करने की आज्ञा दी। बादशाह ने उसको वेगम नूरजहां से मिलवाया। नूरजहां ने कुंवर कर्णसिह को बडे मूल्यवान उपहार दिये। बादशाह कुंवर को शिकार में साथ ले गया और कुवर के मांगने पर अपनी खास तुर्की बन्दूक उसको दे दी। बादशाह ने कर्ण को पाच हजारी मंसब प्रदान किया। जब 5 जून, 1615 ई. को कुंवर मेवाड़ लौटने लगा तो बादशाह ने उसको अनेक प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएं, खिलअत, हाथी, घोडे और नकद रुपये उपहार में दिये। इतना ही नही बादशाह ने महाराणा अमरसिह और कुवर कर्णसिंह की आदमकद सगमरमर की मूर्तियॉ बनवाकर आगरे के किले में दर्शन झरोखे के नीचे वाग में खड़ी करवाई।[3] बादशाह ने मुगलाधीन सारा मेवाड़ भू-भाग कुवर कर्णसिह के नाम वहाल करते हुए फूलिया, रतलाम, बांसवाडा, देवलिया, जीरण, नीमच, अरणोद आदि के कई इलाके भी कुंवर कर्णसिंह को जागीर में दिये। कुंवर के विदा होते समय बादशाह ने महाराणा को बहुत सी बातें मुहव्वत और नसीहत की कहलाई।[4]

जहांगीर की भेदनीति और महाराणा एवं कुंवर में अनबन

यद्यपि बादशाह जहांगीर ने मेवाड़ के साथ संधि करके अपने जीवन की बहुत वड़ी सफलता मानी थी, फिर भी महाराणा अमरसिह द्वारा उसके दरबार में आने से इन्कारी के कारण उससे नाराज रहा। उसने महाराणा को मेवाड़ के सारे परगने लौटाने के मामले में बड़ी चालाकी और भेदनीति का प्रयोग किया। उसने एक ओर कुंवर कर्णसिंह को पांच हजारी जात और पांच हजारी सवार का उच्च मंसबदार बनाया तो उसके साथ मुगलाधीन मेवाड़ के सभी परगने महाराणा अमरसिह के नाम नही लौटाकर उनको कुवर कर्णसिंह के नाम जागीर में कर दिये। एक प्रकार से बादशाह ने अपनी ओर से कुंवर कर्ण को मेवाड़ का वास्तविक (Defacto) राज्याधिकारी बना दिया और महाराणा अमरसिह की पूरी तरह उपेक्षा कर दी। इस कार्यवाही के द्वारा उसने महाराणा और उसके पुत्र के बीच मनमुटाव और मतभेद के बीज वो दिये।[5] सधि करके मुगल अधीनता स्वीकार करने से महाराणा अमरसिह पहिले से अत्यन्त खिन्न और

---

3 Tuzk-ı-Jahangır, Vol I, P 332
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, ले गौ ही ओझा, पृ 501
वीरविनोद, ले श्यामलदास, पृ 239

4 वीरविनोद, ले श्यामलदास, पृ 250

5 इतिहासकारों ने जहागीर की इस भेदनीति की ओर विशेष ध्यान नही दिया है। साम्राज्यवादी शासक अपने वर्चस्व के लिये किस भाति अपने अधीन राज्य के आतरिक मामलों में अनुचित हस्तक्षेप करके बाप एव बेटे के बीच फूट पैदा करके उनके बीच मनमुटाव पैदा करते हैं, उसका एक अन्य उदाहरण मेवाड़ के इतिहास में ही मिलता है। मेवाड़ के महाराणा फतहसिंह से नाराज अग्रेज सरकार ने महाराणा और उसके पुत्र भूपालसिंह के मध्य मतभेद और मनमुटाव पैदा करके उनको एक दूसरे के खिलाफ कर दिया और फिर 1921 ई में कुवर भूपालसिंह को मेवाड़ के शासनाधिकार देने के लिये महाराणा को मजबूर कर दिया। राजपूत राज्यों में मुगल बादशाहों द्वारा भीतरी दखल करने के कारण मध्यकालीन राजपूती सामतवाद का मूल ढाचा ढहना शुरू हो गया, जो अग्रेजों के साथ सधि के बाद पूरी तरह ढह गया।

उदास था और जव जहांगीर ने स्थिति का लाभ उठाकर उसके पद और प्रतिष्ठा की उपेक्षा करके उसको अपमानजनक स्थिति में खड़ाकर दिया तो उसको आत्मग्लानि हो गई। उसने इस मनःस्थिति में सारा राजकार्य कुंवर कर्णसिंह को सुपुर्द कर दिया और स्वयं राजमहलों में एकान्तवास करने लगा। चार वर्ष वाद 26 जनवरी, 1620 को उसका देहान्त हो गया।

हरिदास का भंवर जगतसिंह के संरक्षक की तरह बादशाह के दरबार में जाना और बादशाह से प्रतिष्ठा पाना

कुंवर कर्ण के आगरा से लौटने के बाद उसी वर्ष महाराणा अमरसिंह के पौत्र एवं कुंवर कर्ण के पुत्र भंवर जगतसिंह बादशाह के दरवार में अजमेर भेजा गया। उस समय वह केवल सात वर्ष का था। राजराणा हरिदास महाराणा अमरसिंह का प्रमुख सलाहकार रहने के अलावा वह भंवर जगतसिंह का अतालीक (शिक्षक) भी था। उसको बालक जगतसिंह के साथ अजमेर भेजा गया। बादशाह जहांगीर ने भी अपनी आत्मजीवनी में इस बात का जिक्र किया है। उसने लिखा है—"जगतसिंह के चेहरे से उसकी कुलीनता और उच्चवंशीयता के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते थे। विदा होते समय मैंने उसको बीस हजार रुपये, एक घोड़ा, एक हाथी, खिलअत और एक खासा दुशाला दिया। हरिदास झाला को, जो राणा का विश्वासपात्र सरदार और जगतसिंह का अतालीक था, पांच हजार रुपये, एक घोड़ा, और खिलअत दी तथा उसी के हाथ राणा के लिये एक सोने की छड़ी तथा तसवीरें भेजी।[6] जहांगीर द्वारा इस भांति राजराणा हरिदास को प्रतिष्ठा देना और अपनी आत्मकथा में उसका जिक्र करना उसकी योग्यता, कुशलता और बुद्धिमानी का प्रमाण है। इन्हीं गुणों के बल पर उसको मेवाड़ राज्यदरबार में उच्च स्थान मिला था।

मेवाड़ दरबार में हरिदास के विरुद्ध षड़यन्त्र

राजराणा हरिदास भंवर जगतसिंह को लेकर वापस उदयपुर लौटा और बादशाह द्वारा भेजी गई सोने की छड़ी तथा तसवीरें आदि महाराणा को भेंट की। उसके बाद वह कुंवर कर्णसिंह से मिला। हरिदास का भंवर जगतसिंह के साथ बादशाह के दरबार में भेजा जाने और बादशाह द्वारा उसको खिलअत आदि देकर सम्मानित करने के कारण वह राजदरबार में ईर्ष्या का पात्र हो गया। इसके कारण उसके विरुद्ध षड़यन्त्रों का सूत्रपात हुआ। राज्य दरबारों में उच्च पद एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने और राजा का प्रियपात्र बनकर दरबार में प्रभावशाली व्यक्ति बनने आदि बातों को लेकर सरदारों और राज्याधिकारियों में प्रतिस्पर्धा, षड़यन्त्र और कुटिल राजनीति चलती रहती थी। महाराणा अमरसिंह के दरवार में राजराणा हरिदास झाला ने अपने व्यक्तित्व, बुद्धिमानी और योग्यता के बल पर जो प्रभावशाली स्थिति बनाई थी और महाराणा का विश्वसनीय सलाहकार वन गया था, उसके कारण अन्य कई सरदार उससे ईर्षा और द्वेष रखने लगे थे और उसको गिराने के अवसर की तलाश में रहते थे। बादशाह द्वारा राजराणा हरिदास

---

6 Tuzk-i-Jahangiri, Vol I, P. 310-311

को रुपये, घोड़ा, खिलअत आदि प्रदान करने की वात को लेकर कई लोगों ने महाराणा अमरसिंह और कुंवर कर्णसिंह के कान भरे और उनमें ईर्षा भाव पैदा किये। महाराणा के एक सरदार को वाले-वाले वादशाह द्वारा इस भांति उपहार आदि देकर प्रतिष्ठित करना महाराणा की सत्ता एवं स्वामित्व को चुनौती थी एवं महाराणा के पद का अपमान था, ऐसा उसको वताया गया। महाराणा और कुंवर के वीच पहिले से अनवन की स्थिति वन चुकी थी और अव वादशाह की इस कार्यवाही से दरवार का वातावरण और खराव हो गया। सामंतीप्रथा के आचरण का मूल आधार होता था—एक जागीरदार का सेवक राजा का सेवक नहीं होता था, वह जागीरदार के स्वामी राजा की आज्ञा नहीं मानकर अपने स्वामी जागीरदार की आज्ञा मानता था और अपने स्वामी जागीरदार की मर्जी के विना वह राजा की कोई सेवा नहीं करता था अथवा उससे कोई उपहार आदि नहीं लेता था और आवश्यकता पड़ने पर वह अपने स्वामी जागीरदार के लिये राजा से लड़ने के लिये भी उद्यत हो जाता था। हरिदास मेवाड़ के महाराणा का सेवक था और उसके द्वारा वादशाह से प्रतिष्ठा एवं उपहार पाना प्रचलित सामंती प्रथा के नियम के विपरीत माना गया और कहा गया कि हरिदास द्वारा इस भांति वादशाह से आत्मीयता स्थापित करना और उससे पुरस्कार लेना अनुचित था। वादशाह की इस कार्यवाही को मेवाड़ में अनुचित हस्तक्षेप और राजा और उसके सरदारों के वीच फूट और प्रतिस्पर्धा पैदा करने वाली वात मानी गई।

कुंवर रायसिंह का पिता के विरुद्ध जाने तथा कानोड़ जागीर लेने से इन्कार

जव राजराणा हरिदास झाला के साथ महाराणा और कुंवर द्वारा वेरुखी का व्यवहार किया गया और उदयपुर में उसको अपने विरुद्ध भिन्न-भिन्न प्रकार की वातें सुनने को मिली तो वह खिन्न एवं नाराज होकर अपनी जागीर कानोड़ चला गया। उसका अकस्मात् उदयपुर छोड़ना भी महाराणा को नागवार गुजरा। उस समय राजराणा का ज्येष्ठ पुत्र रायसिंह राजधानी में मौजूद था। उसका विवाह महाराणा अमरसिंह की राजकुमारी के साथ हुआ था। महाराणा ने राजराणा हरिदास को सजा देने की दृष्टि से उसके पुत्र और अपने दामाद कुंवर रायसिंह को उसके पिता के विरुद्ध करके अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया। उसने कानोड़ का पट्टा उसके पिता हरिदास से लेकर रायसिंह को देना चाहा। किन्तु कुंवर रायसिंह ने इस भांति अपने पिता के विरुद्ध जाने से इन्कार कर दिया। जव राजराणा हरिदास को महाराणा के इस इरादे का पता चला तो वह कानोड़ छोड़कर वादशाह जहांगीर के पास चला गया, जो उसका हितैषी था और उसके प्रति कृपा-भाव रखता था।[7] उस समय महाराणा ने अपने दामाद कानोड़ के कुंवर

---

7. श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड में इतना ही लिखा है कि जव राजराणा हरदासजी दिल्ली से मेवाडाधीश के पास आये तो मेदपाटेश्वर आपसे किसी गुप्त कारण से अप्रसन्न हो गये। मेवाड़ाधीश की अप्रसन्नता को जानकर राजराणा हरदासजी उदयपुर से विदा होकर कानोड़ पधारे। राजराणा के टीकायत पुत्र राजसिंहजी का विवाह श्रीमान महाराणा अमरसिंह जी की पुत्री के साथ हुआ था अतएव उनको राजराणा के साथ जाने की आज्ञा प्रदान नहीं हुई। राजराणा हरदासजी थोड़े ही काल पर्यन्त कानोड़ रहकर दिल्ली पधार गये। (पृष्ठ 39)

रायसिंह को उसके निजी खर्च के लिये राज्यकोष से पचास हजार रुपये वार्षिक दिये जाने के आदेश दिये।[8]

जहांगीर के दरबार में हरिदास : झाला भूषण मार्तण्ड का वृत्तान्त

राजराणा हरिदास के बादशाह जहांगीर के दरबार में पहुंचने के सम्बन्ध में जहांगीर अपनी आत्मकथा में कोई जिक्र नहीं करता। किसी अन्य स्रोत से भी हरिदास के सम्बन्ध में आगे की जानकारी नहीं मिलती। बड़वा मदनसिह की पोथी में उल्लेख है कि राजराणा हरिदास और बादशाह जहांगीर में पगड़ीपदल भाईचारा हुआ। किन्तु महत्ता सीताराम शर्मा कृत श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड पुस्तक में उसके सम्बन्ध में विस्तृत वृत्तान्त दिया गया है जिसके अनुसार राजराणा हरिदास ने बादशाह का वध किये जाने के षड़यन्त्र से बादशाह की रक्षा की। बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और दोनों पगड़ी-बदल भाई हुए। बादशाह ने राजराणा हरिदास को निम्नलिखित प्रतिष्ठा प्रदान की—

प्रथम, दरबार में प्रथम श्रेणी की बैठक दी, द्वितीय, भारतवर्ष मात्र में घड़ियाल बजाने की आज्ञा प्रदान की; तृतीय, ऊपर से अरुण वर्ण वाला बादशाही तम्बू दिया, चतुर्थ, दो हाथी और दो ऐराकी (ईराकी) अश्व वाला इन्द्रवाहन सवारी हेतु प्रदान किया। पुस्तक में यह भी लिखा है कि बादशाह ने मंदसौर परगने का बीस लाख का पट्टा भी राजराणा हरिदास को प्रदान किया।

श्री झाला भूषण मार्तण्ड में आगे उल्लेख है कि जब महाराणा (कर्णसिह) ने राजकुमार खुर्रम को शरणागत किया, बादशाह ज़हांगीर उसी दिन से अप्रसन्न रहने लगा। उस घटना के फलस्वरूप जब बादशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई के लिये सेना भेजी। इस पर हरिदास ने मेवाड़ जाने की आज्ञा मांगी। बादशाह ने हरिदास की मंशा समझ कर इन्कार कर दिया। इस पर हरिदास ने बीस लाख का मन्दसौर का पट्टा बादशाह को वापस लौटा दिया और बादशाह के आग्रह पर अपने छोटे भाई नरहरदास को उसके पास रखकर स्वदेश के लिये रवाना हो गया। मेवाड़ पर कूच करने वाली बादशाही सेना हरडे (हुरड़ा) गाव में पहुँची थी कि राजराणा हरिदास भी वहाँ आ पहुंचा और मेवाड़ की सेना के साथ रहकर बादशाही सेना के साथ युद्ध किया, जिसमें मुगल सेना की पराजय हुई। इस युद्ध में राजराणा हरिदास वीरतापूर्वक लड़ता हुआ काम आया। यह हलवद के झालावंश का मेवाड़ की रक्षा हेतु क्रमागत सप्तमी प्राणाहुति थी।[9]

श्री झालाभूषण मार्तण्ड में बादशाह जहांगीर के साथ राजराणा हरिदास के सम्बन्धों के बारे में जो वर्णन दिया गया है, उसका जिक्र बादशाह ने अपनी आत्मकथा में नही किया है। इसी भांति महाराणा द्वारा खुर्रम को शरण देने के कारण बादशाह जहांगीर द्वारा मेवाड़ पर सेना

---

8 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, पृष्ठ 40

9 वही, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 40-43

भेजने का जो उल्लेख किया गया है, उसका भी जिक्र जहांगीर ने नही किया है। अन्य किसी तत्कालीन फारसी तवारीख में भी उसका उल्लेख नही है।

अब तक उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्य झाला-भूषण-मार्तण्ड के वृत्तान्त के पक्ष में नही हैं। सादड़ी राजपरिवार में परम्परा से यह बात चली आती है कि राजराणा हरिदास भी मुगल सेना से लडता हुआ काम आया। इस प्रकार झाला अज्जा की सात पीढिया मेवाड़ के लिये लड़ती हुई मारी गईं। यदि ऐसी कोई घटना हुई हो जिसमें हरिदास को लडना पडा हो और वह मारा गया हो तो उस पर ऐतिहासिक प्रकाश पड़ना आवश्यक है। राजराणा हरिदास की मृत्यु 1622 ई में होना पाया जाता है। शाहजादे खुर्रम का मेवाड में महाराणा कर्णसिह के पास 1626 ई. में आना माना जाता है। शाहजादे खुर्रम ने अपने पिता के विरुद्ध 1622 ई में विद्रोह किया था। विद्रोह करने से लगभग चार वर्ष बाद उसका मेवाड़ की ओर आना हुआ। दिसम्बर, 1623 ई. तक मेवाड़ का कुवर जगतसिंह बादशाह जहांगीर के दरबार में मौजूद था, उसी माह बादशाह ने उसको उदयपुर जाने की रुखसत दी थी।[10] 1627 ई. में जहांगीर की मृत्यु हो गई थी। जहांगीर द्वारा खुर्रम को लेकर मेवाड़ के विरुद्ध किसी प्रकार की सैनिक कार्यवाही किया जाना नही पाया जाता।

हरिदास के व्यक्तित्व का मूल्यांकन—

राजराणा हरिदास अपने समय में मेवाड का वीर योद्धा, कुशल सेनानायक, योग्य प्रबन्धक और बुद्धिमान राजनीतिज्ञ एवं कूटनीतिज्ञ रहा। उसकी बुद्धिमता, नीतिज्ञता और रणकौशल की ख्याति मुगल दरबार तक फैली हुई थी। स्वय बादशाह जहागीर को इस बात की जानकारी थी। उसकी बुद्धिमत्ता, नीतिज्ञता और क्षमता के कारण मेवाड दरबार में उसका बड़ी तेजी के साथ उत्कर्ष हुआ और वह महाराणा अमरसिह का प्रधान मुसाहिब बन गया। उसकी सैन्य संचालन की क्षमता के कारण महाराणा अमरसिंह ने उसको मुगल सेना के विरुद्ध लड़ने वाली मेवाड़ की सम्पूर्ण सेना का अध्यक्ष बनाया था, जिसके सेनापतित्व में मेवाड़ के राजपूत एवं भील सैन्यदलों ने मेवाड़ के पहाडी भाग में मुगल सेना के साथ लोहा लिया। जब 1614 ई. में शाहजादे खुर्रम के विशाल मुगल आक्रमण से मेवाड़ राज्य के विनाश का सकट पैदा हुआ और मुगल बादशाह के साथ सुलह वार्ता चलाने की आवश्यकता हुई तो राजराणा हरिदास झाला को शुभकरण पंवार के साथ इस बात का दायित्व दिया गया कि वह शाहजादे खुर्रम के पास जाकर ऐसा समझौता करे जिससे मेवाड़ के महाराणा पद की गरिमा और उच्चता बनी रहे। हरिदास ने अपनी बुद्धिमानी, नीतिज्ञता और राजनीतिक कुशलता के सहारे शाहजादे के साथ वार्ता में सफलता प्राप्त की और उसके फलस्वरूप महाराणा और मेवाड़ राज्य के लिये सम्मानजनक संधि सम्पन्न हुई। संधि के बाद जब कुंवर कर्णसिंह को बादशाह के दरबार में

10 वीरविनोद, भाग-1, ले श्यामलदास, पृ 289, 305-306

भेजा गया तो उस समय राजनीतिनिपुण एवं व्यवहारकुशल हरिदास को उसकी सहायतार्थ उसके साथ भेजा गया। हरिदास को भंवर जगतसिंह का शिक्षक एवं अभिभावक नियुक्त किया गया और जब बालक जगतसिंह को जहांगीर के पास भेजा गया तो हरिदास उसके संरक्षक एव मार्गदर्शक तौर पर उसके साथ गया। जैसा कि ऊपर वर्णित है बादशाह ने उसका भी बड़ा सम्मान किया और अतग ले उसको पांच हजार रुपये, घोडा और खिलअत आदि उपहार स्वरूप प्रदान किये।

राजनीति में सदैव उठा-पठक एवं उत्थान-पतन चलता रहता है। बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा चूक हो जाती है और विरोधियों एवं षड़यंत्रकारियों का दांव चल जाता है। राजराणा हरिदास के साथ भी यही हुआ। मेवाड़ राज्य एक अत्यन्त योग्य, कुशल एवं अनुभवी अधिकारी की सेवाओं से वंचित हो गया। हरिदास भी उच्च प्रतिष्ठा एवं पद से एकाएक वंचित होने से हताश एवं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था।

कानोड़ में सात वर्ष तक झाला-शासन

राजराणा हरिदास अपने अंतिम दिनों में कानोड़ में ही रहा। झाड़ोल छोड़ने के बाद कानोड़ उसके पास लगभग सात वर्षों तक रहा। इन सात वर्षों के दौरान उसके द्वारा कतिपय निर्माण-कार्य कराये जाने के प्रमाण मिलते हैं। उसके द्वारा कानोड़ में हरमंदिर बनवाया गया जिसका नाम अव गोपालमदिर है। राजपुरा गांव में आदमाता (झाला-इष्ट-देवी) का मंदिर बनवाया गया। कानोड़ के महलों के घुमट भी उसके द्वारा बनवाये गये माने जाते हैं।[11]

विवाह एवं संतान—

श्री झालाभूषण-मार्तण्ड पुस्तक के अनुसार राजराणा हरिदास के विवाह भीडर, देवगढ़, कोठारिया, कोटा एवं बनेडा के अधीशों की पुत्रियों से हुए।[12] राणीमंगा वंशावली के अनुसार उसके विवाह निम्नानुसार हुए—

> पहला विवाह भीडर के अचलदास शक्तावत की बेटी सरसकंवर के साथ हुआ। दूसरा विवाह देवगढ़ के द्वारिकादास चूंडावत की बेटी पृथ्वीकंवर के साथ हुआ।[13] तीसरा विवाह कोठारिया के लूणकरण चौहान की बेटी पेपकंवर के साथ हुआ। चौथा विवाह कोटा के महाराज जेतसिह हाड़ा की बेटी रूपकंवर के साथ व पांचवां विवाह बनेड़ा के राजा भीमसिंह की बेटी सरूपकंवर के साथ हुआ।

---

11 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 44

12 वही।

13 वही, पृ 40

राजराणा हरिदास के निम्नलिखित संतानें हुई—

1 **ज्येष्ठ कुंवर रायसिंह** का जन्म देवगढ़ की पृथ्वीकंवर चूंडावत की कोख से हुआ। वह अपने पिता हरिदास का उत्तराधिकारी हुआ।

2. **कुंवर बेरीसाल** (बरसा) का जन्म रूपकंवर हाड़ी की कोख से हुआ उसके पास जागीर में बागदड़ी, साकरयो, पीडोल्यो, खेडी, वानसी रहे।

3. **कुवर पृथ्वीराज** का जन्म सरूपकंवर राणावत के साथ हुआ उसके पास जागीर में सुकड़ो, मिरचाखेडी रहे।

4. **कुवर रड़मल (मांडल ?)** [14]

5. **कुंवरी** चन्द्रामता का विवाह महाराणा जगतसिंह के साथ हुआ। वह सती हुई।[15]

---

14 (क) बड़वा ईश्वरीसिंह और बड़वा मदनसिंह की पोथियों में बड़ी भिन्न सूचनाए मिलती हैं। ईश्वरसिंह की पोथी के अनुसार हरिदास का विवाह घाणेराव, बूदी और बेदला ठिकानो में हुए। बड़वा मदनसिंह की पोथी के अनुसार उसका विवाह आवा, कोयल, कोठारिया और धमोतर में हुआ।
(ख) ठिकाने की प्राचीन बही में कुवरों को प्राप्त जागीरों की जानकारी दी गई है।

15 बड़वा देवीदान लिखित 'मेवाड़ के राजाओं की रानियों, कुवरों और कुवरिओं का हाल, स डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 19

8. राजराणा रायसिंह प्रथम (1622-1656 ई.)

राजराणा हरिदास का मृत्यु होने पर वि.सं. 1679 (1622 ई.) में उसका ज्येष्ठ पुत्र रायसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह महाराणा अमरसिंह का दामाद तथा महाराणा कर्णसिंह का वहनोई था। उसके सुयोग्य पिता के प्रति महाराणा द्वारा अप्रसन्न होने पर जव महाराणा ने उसको उसके पिता के स्थान पर कानोड़ ठिकाने का स्वामी वनाने की पेशकश की थी तो उसने अपने पिता के विरुद्ध जाने से इन्कार कर दिया था। इस पर राज्यकोष से उसको पचास हजार रुपये का वार्षिक भत्ता दिये जाने का निर्णय किया गया था।

रायसिंह की तलवारबन्दी

राजराणा की मृत्यु होने पर कानोड़ में उसके वांधवों और जागीरदारों ने कुंवर रायसिंह को गद्दी पर विठा दिया और उसकी इत्तला उदयपुर महाराणा कर्णसिंह को भिजवा दी। महाराणा ने युवराज जगतसिंह को भिजवाकर रायसिंह को उदयपुर वुलवाया। महाराणा ने सादड़ी की हवेली जाकर रायसिंह की मातमपुर्सी की।[1] उसके वाद राजमहल में वुलाकर विधिवत् उसकी तलवारवन्दी की रस्म पूरी की गई। राजराणा की मृत्यु पर ठिकाने पर अधिकार हेतु जो खालसा-दल (कैद खालसा) भेजा गया था उसकी उठंत्री के आदेश किये गये।

रायसिंह को सादड़ी ठिकाना मिलना

राजराणा रायसिंह की तलवारवन्दी के वाद महाराणा कर्णसिंह ने उसको कानोड़ ठिकाने के वजाय एक लाख रुपये की आय की सादड़ी की जागीर प्रदान करने का निर्णय किया।[2] इस भांति हलवद से आये झाला अज्जा के वंशधरों की जागीरों की अदला-वदली निम्नानुसार हुई—

1. अजमेर 1506-1528 ई.
2. झाड़ोल 1528-1615 ई.
3. कानोड़ 1615-1622 ई.
4. सादड़ी 1622-1948 ई.

रायसिंह को सादड़ी की जागीर मिलने के वाद आगे उसके वंशधरों के पास विना अदला-वदली यही जागीर वनी रही। जैसा ऊपर वर्णन किया गया है, वादशाह जहांगीर ने

---

1 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 45

2 वही, पृ 45
वीरविनोद (पृ 138) में उल्लेख है कि महाराणा सग्रामसिंह द्वारा झाला अज्जा को सादड़ी की जागीर दी गई थी, वह सही नही है।

मुगलाधीन मेवाड़ के सभी परगने, चित्तौड, माडलगढ, सादड़ी, बेगूं, बागोर, कपासन, मदारिया, भीलवाडा, जहाजपुर, अरनोद, बदनोर, जीरण, भैंसरोड आदि कुंवर कर्णसिंह के नाम करके मेवाड़ राज्य को लौटा दिये थे। उपरोक्त में से कुछ चित्तौड, सादडी, बेगूं, कपासन, जीरण, वागोर आदि मेवाड़ से बादशाही सेवा में चले गये महाराणा प्रताप के भाई सगर को 'राणा' के खिताब के साथ मिले हुए थे। जहांगीर ने उनको सगर से लेकर मेवाड़ को लौटा दिये और उसको रावत का खिताब देकर ऊमरीभदोरा का परगना जागीर में प्रदान किया, जहाँ उसके वशज वरावर वने रहे।[3] इन्ही लौटाये गये परगनों में से महाराणा कर्णसिह ने सादड़ी का परगना अपने वहनोई राजराणा रायसिंह को दे दिया।

राजराणा रायसिंह भी अपने पिता की भाति तेजस्वी, बुद्धिमान और कुशल योद्धा था। अपने कुवरपदे में उसने मेवाड की सेना में रहकर मुगल विरोधी लडाईयों में अपना पराक्रम दिखाया था। महाराणा कर्णसिंह उसकी क्षमता और विशिष्ट गुणों से अवगत था और वह उनका अपने राज्य-कार्य में उपयोग करना चाहता था।[4]

---

3 वीरविनोद, भाग-2, ले श्यामलदास, पृ 239-249

4 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 45-47

रायसिंह के साहस, स्वाभिमान तथा उद्धत प्रकृति के सम्वन्ध में कतिपय किम्वदतिया प्रचलित हैं, जिनका उल्लेख श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड मे किया गया है। यथा—जब बादशाह जहागीर ने झाला हरिदास के पुत्र रायसिंह की वीरता और साहस के सम्वन्ध में सुना तो उसने हरिदास को रायसिंह को उसके दरवार में बुलाने के लिये कहा। हरिदास ने बादशाह को बताया कि रायसिंह सहिष्णु प्रकृत्ति का नही है और कदाचित् वह आपको अपने व्यवहार से नाराज कर दे। फिर भी बादशाह ने उसको अपने पास बुलवाया। इस पर हरिदास ने महाराणा को बादशाह के आग्रह के सम्वन्ध में लिख कर कुवर रायसिंह को भिजवाने हेतु निवेदन किया। कुवर रायसिंह ने दिल्ली पहुँच कर नूरजहा वाटिका में निवास किया। वाटिका के रक्षक द्वारा रायसिंह की आज्ञा नही मानने पर रायसिंह ने उसको मार डाला। अगले दिन कुवर अपने पिता हरिदास के साथ बादशाह के दरबार में गया। नकीब उसको नही जानता था अतएव उसने कुवर को रोका। इस पर कुवर ने उसको इतने जोर से थप्पड़ मारा कि वह वही ढेर हो गया। इस घटना के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्राचीन दोहे प्रचलित हैं—

कुण झाला सम बड़ करे, वीर मरद अणवार।
हाथला रायसिंग री, दिल्ली तणै दरबार॥
कटारी अमरे सरी, इन्दा री तरवार।
हाथल रायसिंग री, दिल्ली तणै दरबार॥
तें वाही हरदास तण, आम खास बिच आय।
हाथल रायसिंग री, सारी जगत सराय॥

बादशाह जहागीर ने रायसिंह के इस उद्धत व्यवहार पर ध्यान नही दिया, बल्कि उसके साहस और बल की मन ही मन प्रशसा करते हुए, उसका स्वागत किया और उपहार स्वरूप वस्त्राभूपण दिये। उस समय रायसिंह ने बादशाह को अजमेर का निकटवर्ती मेवाड़ का भू-भाग (गुलाबपुरा ?), जो बादशाह ने पूर्व आदेश में नही लौटाया था, वापस मेवाड़ को लौटाने हेतु निवेदन किया। बादशाह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके तदनुसार फर्मान जारी किया, जिसको रायसिंह ने लाकर महाराणा को दिया। उससे महाराणा कर्णसिंह बहुत प्रसन्न हुआ।

तलवारवन्दी और खालसा उठंत्री के वाद राजराणा रायसिंह सादड़ी पहुँचा। उसके सभी वांधव और जागीरदार आदि वहाँ एकत्र हो गये। रायसिह ने सादड़ी ठिकाने का प्रबंध शुरू किया, जिसमें उसको अधिक कठिनाई नही हुई, चुंकि 'राणा' सगर ने मुगल शासन के अधीन प्रवन्ध कर रखा था। सगर के अधिकांश राजपूतों ने रायसिह झाला को अपना स्वामी स्वीकार कर लिया।

खुर्रम का सादड़ी आना

रायसिंह सादड़ी में अपने नये प्रबंध की ओर ध्यान दे ही रहा था कि उसको वादशाह जहांगीर और उसके शाहजादे खुर्रम के मध्य झगड़े और लड़ाई के समाचार मिले। उसके कुछ समय वाद शाहजादे खुर्रम के उदयपुर पहुंचने की खवर मिली, साथ ही महाराणा कर्णसिंह का उदयपुर पहुँचने का पर्वाना भी राजराणा रायसिंह को मिला। महाराणा कर्णसिंह के साथ शाहजादे खुर्रम के सम्वन्ध मेवाड़-मुगल-संधि के समय से ही वड़े मधुर रहे थे, जव शाहजादा खुर्रम युवराज कर्णसिंह को लेकर वादशाह के पास अजमेर गया था। खुर्रम द्वारा कर्णसिंह की प्रशंसा के कारण मेवाड़ के युवराज कर्णसिंह को वादशाह ने पांच हजारी मंसवदार वनाकर उसके नाम पर ही मेवाड़ के परगने लौटाये थे। उन्ही मधुर सम्वन्धों और विश्वास के सहारे शाहजादा खुर्रम अपने पिता से लड़ने के हालात में शरण लेने हेतु 1626 ई. के लगभग महाराणा कर्णसिह के पास उदयपुर चला आया।[5] महाराणा कर्णसिंह ने अपने छोटे भाई भीमसिंह को, वादशाह की नाराजगी की परवाह नहीं करते हुए, शाहजादे की सेवा में रख दिया। शाहजादा को पिछोला झील के भीतर वने हुए जलमहल 'जगमंदिर' में ठहराया। सादड़ी राजराणा रायसिंह ने उदयपुर आकर शाहजादे से भेंट की। शाहजादा कुछ दिन महाराणा के आतिथ्य में उदयपुर ठहकर मांडू की ओर रवाना हुआ। उस समय मार्ग में राजराणा रायसिंह आग्रह करके शाहजादे खुर्रम को अपने ठिकाने सादड़ी में लिवा लाया औश्र अपना महमान वनाकर उसकी वड़ी आवभगत की। शाहजादा उसके आतिथ्य से वहुत प्रसन्न हुआ। शाहजादे ने सादड़ी में वादशाही दर्वाजा वनवाया। उस पर वादशाही निशान तथा राजप्रासाद पर स्वर्णकलश लगवाया और उनको सदा

1621 ई में एक बार कुवर रायसिंह महाराणा के साथ आखेट में गया हुआ था। उस समय कोठारिया रावत ने महाराणा को कवादे नामक शस्त्र से सिंह के शिकार की बात कही, जो बड़ा कठिन कार्य था, किन्तु वीर क्षत्रिय के लिये असंभव नहीं था। सयोग से उस वक्त एक सिंह कुवर रायसिंह के पास से निकला तो रायसिंह ने कवादे से ही सिंह को मार कर अपने पराक्रम का परिचय दिया। (मार्तण्ड, पृ. 45-47)
रायसिंह सम्वधी इन वृत्तान्तों की ऐतिहासिकता की अन्य स्रोतों से पुष्टि आवश्यक है।

5 वीरविनोद, ले श्यामलदास, पृ 272-273

इससे पूर्व भी 1616 ई में शाहजादा खुर्रम मेवाड़ में आया था, जब शाहजादे के सम्बन्ध अपने पिता के साथ मधुर थे। जहागीर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—"मुलामद खां से रिपोर्ट मिली कि शाहजादा खुर्रम राणा की भूमि में ठहरा है, यद्यपि राणा का उससे मिलने के सम्बन्ध में कोई निर्णय नही था।"
Tuzk-i-Jahangir, Vol I, (Edited by A Ragero and H. Beveridge), P. 344

के लिये कायम रखने के आदेश किये ।[6]

28 अक्टूबर, 1627 ई. को वादशाह जहांगीर की मृत्यु होने पर शाहजादा खुर्रम एक वार फिर मेवाड़ में आया था, जब वह वादशाह के मरने के समाचार सुनकर दक्षिण से गुजरात होता हुआ दिल्ली की ओर रवाना हुआ। मार्ग में वह 2 जनवरी, 1628 ई. को गोगूंदे में ठहरा। महाराणा ने वहां जाकर उससे भेंट की और अपने भाई अर्जुनसिंह को उसके साथ भेजा ।[7]

महाराणा जगतसिंह को सैन्य सहायता देना

खुर्रम से गोगूंदे में भेंट करने के दो महिने वाद मार्च, 1628 ई. में महाराणा कर्णसिंह का देहान्त हो गया और उसका ज्येष्ठ कुंवर जगतसिंह मेवाड़ का महाराणा वना। महाराणा जगतसिंह के गद्दीनशीन होने के वाद ही उसको क्रमशः देवलिया (प्रतापगढ़), डूंगरपुर, सिरोही तथा वांसवाड़ा पर फौजकशी करनी पड़ी। ये सभी राज्य मेवाड़ के अधीन चले आते थे किन्तु उनके शासक मौका पाकर मुगल वादशाह की शरण लेकर मेवाड़ से स्वतंत्र होने की चेष्टा करते रहते थे। महाराणा की सेना ने फौजकशी के दौरान देवलिया, डूंगरपुर, सिरोही और वांसवाड़े को लूटा। इसकी शिकायत वादशाह शाहजहां के पास पहुंची। वह वहुत नाराज हुआ। इस पर 1633 ई. में महाराणा जगतसिंह ने देलवाड़े के झाला कल्याण को वादशाह के पास एक हाथी और अर्जी लेकर भेजा और वादशाह को प्रसन्न किया। वादशाह द्वारा तकाजा करने पर महाराणा ने भोपतराम के साथ मेवाड़ की सेना दक्षिण में मुगल सेना की सहायतार्थ भेजी ।[8]

राजराणा रायसिंह 27 वर्षों तक सादड़ी का शासक रहा। अपने शासन के प्रारंभिक वर्षो में उसने ठिकाने के सुप्रवंध की ओर ध्यान दिया और महाराणा कर्णसिंह का कृपा-पात्र रहते हुए उसने मेवाड़ के राज्यकार्य में विशेष सहयोग दिया। महाराणा जगतसिंह के शासनारुढ़ होने के वाद महाराणा ने जो उपरोक्त सैनिक कार्यवाहियां की, उनमें राजराणा रायसिंह ने स्वयं जाकर अथवा अपना सैन्य दल भेजकर मेवाड़ की सेना की सहायता की।

---

6 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ. 49
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, ले गौ. ही ओझा, पृ 873

7. मुश देवीप्रसाद कृत शाहजहानामा (स. डॉ रघुवीरसिंह एव डॉ मनोहरसिंह राणावत), पृ 67
वीरविनोद, ले श्यामलदास, पृ 290
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, ले गौ. ही ओझा, पृ 514

कतिपय लोगों का यह मानना है कि शाहजादा इस समय दिल्ली जाते हुए सादड़ी में ठहरा था, किन्तु यह सम्भावना कम है, चूकि एक तो सादड़ी गाव गुजरात-गोगूंदा मार्ग पर स्थित नहीं है, दूसरे उस समय शाहजादे को दिल्ली पहुँच कर वादशाह बनने की जल्दी थी। उस आपातकाल में वह केवल महाराणा का समर्थन एवं सहयोग का वचन हासिल करने हेतु ठहरा था।

श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड (पृ 49) में उल्लेख है कि शाहजादा खुर्रम द्वारा मुगल तख्त पर बैठने और वादशाह शाहजहां वनने के बाद वि. स. 1684 में राजराणा रायसिंह के आमत्रण पर वह सादड़ी आया, किन्तु तत्कालीन घटनाक्रम को देखते हुए यह सभव नहीं लगता।

8 मुशी देवीप्रसाद कृत शाहजहानामा, पृ 104

रायसिंह को सेनापति बनाकर मुगल दरबार में भेजना

1615 ई. की मुगल-मेवाड़ संधि के अनुसार मेवाड़ राज्य की ओर से 1000 सवारों का सैन्यदल मुगल सेना के साथ रखना आवश्यक था। मेवाड़ की ओर से इस शर्त को पूरी करने पर ढिलाई चलती रही, इस पर बादशाह शाहजहां ने तकाजा किया। महाराणा जगतसिंह ने पहले महाराणा प्रताप के पौत्र एवं सहसमल के पुत्र भोपतराम की अध्यक्षता में मेवाड़ की सेना भेजी। सैन्यदल का अध्यक्ष मेवाड़ की सेना का नेतृत्व करने के अलावा एक प्रकार से मुगल दरबार में मेवाड़ राज्य का एलची होता था, जो मेवाड़ दरबार की ओर से मुगल बादशाह को सूचना-संदेश एवं भेंट आदि पेश करता था, साथ ही वह मुगल दरबार की सभी प्रकार की गोपनीय अथवा अगोपनीय सूचनाएं महाराणा को भिजवाता था। अतएव उस पद पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करना आवश्यक था, जो वीर एवं कुशल योद्धा होने के साथ बुद्धिमान, राजनीति-पटु एवं प्रभावशाली हो। महाराणा जगतसिंह के पास ऐसा योग्य व्यक्ति उस समय स्व. राजराणा हरिदास का पुत्र राजराणा रायसिंह झाला था, जिसके बादशाह शाहजहां के साथ निजी सम्बन्धी भी थे। रायसिंह ने उसको बादशाह बनने से पहिले सादड़ी में मेहमान बनाया था। इस दृष्टि से वह बादशाह के निकट भी था एवं उसका कृपा-पात्र भी था। अतएव दो वर्ष बाद 1635 ई. में महाराणा जगतसिंह ने सादड़ी राजराणा रायसिंह झाला को मुगल सेना में शामिल रहने वाली मेवाड़ी सेना का स्थायी सेनापति बना दिया। रायसिंह उस पद पर लगभग 20 वर्षों तक रहा तथा उसने मुगल सेना के साथ रहकर भारत के विभिन्न भागों, प्रधानतः उत्तरी एवं पश्चिमी भारत में कांगड़ा, बल्ख, बदख्शां, कंधार की लड़ाइयों में भाग लिया, जहां उसने बड़ी वीरता और साहस का परिचय दिया। उसके कारण मुगल दरबार में उसको बड़ी ख्याति मिली और बादशाह ने उसको अपना मंसबदार बनाया।[9]

रायसिंह को मुगल दरबार में मंसब मिलना

1638 ई. में जब बादशाह शाहजहां का मुकाम आगरे में था, 8 जुलाई को उसने राजराणा रायसिंह झाला को 800 जात और 400 सवार का मंसब प्रदान किया। जब 17 अगस्त, 1638 ई. को बादशाह लाहोर के लिये रवाना हुआ तो रायसिंह अपनी मेवाड़ी सेना को साथ लेकर बादशाह के साथ गया। लाहोर से बादशाह ने काबुल की ओर प्रस्थान किया, जहाँ उसने 19 मई, 1639 ई. को रायसिंह झाला की मंसब में इजाफा करके 1000 जात और 400 सवार कर दिया।[10]

---

9 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, ले गौ ही ओझा, पृ 873

10 मुशी देवीप्रसाद कृ शाहजहानामा, पृ 170, 178
वीरविनोद, ले श्यामलदास, पृ 338

रायसिंह का कांगड़ा विजय में भाग लेना

1641 ई मे काश्मीर में मुकाम के दौरान बादशाह शाहजहां ने 23 अप्रेल के दिन सादड़ी राजराणा रायसिह झाला की मसब में पुन· बढोतरी की और एक सौ सवार बढ़ाकर उसकी मसव 1000 जात और 500 सवार कर दी। इस वर्ष नूरपुर (कांगडा) का राजा जगतसिंह बादशाह के विरुद्ध हो गया। बादशाह ने शाहजादा मुरादबक्ष को सेना देकर उसको दवाने के लिये भेजा। मुरादबक्ष के साथ आमेर के राजा जयसिह कछवाहा, किशनगढ़ के राजा हरिसिह राठोड़, सादड़ी राजराणा रायसिह झाला और सावर के गोकुलदास सिसोदिया आदि को अपनी अपनी राजपूत सेनाओं को लेकर आक्रमण हेतु भेजा गया। इस सैनिक अभियान में राजपूत सैनिकों ने बड़ी वीरता दिखाई, प्रधानत: सादड़ी राजराणा के नेतृत्व में मेवाड के सैनिक अग्रिम पंक्ति में रहे। नूरपुर के राजा जगतसिह को लाकर बादशाह के पास हाजिर किया गया। बादशाह ने इस अवसर पर प्रसन्न होकर सादडी के रायसिह झाला और गोकुलदास को घोड़े और खिलअत प्रदान करके उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।[11]

रायसिंह का कंधार एवं काबुल की लड़ाईयों में भाग लेना

ईरान के बादशाह द्वारा कंधार में सैनिक कार्यवाही करने के समाचार सुनकर शाहजहां ने 25 नवम्बर, 1641 ई. को अपने लाहोर मुकाम से शाहजादे दाराशिकोह को एक बड़ी सेना देकर कंधार के लिये रवाना किया। इस अवसर पर बादशाह द्वारा सादड़ी के रायसिह झाला, सावर के गोकुलदास सिसोदिया और रायसिह राठोड़ को विशेष खिलअत और घोडे प्रदान कर उनकी इत्जत बढ़ाई गई और उनको अपनी-अपनी सेनाएं लेकर शाहजादे के साथ रवाना किया।[12] उस समय शाहजादे की सेना में शामिल अन्य राजपूत सेनापतियों में जोधपुर का राजा जसवंतसिह, नागोर का राव अमरसिह, जयपुर का राजा जयसिह, बूंदी का राव शत्रुशाल, टोड़े का राव रायसिह सिसोदिया, हरिसिह राठोड़, महेशदास राठोड़ आदि प्रमुख थे। मुगल सेना के कंधार पहुँचने पर ईरानी सेना ने मुगल सेना का सामना नहीं किया और कंधार पर ईरानी खतरा टल गया। इस पर शाहजादा दाराशिकोह ससैन्य वापस बादशाह के पास आ गया।[13]

21 अक्टूबर, 1643 ई. को शाहजहां ने आगरा से अजमेर के लिये प्रस्थान किया। महाराणा जगतसिह के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर राजसिह ने जोगी तालाब के डेरे पर उपस्थित होकर बादशाह को हाथी नज्र किया। बादशाह ने कुंअर को खिलअत और सुवर्ण सज्जित घोड़ा आदि प्रदान किये। बादशाहनामा में उल्लेख है—'जब शाहजादा खुर्रम राणा अमरसिंह की मुहिम समाप्त करने के बाद अपने पिता जहांगीर के साथ काश्मीर की सैर को गया था तो उस वक्त

---

11 मुशी देवीप्रसाद कृत शाहजहानामा, पृ 186

12 मुशी देवीप्रसाद कृत शाहजहानामा, पृ 195

13 वही।

(राणा) कर्णसिंह का बेटा जगतसिंह कुंवरपदे में उसकी सवारी के साथ था। इसी प्रकार बाद में दक्षिण की लड़ाइयों में वह (कुंवर जगतसिंह) शाहजहां के साथ रहा। इस सफर में राणा जगतसिंह ने (चूंकि वह अब राणा बन चुका था) अपनी एवज में अपने बेटे राजसिंह को भेजा था। राणा का बेटा, राठोड़ों के सिवाय, सब राजपूतों में बाप की जगह बैठता है। ये लोग (राजपूत) उसको 'टीकाई' कहते हैं।'[14]

1645 ई. में बादशाह शाहजहां ने अपने काश्मीर डेरे से अली मर्दान खां के सेनापतित्व में एक बड़ी सेना काबुल की ओर भेजी। उसके बाद उसकी सहायतार्थ भेजी गई सेना में मेवाड़ की ओर से सादड़ी राजराणा रायसिंह झाला को उससे सैन्यदल के साथ शामिल किया गया।

रायसिंह की मंसब में इजाफे

इस वर्ष 17 नवम्बर, 1645 ई. को बादशाह ने सादड़ी के रायसिंह झाला की मंसब में 100 सवार का इजाफा करके 1000 जात और 600 सवार किये।[15]

काबुल की ओर भेजी गई मुगल सेना ने बल्ख एवं बदख्शां पर कब्जा कर लिया। किन्तु कब्जा कायम रखना बड़ा कठिन पड़ा और मुगल सेना की बड़ी दुर्दशा हुई। इस पर 7 फरवरी, 1646 ई. को बादशाह ने लाहोर मुकाम से शाहजादे मुरादबख्श को अमीरों और राजपूत राजाओं की बड़ी सेना देकर काबुल की ओर रवाना किया। इस सेना में प्रधान राजपूत राजाओं के अलावा मेवाड़ से सम्बन्धित राजपूत मंसबदारों में सादड़ी का रायसिंह झाला, गोकुलदास सिसोदिया, रामसिंह राठौड़[16], हमीरसिंह सिसोदिया, नारायणदास सिसोदिया आदि शामिल थे। सेना को रवाना करने से पहिले उसी दिन (7 फरवरी, 1649 ई.) सादड़ी के रायसिंह झाला की मुगल दरबार में इज्जत बढ़ाकर उसकी मन्सब 1000 जात और 700 सवार की गई तथा खिलअत और घोड़े प्रदान किये।[17] इस अवसर पर गोकुलदास और रामसिंह राठौड़ को भी बादशाह ने खिलअत और घोड़े प्रदान करके उनकी इज्जत में इजाफा किया। भयंकर बर्फ और कबाइली हमलों के कारण मुगल सेना को सफलता नही मिली, यद्यपि उस समय राजपूतों ने सेना के हरावल भाग में रहकर जो वीरता दिखाई, उससे उनकी बड़ी प्रसिद्धि हुई। 1647 ई.

---

14 वही, पृ 200। मुंशी देवीप्रसाद द्वारा अपनी पुस्तक में अब्दुलहमीद लाहोरी कृत बादशाहनामा से उद्धृत। टीकाई अर्थात् पाटवी (उत्तराधिकारी)। चूंकि मेवाड़ का महाराणा मुगल दरबार में नहीं जाता था, उसकी एवज में महाराणा का ज्येष्ट पुत्र युवराज को भेजा जाता था। राजपूत राज्यों में उत्तराधिकार की विधि के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का भावी अधिकारी होता था, अतएव उसको 'टीकाई' बोला जाता था।

15 वही, पृ 213

16 वह जोधपुर के राव चन्द्रसेन के पौत्र कर्मसेन का बेटा और महाराणा जगतसिंह का भानेज था। वह महाराणा की नौकरी में रहा। उसको 1640 ई में बादशाह शाहजहा के पास भेजा गया, जहा वह रामसिंह रोटला के नाम से मशहूर हुआ। उसको 1000 जात और 600 सवार की मंसब मिली हुई थी। (वीरविनोद, पृ 319)

17 मुशी देवीप्रसाद कृत शाहजहानामा, पृ 217-219
वीरविनोद, ले श्यामलदास, पृ 372

में शाहजादे औरंगजेब को बल्ख की ओर भेजा गया, किन्तु उसको भी कोई बड़ी सफलता हासिल नहीं हुई।[18]

15 मई 1653 ई. को महाराणा जगतसिंह का देहान्त हो गया। उसका ज्येष्ठ पुत्र राजसिंह मेवाड़ का महाराणा बना। सादड़ी राजराणा रायसिंह महाराणा राजसिंह के राज्याभिषेक दरबार में शरीक हुआ और महाराणा को अपनी नज्र पेश की। उसके कुछ समय बाद राजराणा रायसिंह पुनः मेवाड की सेना का अध्यक्ष बनकर मुगल दरबार में चला गया।

श्री द्वारिकाधीश मूर्ति को सादड़ी में लाना और महाराणा जगतसिंह द्वारा शरण देना

इस बीच में वि.सं. 1704 के चैत्र सुदी 1 (1646 ई.) को गोस्वामी वृजभूषणलाल महाराज (प्रथम) वल्लभ सम्प्रदाय की भगवान द्वारिकाधीश की वैष्णव मूर्ति लेकर सादड़ी पहुंचा। ठिकाने की ओर से उसकी पूरी आवभगत की गई और इस भारत प्रसिद्ध मूर्ति के लिये मंदिर तथा पूजा आदि के व्यय हेतु सम्पूर्ण इंतजाम किया गया। गोस्वामी मूर्ति के साथ लगभग छ. माह सादड़ी में रहा।[19] वह मथुरा में मुगल मूतिभंजकों के बढ़ते दबाव से मूर्ति की रक्षा.हेतु मूर्ति को लेकर मेवाड़ की ओर आया था और उसका इरादा मेवाड़ के महाराणा की शरण और सुरक्षा लेना था। महाराणा जगतसिंह ने मुगल बादशाह की नाराजगी की चिंता किये बिना भगवान द्वारिकाधीश की मूर्ति की रक्षा का दायित्व ग्रहण किया। महाराणा जगतसिंह को समाचार मिलने पर उसने अपने अधिकारियों को भेजकर सादड़ी से मूर्ति सहित गोस्वामी को उदयपुर बुलवाया। गोस्वामी ने जन्माष्टमी का त्यौहार सादड़ी में सम्पन्न करने के बाद वह मूर्ति लेकर उदयपुर पहुँचा।[20] महाराणा जगतसिंह ने उदयपुर से लगभग 40 मील दूर पहाड़ी भाग के बाहर कांकड़ोली गांव के पास आसोट्या स्थान पर आवश्यक मंदिर एवं भवन आदि बनवाकर वहां द्वारिकाधीश की मूर्ति स्थापित करवाई और मूर्ति की सेवा-पूजा हेतु व्यय के लिये कुछ गाँवों

---

18 मुशी देवीप्रसाद कृत शाहजहानामा, पृ 231

अब्दुलहमीद लाहोरी कृत बादशाहनामा में कधार की लड़ाईयों में राजपूतों की वीरता की बड़ी प्रशसा की गई है। उसमें उल्लेख है कि "हरावल को बहादुर राजपूतों के कदमों ने (मुगल सेना को) वह ताकत प्रदान की जो भीषण युद्धों में, जहा कि मर्दों का रग उड़ जाता है, वे लड़ाई का रंग जमा देते हैं। बादशाह की सेना का हरावल भाग राजपूतों की बहादुरी से सिकदर की दीवार की तरह मजबूत था, जिसमें दुश्मन कोई छिद्र नहीं कर सकता था। राजपूत लड़ाई के नाम को जान के बदले खरीदने और जान को नाम के वास्ते बेचने का व्यापार खूब जानते हैं।" (मुशी देवी प्रसाद कृत शाहजहानामा, पृ 161)

19 बड़ीसादड़ी ठिकाने के प्राचीनपत्र।

20 वही।

वीरविनोद में इस बात का जिक्र नही है कि श्री द्वारिकाधीश की मूर्ति कब मेवाड़ में लाई गई। ओझाजी ने केवल यही लिखा है कि श्रीनाथजी की मूर्ति को मेवाड़ में लाने से कुछ समय पहिले श्री द्वारिकानाथजी की मूर्ति भी मेवाड़ में लाई गई थी। अतएव सामान्यत यह माना जाता है श्री द्वारिकाधीशजी की मूर्ति को भी महाराणा राजसिंह ने ही सुरक्षा प्रदान की थी। वस्तुत. उसको महाराणा जगतसिंह ने सुरक्षा प्रदान की थी।

की जागीर गोस्वामी को प्रदान की। वाद में जव महाराणा राजसिंह ने राजसमुद्र झील का निर्माण करवाया तो उसने उसके पूर्व की ओर के वांध की पाल वाली पहाड़ी पर 1676 ई. में द्वारिकाधीश भगवान के लिये विशाल मंदिर एवं भव्य महलों का निर्माण करवा दिया।[21] इसके 26 वर्ष वाद महाराणा राजसिंह के काल में वल्लभ सम्प्रदाय की भारत प्रसिद्ध श्रीनाथ भगवान की दूसरी वैष्णव मूर्ति को मथुरा के गिरिराज पर्वत से लेकर दामोदर गोस्वामी 1672 ई. में वूंदी, किशनगढ़, जोधपुर होते हुए उदयपुर पहुँचा। महाराणा ने गोस्वामी को सुरक्षा प्रदान की और वनास नदी के किनारे सिहाड़ गांव में मंदिर वनवा कर श्रीनाथजी की मूर्ति स्थापित करवाई।[22]

शाहजहाँ द्वारा मेवाड़ पर सेना भेजना और रायसिंह की वतनपरस्ती

1653 ई. में महाराणा राजसिंह के शासनारूढ़ होने के वाद मेवाड़ के महाराणा और मुगल वादशाह के वीच तनाव की स्थिति पैदा हुई। उसका प्रधान कारण महाराणा राजसिंह द्वारा तेजी के साथ चित्तौड़गढ़ का पुनर्निर्माण करवाना था। महाराणा जगतसिंह ने चित्तौड़गढ़ की मरम्मत कराना शुरू किया था, उस पर वादशाह की ओर से एतराज किया गया। 1615 ई. की संधि में एक शर्त यह थी कि चित्तौड़गढ़ की टूटी दीवालों, प्राचीरों आदि की मरम्मत नही कराई जावेगी। महाराणा राजसिंह का इरादा सिसोदिया राजवंश के गौरव के प्रतीक चित्तौड़गढ़ को पूरी तरह अपना पुराना स्वरूप प्रदान करना था। किन्तु मुगल वादशाह चित्तौड़गढ़ के विशाल एवं दुर्भेद्य दुर्ग को अपने साम्राज्य के लिये सदैव खतरनाक मानते थे। वादशाह की आज्ञा के विना तथा सधि की शर्त का उल्लंघन करते हुए चित्तौड़गढ़ के पुनर्निर्माण के इस कार्य से नाराज होकर वादशाह शाहजहां ने मेवाड़ पर सेना भेजने का निर्णय किया। वादशाह के इस निर्णय की खवर सुनकर दिसम्वर, 1653 ई. में वादशाही सेवा में मौजूद महाराणा जगतसिंह का भाई महाराणा राजसिंह का चाचा गरीवदास, जो मुगल दरवार में 1500 जात और 600 सवार का मंसवदार था, वादशाह की आज्ञा लिये विना मेवाड़ चला आया। इस पर उसको मंसव और जागीर से अलग कर दिया गया।[23]

उसके साथ-साथ सादड़ी का राजराणा राजसिंह झाला भी जो वादशाह शाहजहां का विश्वसनीय और 1000 जात और 700 सवार वाला कृपापात्र मंसवदार था, वादशाह को सूचना दिये विना मुगल दरवार छोड़ कर महाराणा के पास चला आया।[24] जव शाहजहां को इन मंसवदारों की इस प्रकार की विद्रोहपूर्ण कार्यवाही की जानकारी हुई तो वह वहुत नाराज हुआ।

महाराणा राजसिंह की चित्तौड़गढ़ के पुनर्निर्माण की कार्यवाही को रोकने के इरादे से वह आगरे से रवाना होकर 8 नवम्वर, 1654 ई. को अजमेर आया। उसको सूचना मिली कि

---

21. प. रणछोड भट्ट कृत राजप्रशस्ति महाकाव्य (शिलालेख) सर्ग 6
22 वीरविनोद, ले श्यामलदास, पृ 453
23 मुशी देवीप्रसाद कृत शाहजहानामा, पृ 281
24 वही।

चित्तौड़गढ के पश्चिम की ओर के सात दरवाजों की मरम्मत की गई है और कई दरवाजे नये बनवाये गये हैं। बादशाह ने सादुल्लाखा को तीस हजार सेना के साथ किले को गिरा देने हेतु भेजा।[25] यह एक प्रकार से लड़ाई का न्यौता था किन्तु महाराणा राजसिंह ने लड़ाई मोल लेना ठीक नही समझा। उसने पं. मधुसूदन तैलग (भट्ट) को सादुल्लाखां के पास वार्ता हेतु भेजा। तैलंग ने गढ को राजपूतों से खाली करवा दिया और महाराणा की ओर से उसके युवराज को मेवाड की सेना के साथ दक्षिण में भेजने की बात मंजूर कर ली। इस पर सादुल्लाखा गढ़ के कंगूरों और बुर्जों को गिराकर वापस चला गया।[26]

पं. रणछोड़भट्ट कृत समकालीन संस्कृत ग्रंथ राजप्रशस्ति महाकाव्य (शिलालेख) में मधुसूदन भट्ट (तैलंग) की सादुल्लाखां के साथ हुई बातचीत का बड़ा दिलचस्प वर्णन किया गया है।[27] गरीबदास और रायसिंह झाला द्वारा बादशाह की आज्ञा लिये बिना मुगल दरबार से चले आने के सम्बन्ध में बादशाह की नाराजगी का जिक्र करते हुए सादुल्लाखां ने मधुसूदन भट्ट को पूछा—'राणा ने गरीबदास और झाला रायसिंह को क्यों बुलवा लिया?'

इस पर पं. मधुसूदन ने उत्तर दिया—'ऐसा पहिले भी हुआ है। राणा प्रताप का भाई रणोन्मत्त शक्तिसिंह और रावत मेघसिंह[28] मेदपाट (मेवाड़) से दिल्ली गये। दिल्लीपति ने उनको अपने पास रखा। फिर वे बादशाह द्वारा मेवाड़ पर चढ़ाई करने पर स्वदेश की रक्षार्थ मेदपाट चले आये।

तब खान बोला—'पडित! राणा के अश्वारोहियों की संख्या कितनी है?'

भट्ट ने उत्तर दिया—बीस हजार।

---

25 वही, पृष्ठ 282-284

26 वही। उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, ले गौ ही ओझा, पृ 533-534

27 राजप्रशस्ति महाकाव्य, षष्ट- सर्ग:
खान पडित सबुद्ध्या भट्ट प्रत्युक्त वान्कथ।
गरीबदासो राणेन कथमाकारित स्तथा ॥14॥
झालाख्य रायसिंहश्च भट्टे नोक्त सदादित·।
बातमेव प्रतापाख्य राना भ्राता रणोत्कार ॥15॥
शक्तसिंहो मेघनामा रावतो मेदपाटत
आयातौ स्थापितौ दिल्लीनाथेन किलतो पुन ॥16॥
मेदपाटे समायातौ चकार परमेश्वर।
इति स्वामि प्रमुक्ताना राजन्याना स्थलद्वय ॥17॥

28. प्रताप का छोटा भाई शक्तिसिंह बादशाह अकबर के दरबार में था। जब 1567 ई में अकबर ने चित्तौड़गढ़ पर चढ़ाई का निश्चय किया तो वह बादशाह को सूचित किये बिना चुपचाप अपने पिता महाराणा उदयसिंह के पास चला आया था। उसी प्रकार चूडावत मेघसिंह, जो बादशाह जहागीर की सेवा में चला गया था, महाराणा अमरसिंह द्वारा वापस अपने वतन की सेवा हेतु बुलाने पर, मुगल दरबार छोड़कर महाराणा के पास चला आया था।

इस पर खान ने कहा—दिल्लीपति के अश्वारोहियों की संख्या तो एक लाख है। कैसे बराबरी होगी ?

भट्ट ने उत्तर दिया—स्पष्ट सुनो। दिल्लीपति के एक लाख सवारों और महाराणा के बीस हजार सवारों को विधाता ने समान बनाया है।

इस पर दोनों के बीच तनातनी हो गई। किन्तु उस समय मुंशी चन्द्रभान ने बीचबचाव किया तथा महाराणा द्वारा अपने कुंवर सुलतानसिंह को शाहजादा दाराशिकोह के साथ भेज देने के कारण बात आगे नही बढ़ी।[29]

रायसिंह का देहान्त और मूल्यांकन

मुगल दरबार से मेवाड चले आने के दो वर्ष बाद वि.सं. 1712 (1656 ई.) में राजराणा रायसिंह का सादड़ी में देहान्त हो गया। वह लगभग सैंतीस वर्ष सादड़ी ठिकाने का शासक रहा और लगभग बीस वर्ष महाराणा की ओर से उसके एलची और उसकी सेना के सेनापति के तौर पर मुगल बादशाह की सेवा में कार्य करता रहा। उसने एक वीर योद्धा एवं कुशल सेनापति की भांति मुगल बादशाह की सेना द्वारा विभिन्न स्थानों प्रधानत. काबुल और कंदहार जैसे पहाड़ी और बर्फीली जगहों पर लड़ी गई लड़ाईयों में अपनी मेवाड़ी सेना के साथ अग्रिम मोर्चे पर तैनात होकर अपने साहस और वीरता का परिचय दिया, जिससे मुगल दरबार में उसकी बड़ी ख्याति रही और बादशाह ने समय समय पर उसकी मंसब में बढ़ोतरी करके उसकी इज्जत बढ़ाई। वह अंत में एक हजार जात और सात सौ सवार का मंसबदार था।

उसने बुद्धिमत्ता, तेजस्विता, राजनीति-पटुता और व्यवहार-कुशलता द्वारा मुगल दरबार में मेवाड़ के हितों की रक्षा की, मेवाड़ के महाराणा की गरिमा बनाये रखी तथा मुगल दरबार में होने वाली घटनाओं एवं गतिविधियों के सम्बन्ध में बराबर महाराणा को सूचित करता रहा।

वह सच्चा वतनपरस्त था। मुगल बादशाह द्वारा मंसब बक्षी जाने के बावजूद, उसने अपनी वतनपरस्ती और वफादारी नही छोड़ी। ज्योंहि उसको पता चला कि बादशाह चित्तौड़गढ़ पर अपनी सेना भेज रहा है, गरीबदास के साथ वह भी तत्काल मुगल दरबार छोड़कर महाराणा के पास चला आया।

रायसिंह ने अपने कुंवरपदे काल में ही नीतिज्ञता, सच्चाई और निस्वार्थता का परिचय दिया था, जब उसने महाराणा के कहने पर भी नीति-विरुद्ध अपने पिता के विरुद्ध जाने से इन्कार कर दिया था। उसने महाराणा का बहनोई होने का अनुचित लाभ नहीं उठाया।

वह अपनी नीतिज्ञता, बुद्धिमानी और क्षमता के कारण महाराणा जगतसिंह और राजसिंह का विश्वसनीय सलाहकार बना रहा और मेवाड़ दरबार में उसके पिता की भांति उसकी प्रतिष्ठा भी सर्वोच्च बनी रही।

---

29 राज-प्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग 6 ।

सादड़ी-कुंवर की प्रतिष्ठा में वृद्धि

श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड में उल्लेख है कि रायसिंह के कुंवरपदे काल में उसकी वीरता, पराक्रम और स्वामिभक्ति की भावना से प्रभावित होकर महाराणा ने दरबार में उसके पूर्वज वंशजों के बलिदानों की प्रशंसा करते हुए निम्नलिखित प्रतिष्ठा कुंवर रायसिंह को (उसके कंवरपदे में) प्रदान की थी—

प्रथम—बड़ी सादड़ी का राजकुमार जिस समय राजदरबार में आवे, सोलह उमरावों के समान उसकी बैठक होगी।

द्वितीय—बड़ी सादड़ी के राजकुमार का मुजरा नकीब द्वारा होगा।

तृतीय—राजदरबार से विदा होते समय सोलह उमरावों की भांति उसको भी बीड़ा दिया जावेगा तथा अंतिम विदाई (जागीर को जाने हेतु रूखसत) के समय सादड़ी कुमार को भी सोलह उमरावों की भाति सरोपा दिया जावेगा।

चतुर्थ—अमर बेहड़ा (अमर वलेणा) अर्थात् हमेशा के वास्ते घोड़ा सादड़ी राजकुमार को दिया जावेगा।

पंचम—ये प्रतिष्ठा न केवल कुंवर रायसिंह को ही दी गई, अपितु हमेशा के लिये सादड़ी के राजकुमारों के लिये मंजूर की गई।

राजराणा रायसिंह ने राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के पश्चात् अपनी निर्मल सेवाओं से मेदपाटेश्वर को सर्व प्रकार से प्रसन्न रखा। चिरकाल पर्यन्त मेवाडाधीश की ओर से वे इन्द्रप्रस्थ (मुगल राजधानी दिल्ली) के दरबार में राजप्रतिनिधि रहे।[30]

विवाह और संतति—

राजराणा रायसिंह ने निम्नलिखित विवाह किये—

1. महाराणा अमरसिंह की पुत्री राणावतजी[31]
2. पीथापुर के बाघसिंह बाघेला की पुत्री रूपकंवर उसकी कोख से कुंवर सुरताण सिंह हुआ।
3. रामपुरा के उदयसिंह चन्द्रावत की पुत्री जीतकंवर।
4. करणसिंह राठोड़ की पुत्री गुलाबकवर।
5. धमोतर के रामसिंह सिसोदिया की पुत्री रूपकंवर।

---

30 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 47-48

31 बड़ी सादड़ी की प्राचीन पत्रावली। गौ ही ओझा ने रायसिंह का विवाह महाराणा कर्णसिंह की पुत्री के साथ होना लिखा है—(उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ 873) बड़वों की पोथियों में रायसिंह का महाराणा के परिवार में विवाह करने का उल्लेख नही है।

6. बूंदी के राव जगतसिंह हाड़ा की पुत्री रंभाकंवर
7. वनेड़ा के सार्दूलसिंह की पुत्री अजवकंवर राणावत।
8. वांसी के जसवंतसिंह शक्तावत की पुत्री लाड़कंवर।[32]

राजराणा रायसिंह के निम्नलिखित संतानें हुई—

पुत्र— 1. सुरताणसिंह (सुलतान सिंह)
वह सादड़ी में पाट बैठा
2. भुवानसिंह (भावसिंह)
उसको से मत्या, जामुण्या, जवाणा, जमालपुरा जागीर में मिलने का उल्लेख है।
3. शेरसिंह
4. कानजी
5. जसवंतसिंह, उसको भियाणा, कीटखेड़ा जागीर में मिलने का उल्लेख है।
6. अमरसिंह
7. उदयकरण

पुत्री रतनकंवर का विवाह महाराणा राजसिंह के साथ हुआ।[33]

---

32. बड़वों की पोथियों में राजराणा रायसिंह की पत्नियों के विषय में बहुत भिन्नताएं हैं।
33. बड़वा देवीदान लिखित मेवाड़ के राजाओं की राणियों कुवरों और कुवरियों का हाल, स. डॉ. देवीलाल पालीवाल, पृ 22

9. राजराणा सुरताणसिंह (द्वितीय) (1656-1673 ई.)

1656 ई. में राजराणा रायसिंह का देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र सुरताणसिंह (सुलतानसिंह) सादडी में उसका उत्तराधिकारी हुआ। सादड़ी ठिकाने के सभी भायपों एवं शिकमी जागीरदारों आदि ने मिलकर उसको सादडी की गद्दी पर बिठाया और उदयपुर महाराणा को सूचित किया। महाराणा राजसिंह ने अपने ज्येष्ठ कुंवर सुलतानसिंह को सादड़ी भेजकर नये राजराणा सुरताणसिंह को उदयपुर बुलवाया। महाराणा ने सादडी की हवेली जाकर मातमपुर्सी की और दूसरे दिन राजराणा सुरताणसिंह की तलवारबंदी की रस्म पूरी की और रस्म के दौरान महाराणा ने उसको अपने बराबर की इज्जत बक्षी। उसके बाद राजराणा अपनी जागीर सादडी लौट गया।[1]

इससे पहिले 23 जुलाई, 1658 ई. को शाहजादा औरगजेब ने अपने पिता बादशाह शाहजहां को आगरा के किले में कैद करके स्वयं मुगल सल्तनत का बादशाह बन गया था। औरंगजेब द्वारा मुगल सत्ता हथियाने के बाद मुगल शासन की कई नीतियों में मौलिक परिवर्तन आने लगे, जिनके कारण मुगल सल्तनत और उसके अधीन देशी राज्यों प्रधानतः राजपूत एवं हिन्दू राज्यों के बीच सम्बन्ध बिगडने लगे और बादश्शाह अकबर द्वारा उत्पन्न किये गये पारस्परिक विश्वास एव वफादारी की भावनाओं में दरार पडने लगी। औरंगजेब अधिकाधिक उग्र, कट्टरवादी और संकीर्णतावादी शासक सिद्ध हुआ, जिसके कारण मुगल साम्राज्य की नींव ही हिल गई। औरगजेब की धार्मिक असहिष्णुता और उग्र साम्राज्यवादिता से पूर्ण नीतियों के कारण थोड़े काल बाद ही मेवाड के महाराणा राजसिंह और उसके बीच शत्रुता पैदा हो गई।

महाराणा द्वारा मेवाड़ के परगने वापस जीतने में सुरताण का भाग लेना

महाराणा राजसिंह प्रकृति से स्वाभिमानी, साहसी एव वीर शासक था। अपने पिता जगतसिंह की भांति वह भी अपने वश-गौरव की रक्षा को लेकर खिन्न रहता था। बादशाह शाहजहां ने जिस प्रकार सादुल्लाखां के सेनापतित्व में चित्तौडगढ़ पर सेना भेजकर गढ़ में तोड़ फोड की थी, उससे वह नाराज था। जब 1658 ई. में बादशाह शाहजहां के पुत्र उत्तराधिकार को लेकर आपस में लडने-मारने लगे, उस समय महाराणा राजसिंह ने अवसर देखकर शाहजहां द्वारा छीने गये परगनों पुर, मांडल, खैराबाद, मांडलगढ़, बदनोर,जहाजपुर, सावर, फूलिया, बनेडा, हुरड़ा, आदि को पुन· हस्तगत करने का इरादा किया।[2] उसने अपने सभी सरदारों को अपने-अपने ठिकानों से सैन्यदल लेकर उदयपुर बुलाया। महाराणा राजसिंह द्वारा तदर्थ भेजा गया पर्वाना

---

1 बड़ीसादड़ी ठिकाने के प्राचीन पत्र।

2 बादशाह शाहजहा ने महाराणा राजसिंह द्वारा चित्तौड़गढ़ के पुनर्निर्माण की चेष्टा करने तथा उसके द्वारा मुगल सेना में मेवाड़ की सेना तथा राजकुमार को भेजने में आनाकानी करने से रुष्ट होकर इन परगनों को पुन मुगल शासन के अन्तर्गत ले लिया था। (उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ 434)

मिलने पर राजराणा सुरताणसिंह ठिकाने की अश्वारोही सेना लेकर महाराणा के पास पहुँचा। अप्रेल, 1658 ई. में महाराणा अपनी सेना लेकर देबारी से वाहर निकला। सबसे पहिले उसने माडलगढ़ पर कब्जा किया, जिसको वादशाह ने किशनगढ़ के राजा रूपसिंह राठोड को दे रखा था। 2 मई, 1658 ई. को चित्तौड़गढ़ से रवाना होकर उसने क्रमशः दरीवा, मांडल, वनेड़ा, शाहपुरा, जहाजपुर, सावर, फूलिया, केकड़ी आदि को अपने अधीन करके दंड वसूल करते हुए मालपुरा जाकर ठहरा जहां कुछ दिन रहकर उसको लूटा। वहां से विपुल मात्रा में धन-राशि प्राप्त करके वह टोंक, सांभर, लालसोट और चाटसू से दंड वसूल करता हुआ उदयपुर लौटा। इस अभियान में सादड़ी कुंवर सुरताणसिंह ने महाराणा की सेना के साथ लड़ाईयों में अपनी वीरता और युद्ध-कौशल का परिचय दिया।[3]

महाराणा राजसिंह की कूटनीति

महाराणा राजसिंह ने इस अवसर बड़ी वुद्धिमतापूर्ण कूटनीति का सहारा लिया। मुगलों के गृह-युद्ध के दौरान शाहजादे औरंगजेब ने महाराणा राजसिह को उसका साथ देने के लिये आग्रह किया था और वादा किया था कि वह मुगल साम्राज्याधीन मेवाड़ के सभी परगने लौटा देगा। इसी दौरान महाराणा ने उन परगनों पर कब्जा कर लिया था। औरंगजेब की पेशकश को ध्यान में रखते हुए, 21 जून 1658 ई. को महाराणा द्वारा भेजा गया उसका ज्येष्ठ कुंवर सरदारसिंह आगरे जाकर औरंगजेब से मिला और गृह-युद्ध में विजय के लिये उसको वधाई दी। औरंगजेब ने इस पर 7 अगस्त, 1658 ई. को महाराणा राजसिह के नाम फर्मान भेजा, जिसके द्वारा महाराणा की प्रतिष्ठा में वढ़ोतरी करके उसका मंसव छः हजार जात और छः हजार सवार तथा एक हजार सवार दो अस्पा-तीन अस्पा मुकर्रर किया। इस फर्मान के साथ पांच लाख रुपये और हाथी आदि ईनाम के तौर पर भेजे। उसने मेवाड़ के परगनों के अतिरिक्त डूंगरपुर, वांसवाड़ा,ब्रसावर और गयासपुर भी महाराणा को वापस प्रदान किये, जो महाराणा जगतसिंह के समय अलग हो गये थे। इस पर महाराणा ने भी कुंवर सरदारसिंह को एक सैन्य दल लेकर औरंगजेब की सहायतार्थ भेज दिया। इस भांति महाराणा राजसिह ने वड़ी होशियारी दिखाकर मेवाड़ राज्य को अपनी पूर्व स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया।[4]

महाराणा का चारुमती से विवाह और सुरताण का सैन्यदल लेकर साथ जाना

औरंगजेब द्वारा पूरी तरह मुगल साम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लेने के वाद उसकी निरंकुशता सामने आने लगी। शीघ्र ही मेवाड़ के महाराणा के साथ उसके सम्बन्धों में दरार

---

3 प रणछोड़ भट्ट कृत राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग 7, श्लोक 31-45
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 537

4 प रणछोड़ भट्ट कृत राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग 8
वीरविनोद, भाग 2, ले श्यामलदास, पृ 424-433
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 538

आने लगी। 1660 ई. में वादशाह औरंगजेव ने किशनगढ़ के राजा मानसिंह की वहन और स्वर्गीय राजा रूपसिंह की वेटी चारूमती की सुन्दरता का हाल सुनकर उससे विवाह करना चाहा। चारुमती वैष्णव धर्म मानती थी और उसको मुसलमान वादशाह से विवाह करना मंजूर नही था। उसने तत्काल एक पत्र मेवाड़ के महाराणा राजसिंह को लिखकर उसकी रक्षा करने और उसके साथ विवाह करने हेतु आग्रह किया। महाराणा राजसिंह ने वादशाह औरंगजेव की मंशा की परवाह किये विना चारुमती को शरणागत मानकर फौरन ससैन्य किशनगढ़ पहुँचा और उससे विवाह करके उसको उदयपुर ले आया। उस समय सादड़ी का राजराणा सुरताणसिंह झाला अपना सैन्यदल लेकर महाराणा के साथ रहा। उसके अतिरिक्त उस समय महाराणा की सेना में राव सवलसिंह चौहान, रावत रघुनाथसिंह चूंडावत, रावत मोहकमसिंह शक्तावत, रावत मानसिंह सारंगदेवोत आदि मेवाड़ के प्रमुख सरदार मौजूद थे। महाराणा की इस स्वतंत्र एवं साहसपूर्ण विरोधी कार्यवाही से औरंगजेव वहुत नाराज हुआ और अपनी नाराजगी का पत्र महाराणा को लिख भेजा। उसने अपनी नाराजगी प्रकट करने के लिये देवलिया के महाराणा विरोधी रावत हरिसिंह को गयासपुर और वसावर के परगने मेवाड़ से अलग करके दे दिये। इतना ही नही उसने अगले वर्ष 1661 ई. में किशनगढ़ की दूसरी राजकुमारी (चारुमती की छोटी वहिन) के साथ अपने शाहजादे मुअज्जम की शादी करवा कर अपने प्रतिशोध की भावना प्रकट कर दी।[5] इस भांति मेवाड़ राज्य और मुगल सार्माजय के वीच शत्रुता के वीज अंकुरित हो गये।

महाराणा का वागड़ विजय करना और राजराणा सुरताण द्वारा देवलिया रावत की महाराणा से सुलह कराना—

औरंगजेव ने वांसवाड़ा, डूंगरपुर और देवलिया महाराणा राजसिंह के नाम लिख दिये थे, किन्तु इन राज्यों के राजाओं ने, जो कुछ वर्षों तक सीधे मुगल वादशाह के अधीन रहे थे, महाराणा की मातहती स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इस पर महाराणा ने 5 अप्रेल 1659 ई. को प्रधान भागचन्द की अध्यक्षता में एक सेना वागड़ की ओर रवाना की, जिसमें सादड़ी राजराणा सुरताणसिंह अपने सैन्य वल के साथ शरीक हुआ। उसके अलावा रावत रघुनाथसिंह चूडावत, रावत मोहकमसिंह शक्तावत, रावत मानसिंह सारंगदेवोत, राठोड़ जोधसिंह, रावत रूक्मांगद चौहान, माधवसिंह सिसोदिया, दलपतसिंह सोलकी आदि प्रधान सरदार अपनी अपनी सेना के साथ शरीक रहे।[6] वांसवाड़ा रावल समरसिंह ने महाराणा की सेना का सामना नहीं

---

5 वीरविनोद, भाग 2, ले श्यामलदास, पृ 690
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 541-542

6 प रणछोड़ भट्ट कृत, राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग 8
वीरविनोद, ले श्यामलदास, पृ 435

करके उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और दो लाख रुपया, दस गांव, देशदाण का अधिकार आदि महाराणा को समर्पित कर दिये।[7]

बांसवाड़ा को अधीन करने के वाद मेवाड़ की सेना ने देवलिया (प्रतापगढ़) और वसावर (मंदसौर) की ओर कूच किया। देवलिया का रावत हरिसिंह मेवाड़ की सेना का सामना किये विना भागकर वादशाह औरंगजेब के पास चला गया। किन्तु रावत हरिसिंह की माता ने अपने पौत्र प्रतापसिंह को पांच हजार रुपया जुर्माना एवं एक हथिनि देकर महाराणा के पास भेजा। उधर रावत हरिसिंह भी वादशाह औरंगजेब से किसी भी प्रकार की सहायता नहीं मिलने के कारण निराश होकर वापस लौटा। उस समय उसने सादड़ी राजराणा सुरताणसिंह की शरण ली और महाराणा से उसकी सुलह कराने हेतु राजराणा से आग्रह किया। राजराणा सुरताणसिंह ने वेदला राव सवलसिंह चौहान, सलूंबर रावत रघुनाथसिंह चूंडावत और भीडर महाराज मोहकमसिंह शक्तावत के साथ सलाह करके महाराणा राजसिंह के साथ देवलिया रावत की भेंट करवाकर सुलह करवा दी। रावत ने दंड स्वरूप पचास हजार रुपये महाराणा को नज्र किये। इसी भांति सादड़ी राजराणा सुरताणसिंह आदि सरदारों के प्रयासों के फलस्वरूप डूंगरपुर के रावल गिरधर ने भी महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली।[8]

मेवल के मीणों को दबाने में सुरताण द्वारा सहायता

1662 ई. में मेवाड़ के पहाडी इलाके की वारापाल, नठारा, पडूना, वीलक, सगतड़ी, सराड़ा, धन का वाड़ा आदि पालों को भीलों ने राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। वे मेवाड़ की प्रजा को लूटने लगे और राज्य कर्मचारियों को सताने लगे। इस पर महाराणा राजसिंह ने प्रधान फतहचंद को एक सेना देकर पहाड़ी भाग में भीलों को दवाने हेतु भेजा। उसमें आसपास के सभी जागीरदारों के सैन्यदल शरीक हुए। तदर्थ महाराणा का पर्वाना सादड़ी राजराणा सुरताण सिंह को मिला। राजराणा ने अपने एक सरदार की मातहती में ठिकाने के सवार दल को मेवाड़

---

7. वही।
बेड़वास गांव की प्रशस्ति
बासवाड़ा राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 94-95

8 (क) प रणछोड़ कृत राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग 8
"झालो ह्यत्सुलतानाख्य चोहाण तं महाबलं।
राव सबलसिंहाख्य रघुनाथाख्य रावत ॥12॥
चोडावतं मुहकमसिंह शक्तावतोत्तम।
एतान्पुरो गमान्कृत्वा ऐतेषा बाहुमाश्रयन् ॥3॥
स रावतो हरिसिंहो ययौ देवलियापुरात्।
आगत्य राजसिंहस्य राजेन्द्रस्य पदेऽपतत् ॥14॥
रूप्य मुद्रा सु पचाशत्सहस्राणि न्यवेदयत्।
मन रावत नामान करिण करिणी मपि ॥15॥"
(ख) प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, ले गौ ही. ओझा, पृ 155-157
(ग) वीरविनोद, भाग 2, ले. श्यामलदास, पृ 436

की सेना में शरीक होने के लिये भेजा। सेना ने उक्त पालों के लोगों को मारा और उनका माल-असवाव, जानवर वगैरा लूट लिये। इस पर भील लोग शान्त हो गये।[9]

1662 ई. के जनवरी माह में महाराणा राजसिंह द्वारा सुप्रसिद्ध झील राजसमुद्र का निर्माण कार्य शुरु किया गया, जिसका कार्य चौदह वर्षों में पूरा हुआ। फरवरी, 1676 ई. में उसकी प्रतिष्ठा की गई। सादडी राजराणा सुरताणसिंह ने इस विशाल झील के निर्माण-कार्य में महाराणा द्वारा आदेशित उत्तरदायित्वों को पूर्ण किया।[10]

महाराणा राजसिंह द्वारा उदयपुर में नाईयों की वाड़ी में राजराणा को हवाले की भूमि वक्षी गई, ऐसा उल्लेख पाया जाता है। जो कामदार सूरजमल कोठारी, रतन दाड़ीदार, वालकिशन धायभाई, रोड़ीवाई वडारण, झमकू एवं गुलाव, मेहता मांडू, धावाई देना, डोडीवान किशन आदि के हस्ते रही।[11]

1673 ई में राजराणा सुरताण सिंह दूसरे का सादड़ी में देहान्त हो गया।[12] सुरताणसिंह भी अपने पिता रायसिंह और पितामह हरिदास की भांति वीर, रण-कुशल, वुद्धिमान, राजनीति

---

9 वड़ीसादड़ी ठिकाने के प्राचीन पत्र।

10 वड़ीसादड़ी ठिकाने के प्राचीन पत्र।
प रणछोड भट्ट कृत राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग 8

11 वीरविनोद, भाग 2, ले श्यामलदास, पृ 862
वड़ीसादड़ी ठिकाने के प्राचीनपत्र।

12 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड में राजराणा सुरताणसिंह का देहान्त 1680 ई में होना तथा वादशाह औरगजेव की सेना के विरुद्ध लड़ते हुए मारा जाना लिखा है। वड़वों की पोथियों में भी उसकी मृत्यु का यही वर्ष दिया गया है। किन्तु वड़ीसादड़ी ठिकाने के प्राचीन अभिलेखों से इसकी पुष्टि नही होती। 1669 ई की महाराणा राजसिंह द्वारा राजराणा सुरताणसिंह को भेजे गये पर्वाने की प्रति मिलती है, जवकि 1674 एव 1676 ई के महाराणा राजसिंह द्वारा राजराणा चन्द्रसेन को भेजे गये पर्वानों की प्रतिलिपिया उपलब्ध हैं। एक अन्य अभिलेख में सुरताणसिंह का 1670 ई में दिवगत होना पाया जाता है। महाराणा द्वारा सादड़ी राजराणा को भेजे गये पर्वानों आदि में 'रणा' उपाधि से सम्वोधित किया है। महाराणा के पत्रों में प्रारभ में 'राज' और वाद में 'रणा' उपाधि से सम्वोधित करना पाया जाता है। सादड़ी के झाला शासक स्वय को 'राजराणा' लिखते रहे। झाला-भूषण-मार्तण्ड में 1679-80 ई में औरगजेव के विरुद्ध लड़ाई में राजराणा सुरताणसिंह का भाग लेना लिखा है, जो सही नही है। राजप्रशस्ति महाकाव्य में स्पष्टत उसके उत्तराधिकारी राजराणा चन्द्रसेन द्वारा औरगजेव के विरुद्ध लड़ाईयों में भाग लेना लिखा है। (सर्ग 13, श्लोक 39) अन्य समकालीन ग्रथ मानकवि कृत राजविलास में भी चन्द्रसेन के नाम का उल्लेख है—ओझा, पृ 557

महाराणा द्वारा राजराणा सुरताणसिंह को भेजे गये पर्वाने :—

श्री गणेशप्रासादातु   श्री रामोजयति   श्री एकलिंगप्रसादातु
सही   भाला

स्वस्ति श्री उदेपुर सुथाने महाराजिधिराज महाराणा श्री राजसीगजी आदेसातु सादड़ी सुथाने रणा सुरताण कस्य सु प्रसाद लिख्यते यथा अटारा समाचार भला छे आपणा समाचार कहावज्यो अप्र लवाजमा की चोलवणी जी सु दफतर देखाया वो थोका वड़ावा दरवार की एवजी कर पाया सो वारे अटा मुजवी है आज पछे चोलण वेसी नहीं परवानगी पचोली किसनदास सवत् 1726 वरसे आसोज सुदी 2 शुक्रवार (1669 ई)

पटु और व्यवहार-कुशल व्यक्ति रहा। उसने मेवाड़ दरबार में अपनी अव्वल स्थिति कायम रखी और वह महाराणा जगतसिंह और महाराणा राजसिह का विश्वस्त सामंत और सलाहकार पार्षद बना रहा। उसने मेवाड़ की सभी सामरिक कार्यवाहियों में भाग लिया और वागड के राजाओं प्रधानतः देवलिया और डूंगरपुर के शासकों को समझाकर महाराणा की अधीनता में लाने में सफलता प्राप्त की। जब महाराणा चारुमती से विवाह करने किशनगढ़ गया और महाराणा ने मेवाड़ के पर्गनों की पुनर्विजय की और मालपुरे को लूटा उन सारे अभियानों मे वह महाराणा के साथ था।

विवाह और संतान

राजराणा सुरताणसिंह का विवाह बेदला, ईडर, आमेट, भीडर, पारसोली मालपुरा, सिरोही आदि ठिकानों में होना मिलता है।

उसका एक विवाह बेदला राव केसरीसिंह चौहान की पुत्री रूपकंवर के साथ हुआ, जिसकी कोख से चन्द्रसेन का जन्म हुआ।

उसका दूसरा विवाह ईडर राव मानसिंह राठोड़ की बेटी बदनकंवर से हुआ, जिससे कानसिंह हुआ।

तीसरा विवाह आमेट के रावत मानसिंह चूंडावत की पुत्री पदमकंवर के साथ हुआ, जिसकी कोख से पुत्र इन्द्रसिंह और तीन पुत्रियां बदनकंवर, पूरनकंवर और मीयाकंवर हुए।

चौथा विवाह भींडर के महाराज राजसिंह की पुत्री पेपकंवर के साथ हुआ, जिससे कुंवर कुशलसिंह और महासिंह हुए।

पांचवा विवाह पारसोली के पृथ्वीसिंह चौहान की पुत्री केसरकंवर के साथ और छठा विवाह मालपुरे के लुणावत सार्दूलसिंह की पुत्री सरूपकंवर के साथ हुआ।

सातवां विवाह सिरोही राव उदेसिंह देवड़ा की पुत्री दौलतकंवर के साथ हुआ, जिससे कुंवर बाघसिंह और पुत्री फूलकंवर हुए।

---

(2)

श्री गणेश प्रासादातु — श्री रामोजयति — श्री एकलिंग प्रासादातु

सहि — झाला

स्वस्ति श्री उदेपुर सुथाने महाराजाधिराज महाराणा श्री राजसीगजी आदेसातु सादड़ी सुथाने रणा सुरताण कस्य सु प्रसाद लिख्यते यथा अठारा समाचार भला छे आपणा समाचार कहावज्यो

1 अप्र. थारो कागज आयो समाचार मालुम हुवा खडलाकड़ 21 रुपया मोकल्या सो भडार र भरोती मोकली है सवत् 1726 वरसे से आसोज सुदी 1, गुरुवार

इस भांति राजराणा सुरताणसिंह के निम्नलिखित संतानें हुई—

1. कुवर चन्द्रसेन, जो सादड़ी में राजराणा हुआ।
2. कुंवर कानसिंह, जिसको माचेड़ी जागीर में मिली।
3. कुंवर महासिंह, जिसको पालाखेडी जागीर में मिली।
4. कुंवर इन्द्रसिंह
5. कुंवर कुशलसिंह
6. कुंवर वाघसिंह
7. कुंवरी फूलकंवर, जिसका विवाह महाराणा जयसिंह से हुआ।[13]
8. कुंवरी वदनकंवर,
9. कुंवरी पूरनकंवर
10. कुंवरी मीया कंवर[14]

---

13 वड़वा देवीदान लिखित मेवाड़ के राजाओं, राणियों, कुवरों एव कुंवरियों का हाल, सं डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 23

14 राजराणा सुरताणसिंह के विवाहों से सम्बन्धित वड़वों की पोथियों में दी गई सूचनाए एक दूसरे से मेल नहीं खाती।

10. राजराणा चन्द्रसेन (1673-1703 ई.)

राजराणा सुरताणसिंह दूसरे के दिवंगत होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रसेन वि.सं. 1730 तदनुसार 1673 ई. में सादड़ी में उसका उत्तराधिकारी हुआ।[1] सादड़ी में उसके बान्धवों, शिकमी जागीरदारों आदि ने विधिवत उसको पाग बंधवा कर और तिलक करके सादड़ी की गद्दी पर विठाया। उदयपुर से महाराणा जयसिंह ने राजकुमार अमरसिंह को सादड़ी भेजकर राजराणा चन्द्रसेन को उदयपुर बुलवाया और हवेली जाकर मातमपुर्सी की। उसके बाद चन्द्रसेन को महलों में बुलाकर उसकी तलवारबन्दी की रस्म पूरी की तथा ठिकाने पर भेजे गये खालसा की उठन्री के आदेश किये। उस समय प्रधान महता मानसिंह ने ठिकाने से कैद-खालसा उठंत्री के नजराने की राशि वसूल कर ली, जिस पर राजराणा की ओर से एतराज किया गया।[2]

जांच के बाद राजराणा का एतराज सही पाया गया और आगे से कैद ठिकानेदार के अधिकार प्राप्त करने का नजराणा की राशि वसूल नहीं की जावेगी, इस आशय का पर्वाना महाराणा जयसिंह द्वारा राजराणा चन्द्रसेन को भेजा गया।[3]

---

1 बड़ी सादड़ी ठिकाने के प्राचीन पत्र

जैसी कि ऊपर लिखा गया है श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड में राजराणा सुरताण सिंह का 1680 ई में निधन होना वर्णित है। ग्रथ में लिखा है कि जब बादशाह औरगजेब की सेना 1679 ई के अत में मेवाड़ पर चढ़ आई, उस समय राजराणा सुरताणसिंह सादड़ी से अपना सैन्यदल लेकर महाराणा की सेना में शरीक हुआ। इस पुस्तक में उल्लेख है कि जब देसूरी के मार्ग में बादशाही सेनापति दिलेरखा आगे बढ़ा तो गोपीनाथ राठौड़ और विक्रमसिंह सोलंकी ने वीरतापूर्वक लड़ते हुए बादशाही सेना को भारी शिकस्त दी। औरंगजेब रणक्षेत्र से अपमानित होकर भागा (?) इस लड़ाई में राजराणा सुरताणसिंह काम आया। (मार्तण्ड, पृ 57-58)

किन्तु उपरोक्त युद्ध में औरगजेब को उपस्थित बताना सही नहीं है। इस युद्ध तक राजराणा सुरताण का जीवित होना नहीं पाया जाता। जब फरवरी 1679 ई. में महाराणा राजसिंह द्वारा राजकुमार जयसिंह को बादशाह के दरबार में भेजा गया, उस समय उसने राजराणा चन्द्रसेन झाला को उसके साथ भेजा था। जब औरंगजेब ने सितंबर 1679 ई में मेवाड़ पर पहली बार सेना भेजी, उस समय महाराणा ने सभी सरदारों आदि को बुलाकर सलाह ली, उसमें सादड़ी के राजराणा झाला चन्द्रसेन का मौजूद होने का उल्लेख मिलता है। आगे कुंवर जयसिंह के साथ रहकर राजराणा चन्द्रसेन द्वारा युद्ध करना लिखा मिलता है। ठिकाने के प्राचीन पत्रों में भी सुरताण का युद्ध में मारा जाना लिखा हुआ नहीं पाया जाता। वीरविनोद (श्यामलदास) और उदयपुर राज्य का इतिहास (ओझा) ग्रथों में इस बात का उल्लेख नहीं है।

2 बड़ीसादड़ी ठिकाने के प्राचीन पत्र।

3 राजराणा चन्द्रसेन ने ठिकाने से कैदखालसा के नजराने की राशि वसूल करने को अनुचित बताया। इस पर मेवाड़ दरबार द्वारा जाच की गई। जांच द्वारा राजराणा का एतराज सही पाया गया, जो निम्नलिखित पर्वाने से सिद्ध होता है—

श्री गणेश प्रासादातु श्री रामो जयति श्री एकलिंग प्रासादातु

स्वस्ति श्री उदयपुर सुथाने महाराजाधिराज महाराणा श्री जयसींगजी आदेसातु सादड़ी सुथाने रणा चदरसेन कस्य सु प्रसाद लिख्यते अप्र. आप टीले बेठा कैद का टका हुआ इससे पहले कभी नहीं हुआ मानसींग वगैरा समझाईश करावी थी आगे कैद होगी नही। परवानगी पचोली कोजू वि स 1749 माह सुदी 11, शुक्रवार।

महाराणा राजसिंह की स्वातंत्र्य-चेष्टा

चन्द्रसेन अपने कुंवरपदे काल में महाराणा राजसिंह के वंशगौरव एवं मेवाड़ की स्वतंत्रता की पुर्नप्राप्ति तथा उसकी शक्ति को पुनर्स्थापित करने के प्रयासों में सक्रिय भाग ले चुका था। महाराणा बादशाह औरगजेब की धार्मिक कट्टरता और निरंकुशतावादी नीतियों के प्रति प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष विरोध प्रकट कर रहा था। उसने 1660 ई. में किशनगढ़ की राठोड़ राजकुमारी से विवाह करके बादशाह को स्पष्ट चुनौती दे दी थी। उसने डूंगरपुर, देवलिया, वासवाडा आदि के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करके बादशाह को नाराज किया था। जब बादशाह ने अप्रेल 1679 ई. में हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया तो महाराणा ने उसको पत्र लिखकर उसको खुले रूप से ललकारा था। इसके अलावा मुगल अधिकारियों के अत्याचार से बचने के लिये मथुरा से लाई गई वैष्णव मूर्तियों को भी मेवाड़ में शरण एव सुरक्षा दी गई थी।[4] चित्तौड़गढ के पुनर्निर्माण की कार्यवाही करके महाराणा राजसिह पहिले ही मेवाड़ की चिरपरिचित स्वातंत्र्य-भावना का प्रदर्शन कर चुका था। इधर 1615 ई. की मेवाड-मुगल-संधि के मुताविक मेवाड़ के राजकुमार को मुगल दरबार में भिजवाने और 1000 सवारों का दल मुगल-सेना में भेजने की कार्यवाही में भी महाराणा की ओर से ढिलाई वर्ती जा रही थी।

चन्द्रसेन का राजकुमार जयसिंह के साथ बादशाह औरंगजेब के पास जाना

महाराणा की इन कार्यवाहियों से नाराज होकर बादशाह महाराणा के विरुद्ध कदम उठाने हेतु ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की जियारत करने के बहाने सेना लेकर 20 फरवरी, 1679 ई. को अजमेर पहुँचा। बादशाह के अजमेर की ओर आने की खबर सुनकर महाराणा ने अपना वकील बादशाह के पास भेज दिया। इस पर बादशाह ने महाराणा को फर्मान भेज कर अपने कुंवर को उसके दरबार में भेजने हेतु लिखा। इस पर महाराणा ने बादशाह को सूचित किया कि वह अपने दरबार के किसी विश्वस्त व्यक्ति को कुंवर को लिवाने हेतु भिजावे, जिसके साथ कुंवर जयसिंह को भिजवा दिया जावेगा। इस पर बादशाह ने बक्षी मोहम्मद नईम को फर्मान देकर 27 फरवरी, 1679 ई. को कुवर जयसिंह को मुगल दरबार में लाने हेतु उदयपुर भेजा। बादशाह

---

4 वल्लभ सम्प्रदाय की श्री द्वारिकाधीश की वैष्णव मूर्ति सवत् 1704 (1646 ई) में महाराणा जगतसिंह के काल में मेवाड़ में सादड़ी ठिकाने में लाई गई, जिसको महाराणा ने पूर्ण सुरक्षा प्रदान करके काकरोली गाव के पास स्थापित करवाकर उसकी सेवार्थ गाव जागीर में प्रदान किये थे। बाद में महाराणा राजसिंह द्वारा राजसमद झील की पाल पर मदिर और महल बनवाये गये।

श्रीनाथ जी की वैष्णव मूर्ति महाराजा राजसिंह के काल में सवत् 1728 (1672 ई) में मेवाड में लाई गई, जिसको महाराणा ने पूर्ण सुरक्षा प्रदान करके सिहाड़ गाव में स्थापित करवाई थी उसकी सेवा हेतु महाराणा ने जागीर में गाव प्रदान किये थे।

ओझाजी ने श्री द्वारिकाधीश की मूर्ति को भी महाराणा राजसिंह के काल में लाना लिखा है (उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ 547)। किन्तु बड़ी सादड़ी ठिकाने की प्राचीन पत्रावली से उसका वि. सं. 1704 में बड़ीसादड़ी लाकर उदयपुर ले जाना लिखा मिलता है।

का फर्मान प्राप्त होने पर महाराणा ने कुंवर जयसिह को सादड़ी राजराणा चन्द्रसेन और पुरोहित गरीबदास के साथ वादशाह के पास भेजा। कुंवर जयसिंह के आ जाने से वादशाह प्रसन्न और शान्त हो गया। उसने कुंवर की वड़ी आवभगत की और उसको खिलअत, मोतियों की माला, जरीन के वस्त्र, हाथी और घोड़े आदि दिये। उसके साथ सादड़ी के झाला चन्द्रसेन और पुरोहित गरीवदास को जरीन के वस्त्र और घोड़े आदि उपहार स्वरूप प्रदान किये।[5]

महाराणा द्वारा अजीतसिंह को शरण देना : औरंगजेब की मेवाड़ पर चढ़ाई

यद्यपि महाराणा राजसिंह द्वारा कुंवर जयसिह को औरंगजेव के पास भेजने से तात्कालिक शांति हो गई थी, किन्तु दोनों पक्षों के मध्य नीतियों और व्यवहार को लेकर कटुता और तनावपूर्ण स्थिति वनी रही। इसी वीच उसी वर्ष एक अन्य घटना के कारण दोनों के बीच यह अस्थायी शांति समाप्त हो गई और मेवाड़ एवं मुगल साम्राज्य के बीच लडाई शुरू हो गई। जव 1679 ई. के मध्य में दुर्गादास राठोड़ मारवाड़ के महाराजा जसवंतसिह के पुत्र एवं उसके उत्तराधिकारी वालक अजीतसिंह को वादशाह औरंगजेव से वचा कर मेवाड़ में शरण एवं सुरक्षा प्राप्त करने हेतु महाराणा राजसिह के पास लेकर आया तो महाराणा ने उसको शरण एवं सहायता प्रदान करके वादशाह की शत्रुता मोल ले ली। महाराणा राजसिंह ने इस भांति मुगल साम्राज्य विरोधी सिसोदिया एवं राठोड़ शक्तियों का संयुक्त मोर्चा कायम कर दिया।वादशाह औरंगजेब को जव इस वात की खवर मिली तो उसने महाराणा को फर्मान भेज कर अजीतसिंह को उसको सुपुर्द करने के आदेश भेजे। किन्तु महाराणा ने शरणागत को सुरक्षा देने की राजपूत रीति के नाम पर इन्कार कर दिया। इस पर औरंगजेव ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। वादशाह ने सितंवर 1679 ई. में दिल्ली से ससैन्य रवाना होकर दिसंबर माह में मेवाड़ में प्रवेश किया।[6]

चन्द्रसेन का सेना लेकर उदयपुर पहुँचना

औरंगजेव के कूच के समाचार सुनकर महाराणा राजसिंह ने पर्वाने भेजकर सभी बड़े-छोटे सरदारों एवं भील मुखियों को तत्काल ससैन्य उदयपुर पहुँचने के लिये बुलाया। आदेश पहुँचते

---

5 रणछोड़ भट्ट कृत राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग 22, श्लोक 2-7
"श्री राजसिंहस्याज्ञातो जयसिंहाभिधो वली।
महाराज कुमारोय अजमेरो समागत ॥2॥
औरगजेव द्रष्टु स दिल्लीपति ययौ।
पश्चाज्जय कुमारोय ययौ सेना समावृत ॥3॥
दिल्लीव क्रोश युग्मस्थे अर्वाक् शिविर उत्तमे।
दिल्लीश्वर ददर्शाय सोस्यादरमथाक रोत् ॥4॥
मुक्तामाला उरोभूषा अस्मै हेमांबराण्यदात्।
महागजेन्द्र भूषाक्त तादृक्तु गतुरगमान् ॥5॥
झालाख्य चद्रसेनाय पुरोहित वराय चे।
गरीबदास सत्राम्ने हैमवासासि वा हयान् ॥6॥"

6 वीरविनोद, भाग 2, ले श्यामलदास, पृ 463

ही राजराणा चन्द्रसेन फौरन सादड़ी से अपना सैन्यवल लेकर महाराणा के पास पहुँचा। महाराणा ने सभी सरदारों को एकत्र करके मुगल सेना का मुकावला करने की रणनीति पर विचार किया। महाराणा द्वारा तदर्थ आयोजित बैठक में सादड़ी राजराणा चन्द्रसेन ने भाग लिया। परिषद वैठक में भाग लेने वालों में राजकुमार जयसिंह एवं भीमसिंह, डूंगरपुर रावल यशकर्ण (जसवंतसिंह) राणावत भावसिंह, महाराज मनोहरसिंह, महाराज दलसिंह, अरिसिंह, राव सवलसिंह चौहान, रावत केसरीसिंह, झाला जैतसिंह, पंवार वेरिसाल, रावत महासिंह, रावत रतनसिंह, राठोड़ सांवलदास, राठोड़ राव दुर्गादास, राठोड़ सोनिंग, रावत रूक्मांगद, झाला जसवंत, राठोड़ गोपीनाथ (घाणेराव) मंत्री दयालदास, राव केसरीसिंह चौहान, खीची रामसिंह, डोडिया महासिंह महेचा, अमरसिंह और अबूमलिक अजीज आदि प्रधान सरदार थे। सभी ने महाराणा प्रताप की छापामार युद्ध-प्रणाली का अनुसरण करके बादशाह औरंगजेब की सेना से पहाडी भाग में लोहा लेने का निर्णय लिया। उदयपुर, गोगूंदा, चित्तौड़ आदि प्रधान नगरों एवं कस्वों को खाली करवा कर प्रजाजनों को पहाड़ी भाग में बुला लिया गया। महाराणा ने राठोड़ राजकुमार को भोमट के घने भाग में सुरक्षित रख दिया और दस-दस हजार की संख्या में भीलों के समूह वनाकर राजपूत सैनिकों के साथ पहाड़ी भाग के सभी नाकों, घाटों और मार्गों पर शत्रु सेना को रोकने, उन पर आक्रमण करने और लूटपाट करने आदि के लिये तैनात कर दिया।[7]

मुगल सेना की पराजय : चन्द्रसेन का वीरता-प्रदर्शन—

बादशाह तोपखाना सहित अपनी सेना लेकर देवारी पहुँचा। वहाँ से उसने मुगल सैन्य दलों को पहाड़ी भाग में चारों ओर भेजा। उन्होंने उदयपुर में भारी लूटपाट की किन्तु मेवाड के राजपूत एवं भील सैनिकों ने उनकी सर्वत्र बड़ी दुर्दशा की और मुगल सेना को भारी असफलता हाथ लगी। राजपूतों ने मुगल सेना की रसद लूट ली तथा अहमदनगर, बड़नगर तक जाकर दंड वसूल किये। उधर मारवाड़ में राठोड़ सैनिक मुगल विरोधी कार्यवाहियां कर रहे थे। निराश होकर वादशाह अजमेर लौट गया। उसने अपने पुत्रों शाहजादे अकवर, आजम और मुअज्जम को देबारी, हल्दीघाटी तथा देसूरी मार्गों की ओर से सैनिक कार्यवाहियां करने हेतु नियुक्त किया किन्तु मुगल सेनाओं को सर्वत्र ,असफलता देखनी पड़ी।[8]

जून माह, 1680 ई. में जब शाहजादा अकवर चित्तौड़ की ओर तैनात था, कुंवर जयसिंह ने सादड़ी राजराणा चन्द्रसेन तथा कई अन्य सरदारों सवलसिंह चौहान, रतनसिंह चूंडावत, गोपीनाथ राठोड़, जसवंतसिंह झाला, जैतसिंह झाला, रावत सक्मांद, रावत केसरीसिंह आदि को साथ लेकर शाहजादे अकबर की मुगल सेना पर भीषण आक्रमण किया। शाहजदा बुरी तरह

---

7. राज विलास, विलास 10, पद्य 54-67
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही. ओझा, पृ 568-569
घाणेराव के मेड़तिया राठौड़, ले डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 60

8 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ. ही ओझा, पृ 559

परास्त होकर अजमेर की ओर भाग गया। इस युद्ध में सादड़ी के चन्द्रसेन झाला ने वड़ी वीरता दिखाई, उसको कई घाव लगे। राजपूत सैनिकों को मुगल सेना के 50 घोड़े, हाथी, निशान, नक्कारा तथा भारी मात्रा में रसद और शस्त्र हाथ लगे।[9] देसूरी के घाटे में भी कुंवर भीमसिंह, घाणेराव के ठाकुर गोपीनाथ एवं सोलंकी विक्रम के हाथों के साथ तहव्वखां की सेना की वड़ी दुर्गति हुई।[10] वादशाह सभी प्रकार से निराश हुआ और मेवाड़ के साथ लड़ाई जारी रखना निरर्थक मान कर उसने सुलह की वातचीत शुरू की।

बादशाह द्वारा सुलह के प्रयास

उसी समय 23 अक्टूवर, 1680 ई. को महाराणा राजसिंह का देहान्त हो गया। उसके उत्तराधिकारी महाराणा जयसिंह ने आगामी चार माह तक लड़ाई जारी रखी। इसी समय राठोड़ दुर्गादास के प्रयत्नों तथा मेवाड़ एवं मारवाड़ की राजपूत सेनाओं के सहयोग के कारण शाहजादे अकवर ने अपने पिता औरंगजेव के खिलाफ विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया और स्वयं को वादशाह घोषित कर दिया। किन्तु औरंगजेव की चालाकी, कपटाचरण और धूर्तता के कारण अकवर और राजपूतों के वीच फूट पड़ गई और दुर्गादास की सारी योजना विफल हो गई।[11] राजपूतों के इस प्रयास से औरंगजेव घवरा गया। उधर दक्षिण में मराठे शक्तिशाली होकर मुगल सामाज्य के लिये खतरा वन रहे थे। औरंगजेव ने अपने हठ और अहंकार के कारण अनावश्यक ही मेवाड़ से शत्रुता मोल ली थी। उसने अपनी नीति में परिवर्तन करके और शाहजादे अकवर को दिये गये मेवाड़ के सहयोग को भुलाकर उसने पुनः मेवाड़ के नये महाराणा

---

9 राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग 22, श्लोक 30-40
"राणा महीमहेंद्रस्य आज्ञया विज्ञ उत्सुक.।
महाराजकुमार श्री जयसिंहेति नामक ॥30॥
झालाख्य चद्रसेनेन चौहानेन चमूभृता
तथा सवलसिंहेव रावेण रणसूरिणा ॥31॥
केसरीसिंह नाम्ना तद् भ्राता रावेण शोभित.।
राठोड़ गोपीनाथेन अरिसिंहस्य सूनुना ॥32॥
भगवंतादिसिंहेन धन्य राजन्यरात्रिभि·।
सहित· स्वाहितजय कर्तुं हित समीहिते ॥33॥
त्रयोदश सहस्राणि अश्ववारवरावले·।
सद्विशति सहस्राणि पदातीना महात्मना ॥34॥
सगे गृहीत्वा प्रययौ चित्रकूट तटीं प्रति।
ततस्ते ठक्कुरा रात्रौ संगरं चक्रुरुन्मदा ॥35॥
सहस्र सख्यान्दिल्ली शलोकान् जघ्नुर्गज त्रय।
ये नागतास्तांस्तुरगान्नि सृतस्तदकव्वर ॥36॥

10 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले. गौ. ही. ओझा, पृ 586
घाणेराव के मेड़तिया राठोड़, ले डॉ. देवीलाल पालीवाल, पृ 61

11 औरंगजेब, ले. यदुनाथ सरकार, जि. 3, पृ 407-17

जयसिह को सुलह के संकेत दिये।[12] महाराणा जयसिह ने भी शाहजादे अकबर के विफल विद्रोह के बाद बदली हुई स्थितियों को देखकर बादशाह के साथ शाति-सधि कर लेना उचित समझा।[13]

चन्द्रसेन का संधिवार्ता में भाग लेना

बातचीत के लिये दोनों पक्षों ने राजसमुद्र पर मिलना तय किया। शाहजादा आजम वहीं मौजूद था। महाराणा जयसिंह सादडी राजराणा चन्द्रसेन, बेदला राव सबलसिंह, रावत रतनसिंह, पवार राव बैरिसाल तथा अन्य सरदारों को साथ लेकर राजनगर पहुँचा। उसने राजनगर कस्बे की देखरेख एव रक्षा का दायित्व राजराणा चन्द्रसेन झाला के सुपुर्द किया। चन्द्रसेन ने अपने विश्वस्त लोगो को उस कार्य के लिये नियुक्त किया और राजसमुद्र झील की पाल पर शाहजादे आजम के साथ हुई बातचीत में वह महाराणा जयसिह के साथ शामिल रहा।[14] समकालीन कवि ने रणछोड भट्ट कृत राजप्रशस्ति संस्कृत महाकाव्य (शिलालेख) में वार्ता के समय का दिलचस्प वर्णन किया है। मुलाकात के समय मुगल सेनापति दलेलखां (दिलेर खां) ने शाहजादे आजम को मेवाड के सरदारो का परिचय देते हुए कहा—

"सुनिये यह झाला वीरशिरोमणि झाला राणा चन्द्रसेन है, यह राव सबलसिंह है, इसका नाम रावत रतनसिह है, ये रणचड चूंडावत और शक्तिमान शक्तावत हैं, ये परमार और राठौड़ है, ये रणकेसरी राणावत है।[15]

24 जून को राजसमुद्र की पाल पर शाहजादे की ओर से मुगल सेनापति दिलेरखां, हसनअलीखां, राठोड़ रामसिह और हाड़ा किशोरसिंह आदि ने महाराणा जयसिंह और मेवाड़ के सरदारों का स्वागत किया। इस स्थान पर शाहजादे आजम और महाराणा जयसिंह के बीच सम्पन्न हुई सधि की शर्तों के अनुसार महाराणा ने राठोड़ों को सहायता देना बन्द करने का वचन दिया। बादशाह की ओर से मेवाड़ से सारा दखल उठाना मंजूर किया गया। महाराणा ने जजिया कर माफ करने की एवज में बादशाह को पुर, मांडल और बदनोर के परगने देना

---

12 औरगजेबनामा, ले मुशी देवीप्रसाद, भाग 2, पृ 109

13 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 586

14 मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, ले डॉ गोपीनाथ शर्मा, पृ 127

15 राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग 33, श्लोक 57-62
दलेलखा तदोवाच सुलतान श्रृणु प्रभो।
अय वीरश्चद्रसेनो राना झाला शिरोमणि ॥57॥
राव सबलसिंहोय रत्नसीनाम रावत.।
चोड़ावत रणे चडा शक्ता शक्तावतास्तथा ॥58॥
परमारश्च राठोड़ा स्तथा राणावतोत्तमा।
रणे सिंहा पर्वतेषु मार्गद दुरुत्तमा ॥59॥
(ध्यातव्य श्लोक 57 मे चन्द्रसेन के साथ 'राना' उपाधि लिखी गई है।)

मंजूर किया, किन्तु उसकी एवज में महाराणा की एक हजार सवारों की नौकरी की पहिले की संधि की शर्त माफ की गई। एक माह वाद ही 27 जुलाई को इस संधि की शर्तों में परिवर्तन करके शाहजादे आजम ने उक्त परवाने वापस महाराणा को लौटा दिये और मेवाड़ की ओर से 1000 सवार मुगल सेना में भेजने की शर्त कायम रखी गई तथा जजिया माफ करने के एवज में महाराणा द्वारा एक लाख रुपया सालाना मुगल दरवार को भेजने की शर्त का फर्मान वादशाह द्वारा जारी किया गया।[16]

सिरोही पर आक्रमण के समय सादड़ी कुंवर का मारा जाना

1683 ई. में सिरोही के राव वेरीसाल ने मेवाड़ के महाराणा जयसिंह के प्रति अवज्ञा का रुख अपना लिया और महाराणा की आज्ञा मानना वंद कर दिया। इस पर महाराणा ने सिरोही पर सेना भेजी, जिसमें अपने सैनिक लेकर शामिल होने के लिये महाराणा ने सादड़ी राजराणा को पर्वाना भेजा।[17] उम समय राजराणा चन्द्रसेन अस्वस्थ था, अतएव उसने अपने पुत्र सिंहा को सादड़ी का सैन्यदल लेकर भेजा। उस समय सिंहा का विवाह होने वाला था। किन्तु सिंहा ने राजधर्म का पालन करते हुए सिरोही की ओर प्रस्थान किया। सिरोही और मेवाड़ की सेनाओं के मध्य लड़ाई हुई, जिसमें सिरोही राव की बुरी हार हुई और वह भाग कर पहाड़ों में चला गया। वाद में उसने पुनः महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली। किन्तु इस लड़ाई में सादड़ी कुंवर सिंहा मारा गया। अपने ज्येष्ठ पुत्र के मारे जाने से राजराणा चन्द्रसेन को वहुत संताप हुआ और उसका चित्त भ्रमित सा रहने लगा।[18]

महाराणा द्वारा बांसवाड़ा रावल को दंडित करना

इसी समय वांसवाड़े का रावल अजवसिंह भी महाराणा जयसिंह के प्रति अवज्ञा दिखाने लगा और आज्ञा मानने में आनाकानी करने लगा। इस पर महाराणा ने वांसवाड़ा पर फौज भेजी। महाराणा का फौजकशी में ससैन्य शामिल होने के लिये पर्वाना मिलने पर राजराणा अपने सैनिक लेकर महाराणा के साथ उसकी सेना में शामिल हो गया। महाराणा ने क्रोधित होकर नगर में तोड़फोड़ की और रावल से वड़ा दण्ड वसूल किया। दंड वसूल करने के वाद रावल द्वारा अधीनता में वने रहने की प्रार्थना करने पर उसको वापस वांसवाड़ा में रावल पद पर स्थापित रखा।[19]

---

16 वीरविनोद, भाग 2, ले श्यामलदास, पृ 665-672

17 महाराणा जयसिंह का सादड़ी रणा चन्द्रसेन के नाम पर्वाना दिनाक वैसाख वदी 3 वि स 1740
"सिरोही फौज भेजी गई है रेख के हिसाव से साथ में सीने बन्दूक लेकर एक भलो माणस साथ देकर फोज भेला मोकलज्यो।"

18 वड़ीसादड़ी ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

19. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2. ले. गौ ही ओझा, पृ 592
वासवाड़ा राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 112

पिता-पुत्र कलह में चन्द्रसेन द्वारा महाराणा का पक्ष लेना

1689 ई. में महाराणा जयसिंह और उसके ज्येष्ठ कुंवर अमरसिंह के बीच कुछ वातों को लेकर आपसी कलह हो गया और कुंवर ने पिता के विरुद्ध बगावत कर दी। उस समय मेवाड़ के कई सरदार कुवर अमरसिंह के पक्षधर हो गये, जिनमें बेदला राव चौहान केसरीसिंह, सारंगदेवोत रावत महासिंह, कोठारिया रावत उदयभाण चौहान, देलवाड़ा राजराणा सज्जा झाला, महाराणा जयसिंह का भाई सूरतसिंह और रावत अनूपसिंह प्रमुख थे। इससे महाराणा जयसिंह के लिये विकट परिस्थिति पैदा हो गई और वह अपने अधिकाधिक सरदारों को अपने पक्ष में बनाये रखने की कोशिश करने लगा। उस समय महाराणा ने सादड़ी राजराणा चन्द्रसेन को खास रुक्का भेजकर उससे सहायता मांगी। वि.सं. 1746 दिनांक जेठ सुदी, बुधवार को एक रुक्का भेजकर महाराणा ने राजराणा को अपनी स्वामिभक्ति दिखाने का आग्रह किया।[20] राजराणा चन्द्रसेन ने इस गृह-कलह में महाराणा का साथ दिया। उस समय दोनों पक्षों के बीच लड़ाई उत्पन्न होने का तथा उसके साथ मेवाड़ में मुगल बादशाह के हस्तक्षेप का खतरा पैदा हुआ। महाराणा उदयपुर से रवाना होकर घाणेराव पहुँचा, जहां ठाकुर गोपीनाथ की मदद से वह मेवाड़ के अन्य सरदारों को एकत्र करने लगा। इस गृह-युद्ध से मेवाड़ का विनाश निश्चित था। ऐसे समय में ठाकुर गोपीनाथ, राठोड़ दुर्गादास, राजराणा चन्द्रसेन और पुरोहित जगन्नाथ के सद् प्रयासों से 1691 ई. के प्रारंभ में पिता-पुत्र के बीच सुलह करा दी गई।[21]

चन्द्रसेन द्वारा भीलों का दमन

इन्ही दिनों भोमट इलाके के जवास, पानड़वा, मेरपुर आदि स्थानों के भीलों ने बड़ा उत्पात मचाया और सारे पहाड़ी इलाके में अशांत पैदा कर दी। इस पर महाराणा जयसिंह ने उनका दमन करने हेतु सेना भेजी, जिसमें सादड़ी राजराणा चन्द्रसेन को पर्वाना भेज कर उसको अपने सैनिक लेकर इस कार्यवाही में सहायता देने का आदेश दिया। इस पर राजराणा ने अपने सरदारों और सैनिकों को लेकर भोमट में प्रवेश किया और भील पालों पर हमले बोल कर उनको भारी दण्ड दिया।[22] मेवाड़ के अन्य सरदारों ने भी इस कार्यवाही में भाग लिया और भोमट से शांति स्थापित की।

महाराणा जयसिंह द्वारा बादशाह औरंगजेब के साथ सुलह करने के बाद महाराणा ने शाहजादे अकबर को सहायता देना बन्द कर दिया। जब वह 1681 ई. में मेवाड़ की ओर आने लगा तो महाराणा ने राठोड़ दुर्गादास को कहला दिया कि शाहजादे को इधर न लाकर दक्षिण

---

20 महाराणा जयसिंह का रणा चन्द्रसेन के नाम का रुक्का वि. स 1746, जेठ शुदी 9, बुधवार

21 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 592
घाणेराव के मेड़तिया राठौड़, ले डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 66-67

22 महाराणा जयसिंह का रणा चन्द्रसेन के नाम पत्र
वि. स 1747, माह सुदी 3, गुरै
" कागज आया समाचार मालुम हुआ. सजा दीधी सो सुख हुवो . "
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 61

में पहुँचा दो। इस पर राठोड़ दुर्गादास उसको भोमट, डूंगरपुर और राजपीपला के रास्ते से लेकर दक्षिण में शंभाजी के पास ले गया।[23] 1687 ई. में दुर्गादास द्वारा शाहजादे अकबर को ईरान की ओर रवाना किया। उस समय शाहजादा ने दुर्गादास के साथ मारवाड़ की ओर आना चाहा था।[24] यह समाचार मिलने पर महाराणा को शाहजादे के मेवाड़ में प्रवेश करने की आशंका हुई। ऐसी स्थिति में महाराणा जयसिंह ने सादड़ी राजराणा चन्द्रसेन को पर्वाना भेजकर लिखा कि शाहजादा अकबर को अपनी तरफ नही आने दे।[25]

महाराणा अमरसिंह की गद्दीनशीनी और उसकी चन्द्रसेन के प्रति नाराजगी

महाराणा जयसिंह का देहान्त 23 सितंबर, 1698 ई. को हो गया और उसके स्थान पर उसका ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह मेवाड़ का महाराणा बना। चन्द्रसेन द्वारा महाराणा जयसिंह का पक्षधर रहने और पिता के विरुद्ध कुंवरपद में अमरसिंह का समर्थन नही करने के कारण महाराणा बनने के बाद अमरसिंह ने राजराणा चन्द्रसेन के प्रति नाराजगी दिखाते हुए दरबार में उसका महत्व घटा दिया।[26]

चन्द्रसेन का देहान्त और मूल्यांकन

राजराणा चन्द्रसेन का देहान्त वि.सं 1760 (1703 ई.) में सादड़ी से तीन मील दूर गुन्दलपुर में हुई, जहां वह कुछ समय से अस्वस्थ अवस्था में निवास कर रहा था।

राजराणा चन्द्रसेन तीन महाराणाओं राजसिंह, जयसिंह और अमरसिंह (दूसरा) के राज्यकाल में सादड़ी का उमराव रहा। चन्द्रसेन अपने पूर्व पुरुषों हरिदास, रायसिंह और सुरताण की भांति वीर योद्धा, कुशल राजनीतिज्ञ और योग्य शासक रहा। अपने से पूर्व के राजराणाओं की भांति वह भी महाराणा के प्रधान सलाहकारों में रहा और मुगलों के साथ लड़ाईयों एवं उनके साथ संधि-वार्ता दोनों कार्यों में महाराणा ने उसको अपने साथ आगे रखा। जब 1679 ई. में महाराणा राजसिंह ने कुंवर जयसिंह को बादशाह के पास भेजा तो उसके साथ सादड़ी राजराणा चन्द्रसेन को उसके साथ भेजा और उस समय बादशाह की ओर से चन्द्रसेन को घोड़ा और खिलअत आदि दिये गये। मेवाड़ राजदरबार का वह सर्वाधिक प्रभावशाली सरदार रहा और मेवाड़ राज्यपरिषद के सभी महत्वपूर्ण निर्णयों में उसकी प्रभावशाली भूमिका रही। जब महाराणा जयसिंह ने राजसमुद्र झील की पाल पर मुगल शाहजादे आजम के साथ संधि-वार्ता की,

---

23 वीरविनोद, भाग 2, ले श्यामलदास, पृ 653

24 मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, ले प विश्वेश्वरनाथ रेउ, पृ 279

25 महाराणा जयसिंह का रणा चन्द्रसेन के नाम पर्वाना
वि. सं 1743, चैत्र सुदी 13, बुधवार
"अकबर इधर आया है दरवार की धरती घाटा गुड़ा में निकलने मत देना यदि निकलने दिया तो आपने ओलवो मिलेगा।"

26 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड में उल्लेख है कि राजराणा चन्द्रसेन ने उज्जैन के घाटे में शाहजादे को रोककर उसकी सेना के साथ सग्राम किया और उसको पराजित किया (पृ 62) किन्तु ऐतिहासिक घटनाक्रम से इसकी पुष्टि नहीं होती।

वार्ता में चन्द्रसेन की सलाह एवं भागीदारी प्रधान रही। महाराणा जयसिंह एव कुवर अमरसिंह के वीच उत्पन्न गृह-कलह के समय राजराणा महाराणा के पक्ष में रहा। वह मेवाड़ की एकता और शांति का पक्षधर था और उसने पिता और पुत्र के बीच सुलह कराने में राठोड़ दुर्गादास और राठोड़ गोपीनाथ के साथ सहयोग किया, जिसके परिणामस्वरूप मेवाड अशांति और गृह-युद्ध से वच गया।

राजराणा चन्द्रसेन विद्या, साहित्य और कला का प्रेमी एवं प्रोत्साहक था। उसके काल में राजस्वामी काव्य, ख्यात आदि की रचनाएं हुई। उसके काल की "गुण झाला श्री चन्द्रसेन जी रो वर्णन" राजस्थानी काव्य ग्रथ एक उत्कृष्ट साहित्यिक रचना है, जिसका रचनाकार पताजी आशिया था।[27]

चन्द्रसेन परम स्वामिभक्त था। उसकी मृत्यु से पहिले के पांच वर्ष उसके लिये त्रासदायी रहे। पिता-पुत्र के गृह-कलह में चन्द्रसेन के महाराणा जयसिंह के साथ रहने के कारण जव कुंवर अमरसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ तो उसने सादड़ी राजराणा के प्रति नाराजगी दिखाई और महाराणा राजसिंह और जयसिंह के काल से चली आ रही सादड़ी राजराणा चन्द्रसेन की पद-प्रतिष्ठा पर आंच आने लगी। उसने दरवार में राजराणा का महत्व कम कर दिया। इस पर चन्द्रसेन की शारीरिक हालत खराव हो गई और उसने ठिकाने का कार्य अपने पुत्र कीरतसिंह (कीर्तिसिंह) को संभला दिया और गुंदलपुर में रहने लगा। फिर भी महाराणा पद के प्रति उसकी स्वामिभक्त में तिल भर भी कमी नही आई। मृत्यु से पहिले उसने अपने कुंवर कीरतसिंह को बुलाकर कहा—"श्री जी (महाराणा) कितनी ही तकलीफ देवें तो भी स्वामिधर्म का कभी त्याग नही करना।"[28]

चन्द्रसेन के विवाह एवं संतति—

राजराणा चन्द्रसेन द्वारा ग्यारह विवाह करने का उल्लेख मिलता है—

1. वेगूं रावत जसवंतसिंह चूंडावत की पुत्री सदनकंवर के साथ
2. आसीद रावत माधोसिंह चूंडावत की पुत्री देवकंवर के साथ
3. कानोड़ रावत मानसिंह (महासिंह) सारंगदेवोत की पुत्री जसकंवर के साथ, उससे दो पुत्र सिंहा और अमानसिंह हुए

---

27 साहित्य सस्थान, रा. वि. के पुस्तकालय में सगृहित हिन्दी राजस्थानी हस्तलिखित ग्रंथों की सूची, सम्पादक डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 26 एव 96

"गुण झाला श्री चन्द्रसेणजी रो" ग्रथ की दो प्रतियां साहित्य सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ के पुस्तकालय में विद्यमान हैं जो पुस्तकालय रजिस्टर में क्रमाक 176 एव 719 में दर्ज हैं। इस ग्रथ की प्रतिलिपि मानसिंह आशिया ने वि. स 1785 में उदयपुर में की। ग्रथ में राजराणा चन्द्रसेन के गुणों एव मुगलों के विरुद्ध युद्धों में उसके द्वारा प्रदर्शित वीरता और रणकौशल का वर्णन किया गया है। ग्रथ के अत में पुष्पिका इस भाति है—"गुण सपुरण लिखत आसीया मानसीघ गाम श्री उदेपुर महे लिखीयो रामा गाडण री पोथी सुलीखीयो समत् 1785 वरखे आसोज सुदी 12 गुरे वाच जणी ठाकुर सु राम राम बाचजो जी।"

28 वड़ीसादड़ी ठिकाने के प्राचीन पत्र।

4 भीडर महाराज मोखमसिंह शक्तावत की पुत्री फूलकंवर के साथ
5 राजगढ़ राव रणसिह गौड की पुत्री कसनकंवर के साथ
6. घमोतर रावत जोधसिंह (योगीदास) सिसोदिया की पुत्री सुजातकंवर के साथ
7. आमेट रावत रघुनाथसिंह चूंडावत की पुत्री कुशलकंवर के साथ
8. वांसवाड़ा रावल सवलसिंह (खुमाणसिंह) आहाड़ा की पुत्री गुलावकंवर के साथ
9. हमीरगढ़ रावत जसवंतसिंह राणावत की पुत्री पदमकंवर के साथ
10. खेड़ी मालपुर राव पृथ्वीसिंह (प्रतापसिंह) लूणावत की पुत्री भाणकंवर के साथ
11. पीपलोदा के रघुनाथसिंह हाड़ा की पुत्री रमाकंवर के साथ

गुंदलपुर में राजराणा चन्द्रसेन के शव के साथ उसकी दो रानियां वांसवाड़ा की गुलाव कंवर अहाड़ा और वेगूं की मदनकंवर चूंडावत सती हुई।[29]

संतति—

1. कुंवर सिंहा
और
2 कुंवर अमानसिंह
दोनों कानोड़ वाली रानी जसकंवर की कोख से उत्पन्न हुए।
कुंवर सिंहा सिरोही वाली लड़ाई में खेत रहा।
कुंवर अमानसिंह को जागीर में तलावदा मिला।
3 कु. कीरतसिंह (कीर्तिसिंह)
4. कु. दौलतसिंह
5. कु. गुलावसिंह
6. कु. दुर्जनसाल (छत्रसिंह) ढावो पीपल्यावास जागीर में मिला।

अंतिम चारों वांसवाड़ा वाली रानी गुलावकंवर की कोख से हुए। कुंवर कीरतसिह (कीर्तिसिंह) सादड़ी पाट वैठा।

कुंवर दौलतसिंह को ताणा की जागीर मिली। दौलतसिंह की पुत्री राजकंवर का विवाह महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के साथ हुआ।[30] कुंवर गुलावसिंह ताणेराज (भतीजा) नाथजी के गोद गया।

राजराणा चन्द्रसेन की पुत्री एजनकंवर का विवाह महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के साथ हुआ।[31]

---

29. वही।

30 बड़वा देवीदान लिखित मेवाड़ के राजाओं की राणियों, कुवरों एव कुवरियों का हाल, स डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ. 28

31 वही, पृ 25

11. राजराणा कीर्तिसिंह (कीरतसिंह) प्रथम (1703-1743 ई.)

वागड़ पर महाराणा की चढ़ाई : राजराणा कीर्तिसिंह की सहायता

1703 ई. में गुंदलपुर में राजराणा चन्द्रसेन का निधन होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र कीर्तिसिंह सादड़ी का स्वामी हुआ। चन्द्रसेन की मृत्यु के दूसरे दिन महाराणा अमरसिंह (दूसरा) का पर्वाना पहुँचा,[1] कि डूगरपुर, बांसवाड़ा और देवलिया के राजाओं के विरुद्ध फौजकशी की जा रही है। इन शासकों ने पुन. मेवाड के महाराणा प्रति अवहेलना शुरू कर दी थी। दस्तूर मुताबिक महाराणा अमरसिंह (दूसरा) की गद्दीनशीनी के अवसर पर इन राजाओं को उपस्थित होकर टीका (नज्र) पेश करना चाहिये था, किन्तु उन्होंने उसकी परवाह नहीं की। उसके बाद भी उन्होंने महाराणा के आदेशों का पालन नही किया। इसलिये उनको दंडित करना जरूरी हो गया था। पर्वाना राजराणा चन्द्रसेन के नाम था और आदेश था कि वह अपनी सेना लेकर मेवाड़ की सेना में शामिल हो। राजराणा चन्द्रसेन की मृत्यु के समाचार उदयपुर पहुँचने से पहिले ही महाराणा का पर्वाना निकल चुका था। नये राजराणा कीर्तिसिंह ने अपने स्वर्गीय पिता के वचनों को याद करते हुए पिता का दाह-संस्कार करने के बाद ही तेरह दिनों की धार्मिक विधि पूरे किये बिना अपने सैनिक लेकर सादड़ी से प्रस्थान किया और मेवाड़ की सेना में शामिल हो गया। उस समय उसका छोटा भाई दौलतसिंह भी उसके साथ गया।[2] महाराणा की सेना ने डूंगरपुर रावल खुमानसिंह की सेना को सोम नदी के किनारे हुई लड़ाई में पराजित किया और रावल से दण्ड और युद्ध का हर्जाना वसूल किया गया। इस सैनिक कार्यवाही के साथ-साथ देवलिया और बांसवाड़ा पर भी मेवाड की सेनाओं ने चढ़ाई की किन्तु वहां के शासकों द्वारा बादशाह औरंगजेब के पास महाराणा के विरुद्ध शिकायतें पहुँचाने पर महाराणा ने आगे अपनी सैनिक कार्यवाही रोक दी।[3]

---

1 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 64

2 वही, पृ 65

राजराणा रायसिंह वशावली पुस्तक (अप्रकाशित, पृष्ट 13-14) मे उल्लेख है कि चन्द्रसेन की मृत्यु के दूसरे दिन ही खबर हुई कि बादशाह टीका दौड़ पर आया है, इस पर कीर्तिसिंह ने अपने छोटे भाई दौलतसिंह को कहा "दाजीराज (स्वर्गीय चन्द्रसेन) की क्रिया तो तुम करो मैं खारी नदी पर जाकर बादशाह का मुकाबला करता हूं।" बादशाही फौज लौट गई। वहा से लौटते हुए राजराणा भीलवाड़े ठहरा। भीलवाड़े के हाकिम ने राजराणा कीर्तिसिंह की जीत की खबर महाराणा को भेजी। महाराणा ने प्रसन्न होकर उसको उदयपुर बुलवाया और तलवारबन्दी की रस्म पूरी की तथा 'ताणा' का पट्टा इनायत किया, जो कीर्तिसिंह ने अपने भाई दौलतसिंह को दिलवाया।" किन्तु यह वर्णन काल्पनिक ही है।

3 प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 184
बासवाड़ा राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 113

दौलतसिंह को ताणा की जागीर मिलना

सोम-नदी की लड़ाई में राजराणा कीर्तिसिंह और उसके भाई दौलतसिंह ने बड़ी वीरता दिखाई तो महाराणा बहुत प्रसन्न हुआ। जब उसको इस बात का भी पता लगा कि राजाज्ञा पालन करने हेतु कीर्तिसिंह अपने पिता के दाह-कर्म की सम्पूर्ण विधि पूरी किये बिना ही सेना लेकर आ गया था तो उसने प्रसन्न होकर कीर्तिसिंह को सादड़ी के अलावा ताणा की साठ हजार की जागीर देने की आज्ञा प्रदान की। तब राजराणा कीर्तिसिंह ने महाराणा से प्रार्थना की कि उसके पास पहिले से सादड़ी की बड़ी जागीर मौजूद है, अतएव ताणा की जागीर उसके छोटे भाई दौलतसिंह को प्रदान की जावे। महाराणा ने उसकी स्वामिभक्ति , वीरता, भ्रातृ-स्नेह और निस्पृष्टता की प्रशंसा करते हुए उसकी प्रार्थना को स्वीकार करके साठ हजार की आय वाली ताणा की जागीर और 'राज' की उपाधि दौलतसिंह को प्रदान की।[4]

महाराणा अमरसिंह ने राजराणा कीर्तिसिंह को विधिवत उदयपुर बुलवा कर मातमपुर्सी की और तलवारबन्दी की रस्म सम्पन्न की।

महाराणा अमरसिंह द्वारा सामंतों की श्रेणियां कायम करना : सादड़ी राजराणा को प्रथम स्थान

राजराणा कीर्तिसिंह का काल मेवाड़ और देश के लिये बड़ा परिवर्तनकारी घटनाओं का काल रहा। महाराणा जयसिंह के काल में पिता-पुत्र के बीच में अविवेकपूर्ण एवं हानिकारक कलह के कारण मेवाड़ में सरदारों के बीच चली आ रही स्वामिभक्तिपूर्ण एवं वतनपरस्त एकता की भावना बड़ी दुष्प्रभावित हुई। चूंडावतों एवं शक्तावतों के बीच प्रतिस्पर्धा चली आ रही थी। अब महाराणा विरोधी सामंती गुटों के बन जाने के कारण मेवाड़ राज्य की केन्द्रीय सत्ता कमजोर हो गई, जिसको भविष्य में शक्तिशाली एवं सक्षम शासक के अभाव में, पुनर्प्रतिष्ठित नही किया जा सका। मेवाड़ के भावी इतिहास के लिये यह बड़ा अशुभ रहा। यद्यपि महाराणा अमरसिंह (दूसरा) एक योग्य एवं बुद्धिमान प्रशासक रहा, किन्तु स्वयं द्वारा बोये गये फूटपरस्ती के बीजों की फसल उसको काटनी पड़ी तथा उसकी दुर्नीति के कारण उसके एकता को पुनर्स्थापित

---

4 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, पृ 65

ओझाजी ने लिखा है कि महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने राजराणा कीर्तिसिंह के दूसरे पुत्र नाथसिंह को ताणा की जागीर और 'राज' का खिताब दिया था—उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ 951

किन्तु ओझाजी का यह कथन सही नहीं है। बड़ीसादड़ी और ताणा ठिकाने के प्राचीन दस्तवेजों से यह प्रकट होता है कि ताणा की जागीर कीर्तिसिंह के छोटे भाई दौलतसिंह को प्रदान की गई थी। नाथसिंह (नाथजी) राजराणा कीर्तिसिंह का दूसरा पुत्र था, जो राज दौलतसिंह के पुत्र नही होने से ताणा में गोद लिया गया था। नाथजी भी निस्सतान रहा तो दौलतसिंह का छोटा भाई और नाथजी का चाचा और राजराणा चन्द्रसेन का तीसरा पुत्र गुलाबसिंह ताणा में गोद गया।

ताणा में वशक्रम इस भाति रहा—दौलतसिंह → नाथजी → गुलाबसिंह → किशोरसिंह → हमीरसिंह → भैरवसिंह → देवीसिंह → अमरसिंह → रत्नसिंह → कु गिरधारीसिंह → हरिसिंह

करने के प्रयास विफल रहे। उसने मेवाड़ में सुप्रशासन स्थापित करने की दृष्टि मे कतिपय सुधार किये, जिसमें सब जागीरदारों के दर्जों के विभाग सोलह (प्रथम श्रेणी) और बत्तीस (द्वितीय श्रेणी) नियत करके जागीरों के नियम बना कर उनको स्थिर कर दिया। उसके साथ दरबार का तरीका, सरदारों की बैठक, सीख के दस्तूर, नौकरी आदि के नियम बना दिये। परम्परा से चले आ रहे दस्तूरों के मुताबिक सादडी के झाला राजराणा को मेवाड राज्य दरबार में दाहिनी पंक्ति में महाराणा के पास मुह बराबर प्रथम बैठक और बडे सरदारों में पहला स्थान मिला तथा उसी मुताबिक विशेष कुरब आदि मिले।[5]

1707 ई. में बादशाह औरंगजेब का मराठों के विरुद्ध लम्बी लडाई लड़ते हुए दक्षिण में देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु के बाद देश की राजनीति मे नये समीकरण बन गये। उसके पुत्रों में उत्तराधिकार को लेकर परस्पर लड़ाई शुरू हो गई। मुगल साम्राज्य तहस-नहस हो गया और राजपूतों के अलावा मराठे, सिख, जाट आदि नई शक्तिया देश के राजनीतिक पटल पर उभर आईं। बादशाह औरगजेब के दो पुत्रों मुअज्जम और आजम के बीच की लडाई में महाराणा अमरसिंह ने मुअज्जम का पक्ष लिया, जो विजयी होकर शाहआलम बहादुरशाह के नाम से मुगलतख्त पर बैठा। बहादुरशाह अपनी कमजोर स्थिति को देखते हुए राजपूत राज्यों में मेवाड़ को अपने साथ रखने हेतु महाराणा अमरसिंह को प्रसन्न रखने की नीति अपनाता रहा। महाराणा ने भी स्थिति का लाभ उठाने के प्रयास किये।[6]

जोधपुर और जयपुर के राजाओं का महाराणा की सहायता प्राप्त करने हेतु उदयपुर आना और राजराणा कीर्तिसिंह का महाराणा का सलाहकार रहना

मुअज्जम और आजम के बीच की लडाई में जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह और आमेर के महाराजा सवाई जयसिंह ने आजम का पक्ष लिया था, जिसके फलस्वरूप बादशाह बहादुरशाह ने दोनों राजाओं को राज्यच्युत कर दिया। इस पर मेवाड की सुदृढ़ स्थिति और मुगल दरबार में महाराणा के प्रभाव को देखते हुए दोनों महाराजाओं ने अपने-अपने राज्य वापस प्राप्त करने में महाराणा अमरसिंह की सहायता लेने का विचार किया। दोनों महाराजा अपने साथ राठोड़ दुर्गादास और मुकुन्ददास को लेकर उदयपुर आये। 30 अप्रेल, 1708 ई. को महाराणा ने अपने कतिपय बडे सरदारों के साथ उदयसागर की पाल पर उनसे भेंट की।[7] सादड़ी राजराणा कीर्तिसिंह

---

5 वीरविनोद, भाग 2, ले श्यामलदास, पृ 780, 789, 790
मेवाड़ दरबार में बड़े उमरावों की बैठक का क्रम इस भाति रहा—1 सादड़ी → 2 बेदला → 3 कोठारिया → 4 सलूबर → 5 घाणेराव → 6 बिजोलिया → 7 देवगढ़ → 8 बेगू (बेगम) → 9 देलवाड़ा → 10 आमेट → 11 गोगूदा → 12 कानोड़ → 13 भींडर → 14 बदनोर → 15 बानसी → 16 पारसोली। बाद में इनकी सख्या बढ़कर 21 हो गई, जिनमें भैंसरोड़गढ़, कुरावड़, आसींद, मेजा और सरदारगढ़ अलग-अलग महाराणाओं द्वारा इनमें शामिल किये गये।

6 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2 ले गौ ही ओझा, पृ 601-603

7 वही, पृ 603-604

उनके साथ विचार-विमर्श और निर्णय में महाराणा का सलाहकार रहा। महाराणा दोनों महाराजाओं को सहायता प्रदान करने के लिये तैयार हो गया। मेवाड़, जोधपुर एवं जयपुर के राजाओं के बीच एकता की संधि हुई और मेवाड़ के नेतृत्व में राजपूत राज्यों के एक लघु संघ की स्थापना हुई। महाराणा ने दोनों महाराजाओं को उनके जोधपुर एव जयपुर के राज्य लौटाने हेतु वादशाह को अर्जी भेजी। वहादुरशाह भी मेवाड़ के नेतृत्व में तीन बड़े राजपूत राज्यों के बीच स्थापित एकता से घबराया और उसने उनके राज्य लौटाने का आश्वासन दिया। किन्तु मुगल वादशाह की अस्थिर नीति को देखते हुए तीनों राजाओं ने सैनिक कार्यवाही करना मुनासिब समझ कर जुलाई माह में तीनों राज्यों की सम्मिलित सेना ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया और उस पर महाराजा अजीतसिंह का कब्जा हो गया। इसी प्रकार अगस्त माह में आमेर का राज्य सवाई जयसिंह के अधिकार में आ गया। महाराणा अमरसिंह का प्रधान सलाहकार होने के कारण सादड़ी राजराणा की कीर्तिसिंह ने इन सब कार्यवाहियों को पूर्ण करने में मेवाड़ की ओर से महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।[8]

लघु राजपूताना संघ की उपरोक्त सफलताओं के वाद 1709 ई. में महाराणा अमरसिह ने मुगलाधीन पुर, मांडल, बदनोर आदि परगनों को वापस अपने अधिकार में लेने का विचार करके उस ओर अपनी सेना भेजी और मुगल अधिकारी फिरोजखां को पराजित करके उन सब पर अपना अधिकार कर लिया। बादशाह वहादुरशाह को उस समय एक साथ कई मोर्चो पर लडना पड़ रहा था। दक्षिण में मराठों के अलावा उत्तर में कामवक्ष के विद्रोह और सिखों की सैन्य कार्यवाहियों के कारण उसने मेवाड़ के नेतृत्व में राजपूताने में एवं मेवाड़ मे की गई मुगल विरोधी कार्यवाहियों पर ध्यान न देकर उनको माफी प्रदान करके तसल्ली के फर्मान भिजवा दिये।[9]

बारह वर्ष तक शासन करने के वाद महाराणा अमरसिंह का 10 दिसम्बर, 1710 ई. को निधन हो गया। उसका पुत्र सग्रामसिंह (दूसरा) मेवाड़ का महाराणा बना।[10]

बांदनवाडे की लड़ाई में सादड़ी राजराणा का भाग लेना

महाराणा संग्रामसिंह के गद्दीनशीन होने के वाद ही दिल्ली में मेवाड़ विरोधी षडयंत्र के फलस्वरूप मुगल बादशाह ने महाराणा द्वारा अधीन किये गये पुर, मांडल आदि परगनों को

---

8 वीरविनोद, भाग 2 ले श्यामलदास, पृ 875-878
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 605-606
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 66

9 वीरविनोद, पृ 780-781
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 607

10 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 610

वापस महाराणा से छीन लेने हेतु रणबाजखां को सेना देकर मेवाड़ पर भेजा। महाराणा ने अपने सभी सरदारों को ससैन्य उदयपुर बुलाकर रणबाजखां का मुकाबला करने हेतु उनको रवाना किया। सादड़ी राजराणा कीर्तिसिंह तत्काल अपना सैन्यदल लेकर उदयपुर पहुँचा।[11] उसके अलावा अन्य प्रधान सरदारों में रावत महासिंह, सारंगदेवोत (बाठरडा), रावत देवभान (कोठारिया, सागा द्वारावत (देवगढ), सूरजसिंह राठोड (लीमाडा), देवीसिंह मेघावत (बेगूं), रावत विक्रमसिंह, रावत सूरतसिंह, रावत मोहनसिंह मानावत, डोडिया हरीसिंह, रावत गंगदास (बानसी), सूरजमल सोलंकी, पीथल शक्तावत, झाला सज्जा कडतल (देलवाड़ा) मधुकर शक्तावत, सामंतसिंह चूंडावत (सलूबर), दौलतसिंह चूंडावत, रावत पृथ्वीसिंह दूलावत (आमेट), राठोड़ जयसिंह (बदनोर), भारतसिंह (शाहपुरा), जसकरण कानावंत, महता सांवलदास, राणावत संग्रामसिंह, राठोड़ साहबसिंह आदि थे। खारी नदी के पास बांदनवाड़े के निकट दोनों सेनाओं के बीच युद्ध हुआ, जिसमें मुगल सेना बुरी तरह पराजित हुई और रणबाजखां स्वयं मारा गया। मुगल सेना का सारा सामान मेवाड़ के सरदारों ने लूट लिया।[12]

बांदनवाड़े की विजय के बाद महाराणा संग्रामसिंह ने मालवे में पठानों की शक्ति को नष्ट किया। 1717 ई. में जब जोधपुर के कृतघ्न महाराजा अजीतसिंह ने अपने रक्षक एवं संरक्षक वीर राठोड़ दुर्गादास को निकाल दिया तो वह मेवाड़ चला आया। महाराणा संग्रामसिंह ने उसको विजयपुर की जागीर और पन्द्रह हजार रुपये मासिक देकर बड़े सम्मान के साथ रखा तथा रामपुरे का हाकिम नियुक्त किया।[13]

11 जनवरी 1734 ई. को महाराणा संग्रामसिंह का निधन हो गया। उससे पहिले राजराणा कीर्तिसिंह उदयपुर से सादड़ी के लिये प्रस्थान कर चुका था और मार्ग में महाराणा की मृत्यु के समाचार मिले। वह मार्ग से लौटकर उदयपुर आया और महाराणा के दाह संस्कार में शरीक हुआ। उसके पश्चात् वह महाराणा जगतसिंह (दूसरे) के राज्याभिषेक समारोह में शरीक रहा।[14]

हुरड़ा सम्मेलन में कीर्तिसिंह का महाराणा का सलाहकार रहना

इस समय तक, 1729 ई. में मुहम्मदशाह के मुगलतख्त पर आसीन होने के बाद, मुगल सल्तनत कई टुकड़ों में बिखर गई। बंगाल, अवध, हैदराबाद, रुहेलखंड में स्वतंत्र राज्य कायम हो गये। नादिरशाह ने दिल्ली पर हमला करके हजारों लोगों को मार डाला और दिल्ली का सारा खजाना एवं तख्तताऊस लूटकर ले गया। राजपूताने के राजाओं ने भी स्वतंत्रता ग्रहण कर

---

11 बड़ीसादड़ी ठिकाने की प्राचीन पत्रावली

12 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 612

13 वही, पृ 617

14 वही, पृ 623
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 66

ली। उधर 1734 ई. तक मालवा पर मराठों का आधिपत्य हो गया। यद्यपि मेवाड़, जोधपुर, जयपुर आदि राज्यों के राजाओं ने अलग अलग तौर पर मराठों के साथ सम्वन्ध स्थापित किये किन्तु शीघ्र ही उनको मराठों की विस्तृत होती प्रवल शक्ति और स्वेच्छाचारी अंकुश -प्रवृत्ति के आगे अपनी सुरक्षा के लिये खतरा पैदा हो गया। मराठों से अपने राज्यों को सुरक्षित एवं स्वतंत्र रखने की दृष्टि से उन्होंने 1708 ई. में मेवाड़ के नेतृत्व में स्थापित लघु राजपूत राज्य संघ को विस्तृत रूप देने एवं राजपूत राज्यों का वड़ा संघ वनाने की दृष्टि से एक वार फिर 17 जुलाई, 1734 ई. को महाराणा जगतसिंह दूसरे की अध्यक्षता में मेवाड़ के हुरड़ा नामक स्थान पर मेवाड़ के अलावा जोधपुर, जयपुर, कोटा, वीकानेर, किशनगढ़, नागौर आदि के राजा एकत्र हुए। इस बार परस्पर सहयोग एवं सहायता करने का एक अहदनामा भी तैयार किया गया और ठस पर सभी राजाओं ने हस्ताक्षर किये। किन्तु किसी ने उसका पालन नही किया और उनकी एकता कागजी एकता मात्र वन कर रह गई।[15] राजराणा कीर्तिसिंह हुरड़ा सम्मेलन के दौरान भी बरावर महाराणा का सलाहकार वना रहा।

उधर महाराणा जगतसिंह की गद्दीनशीनी के वाद मेवाड़ की आंतरिक स्थिति विगड़ गई। राज्य के सरदार अलग-अलग गिरोह वनाकर अपने स्वार्थों के लिये आपस में लड़ने लगे। चूंडावतों और शक्तावतों के वीच वढ़ते कलह के साथ चूंडावतों का झालाओं और चौहानों के साथ भी विगाड़ हो गया। मेवाड़ की आंतरिक स्थिति इतनी विगड़ी कि महाराणा जगतसिंह का स्वयं अपने पुत्र प्रतापसिंह के साथ झगड़ा हो गया और महाराणा ने अपने पुत्र को कैद कर लिया।[16]

वागड़ से मराठों को निकालने में कीर्तिसिंह का योगदान

इसी समय मुगल वादशाह से मालवे की नायव सूवेदारी हासिल करने के वाद मराठा पेशवा बाजीराव उदयपुर आया और महाराणा से एक लाख साठ हजार रुपये वार्षिक खिराज राशि तय करवाकर महाराणा से सात लाख रुपये नकद लेकर लौटा। उसने कुछ समय वाद ही 1741 ई. में मराठे वागड़ की ओर से मेवाड़ से घुसने लगे और महाराणा को उस ओर अपनी सेना भेजनी पड़ी। सादड़ी, राजराणा कीर्तिसिंह इस भीषण संकटपूर्ण स्थिति में महाराणा जगतसिंह का सलाहकार एवं मददगार वना रहा। वह वागड़ की ओर भेजी गई मेवाड़ की सेना के साथ अपना सैन्य दल लेकर गया, जिसने मराठों को मेवाड़ से निकाल दिया।[17]

1743 ई. में महाराजा सवाई जयसिंह का देहान्त होने के वाद जयपुर राज्य के उत्तराधिकार

---

15. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले. गौ ही. ओझा, पृ 629-630
16 वही, पृ. 632-633
17. वही, पृ. 633
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले. महता सीताराम शर्मा, पृ. 67

को लेकर महाराणा जगतसिह की हठवादिता और अदूरदर्शिता के कारण मेवाड और जयपुर राज्यों के बीच जो झगडा हुआ, उससे राजपूत राज्यों के बीच स्थापित लघु राजपूत-राज्य-संघ समाप्त हो गया और आगे किसी प्रकार मराठा विरोधी सगठन की आशा समाप्त हो गई, तथा राजपूताने के दो प्रधान राज्यों की आपसी लड़ाई से दोनों राज्यों की भारी क्षति हुई और राजपूताने में मराठों के हस्तक्षेप का प्रारंभ हुआ, जिसके कारण आने वाले समय में सभी राजपूत राज्यों का भारी विध्वस एव पतन हुआ।

कीर्तिसिंह का निधन

वि स. 1800 (1743 ई.) के प्रारभ में सादड़ी राजराणा कीर्तिसिंह का निधन हो गया। वह भी अपने पूर्ववर्ती राजराणाओं की भांति योग्य एवं बुद्धिमान शासक तथा वीर योद्धा था। वह महाराणा के प्रधान सलाहकारों में रहा। उसने न केवल लडाईयों में अपितु राज्य के सभी राजनीतिक घटनाक्रमों में भी सक्रिय भाग लिया। 1734 ई. के राजपूत राज्यों के हुरड़ा सम्मेलन की सफलता में उसने सक्रिय योगदान दिया। यद्यपि महाराणा जगतसिंह के विरुद्ध मेवाड़ के कई सरदार कार्यवाहियां करते रहे, राजराणा 'कीर्तिसिंह गुटवाजी से अलग रहकर और चूंडावत खेमे के विरोध एव नाराजगी की चिन्ता किये बिना वह महाराणा का साथ देता रहा।[18]

कीर्तिसिंह के निर्माण कार्य—

राजराणा कीर्तिसिंह ने निर्माण कार्यों की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने एक लाख रुपया व्यय करके एक वावडी व्रह्मपुरी में तथा दूसरी महलों के मुख्य द्वार के सामने वनवाई। तथा उन वापिकाओं पर चारभुजा भगवान के मंदिरों की प्रतिष्ठा कराई। इनका निर्माण हो जाने पर कीर्तिसिह ने एक उत्सव आयोजित करके उसमें महाराणा जगतसिह और उसकी महारानी तथा मेवाड के बडे उमरावों को आमंत्रित किया। राजराणा ने सभी की वड़ी आवभगत की। वापिकाओं के निर्माण के बाद राजराणा ने जनाना महल और पहाड़ के गढ के चारों ओर दीवाल बनवाई। राजराणा की बिजोलियावाली पंवार रानी तथा दूसरी वम्वोरीवाली पंवार रानी दोनों ने सादडी में एक-एक चारभुजानाथ का मंदिर और वापिका वनवाई, जो अभी तक विद्यमान हैं।[19]

राजराणा की मृत्यु पर पोसीना (पीसागन) वाली बाघेला रानी राजराणा के साथ सती हुई।[20]

---

18 बड़ीसादड़ी ठिकाने की प्राचीन पत्रावली
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 67

19 वही।

20 बड़ीसादड़ी ठिकाने की प्राचीन बही।

विवाह एवं संतति

राजराणा कीर्तिसिह ने निम्नलिखित विवाह किये—

1. बिजोलिया राव विक्रमादित्य पंवार की पुत्री नौरतकंवर
2. बानसी रावत सांवलदास शक्तावत की पुत्री बदनकंवर
3. बम्बोरी ठाकुर माखनसिंह पंवार की पुत्री देवकंवर
4. पीसागन ठाकुर सुजानसिह बाघेला की पुत्री देवकवर
5. राजपुरा ठाकुर माखनसिंह राठोड़ की पुत्री लालकंवर
6. लूणावाड़ा ठाकुर तेजसिंह सोलंकी की पुत्री बखतकंवर
7. बूंदी रावराजा अनिरुद्धसिंह हाड़ा की पुत्री लालकवर

राजराणा कीर्तिसिंह के दो पुत्र हुए। प्रथम कुंवर रायसिंह सादड़ी के पाट बैठा। दूसरा कुंवर नाथसिंह (नाथजी) ताणा राज दौलतसिंह के गोद गया।[21]

21 बड़ीसादड़ी ठिकाने की प्राचीन पत्रावली एव वशावलिया। बड़वों द्वारा दी गई सूचनाओं एव नामों में बड़ा फर्क मिलता है।

अध्याय – 6

पतन एवं विघटन काल (1743-1818)

12. राजराणा रायसिंह (दूसरा) (1743-1761 A.D.)

1743 ई. में राजराणा कीर्तिसिंह का सादड़ी में निधन होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र रायसिंह सादड़ी का स्वामी हुआ। परंपरानुसार राजकुमार प्रतापसिंह को भेजकर कीर्तिसिंह को उदयपुर बुलवाया गया। महाराणा जगतसिंह ने सादड़ी की हवेली जाकर उसकी मातमपुर्सी की और उसको महलों में बुलाकर उसकी तलवारवन्दी की रस्म पूरी की। उसके साथ ही ठिकाने पर खालसा हेतु भेजे गये कर्मचारियों को वापस बुलाकर राज्याधिकार की उठंत्री कर दी गई।

मेवाड़ में गृह-कलह : राजराणा का महाराणा का साथ देना

जैसा कि ऊपर वर्णित है, 1743 ई. तक मेवाड़ राज्य की आतरिक स्थिति अत्यंत बिगड़ चुकी थी। मेवाड का सामंत वर्ग भिन्न-भिन्न दलों में विभाजित होकर अपने स्वार्थों में लिप्त हो रहा था। उनको न तो मेवाड़ राज्य की सुरक्षा और शाति की चिन्ता थी और न एकता की। वे महाराणा के प्रति स्वामिभक्ति के सामन्तशाही के विशिष्ट नियम को भुला चुके थे। महाराणा जगतसिंह स्वयं कमजोर और अदूरदर्शी शासक था जिसके कारण उसके लिये राज्य में शांति और एकता कायम रखना कठिन था। इसके अलावा उसकी अविवेकपूर्ण एवं हठवादिता पूर्ण नीति तथा आचरण के कारण मेवाड़ राज्य में मराठों का हस्तक्षेप तथा हमले बढ़ते जा रहे थे और धीरे-धीरे मेवाड़ राज्य के परगने पृथक् होते जा रहे थे। 1750 ई. में मेवाड़ के टोंक और रामपुरा के परगने मराठों के हाथों में चले गये थे। उधर राजपूत राज्यों के बीच की पारस्परिक सहयोग एवं सहायता की भावना समाप्त हो चुकी थी। इतना ही नहीं लगभग सभी राजपूत राज्य मराठों की लिप्सा एव मनमानी के शिकार होते जा रहे थे। अब उनको मुगल साम्राज्य के दखल से नहीं अपितु मराठा दलों के दखल और स्वेच्छाचारिता से निपटना पड़ रहा था। जब मेवाड़ राज्य में भी अन्य राजपूत राज्यों की भांति अपने आंतरिक गुटीय झगड़ों एवं विवादों को निपटाने में मराठों को बुलाना शुरू किया गया तो आगामी लगभग पिचहतर वर्षों के दौरान मेवाड सम्पूर्णतः विध्वंस एवं पतन का शिकार हो गया। पारस्परिक हिंसापूर्ण झगड़ों के कारण

मेवाड़ के ठिकाने भी सभी प्रकार से दुष्प्रभावित हुए, जिससे सादड़ी भी वच न सका। किन्तु सादड़ी का राजराणा महाराणा के प्रति वफादार बना रहा।

श्री झाला भूषण मार्तण्ड में वर्णन है कि राजराणा रायसिंह (दूसरे) की तलवारबन्दी के बाद उसी वर्ष जयपुर महाराजा सवाईजयसिंह महाराणा से भेंट करने हेतु उदयपुर आया। राजराणा रायसिंह भी उसके स्वागतार्थ उदयपुर आया। महाराणा ने उस समय राजराणा से पूछा कि "क्या वह जयपुर महाराजा से मिलने के समय उसी प्रकार एक हाथ से मुजरा करेंगे, जिस प्रकार वह उनको (महाराणा) को करते हैं।" इस पर राजराणा ने उत्तर दिया कि 'प्रथम तो हमारे पूर्वज श्रीमानों (महाराणा) तथा दिल्लीश्वर (मुगल वादशाह) के राजसिंहासन के अतिरिक्त किसी के नीचे नहीं वैठे। परन्तु आमेराधीश श्रीमानों के वहनोई हैं, द्वितीय वे अतिथि की भांति पधारते हैं, अतएवं यदि श्रीमान हार्दिक इच्छा से अनुरोध करेंगे तो मैं उनसे एक उंगली से मुजरा कर लूंगा।' जयपुर महाराजा के उदयपुर आने पर राजराणा रायसिंह ने उसी रीति के अनुसार ही भेंट की। भेंट के बाद आमेराधीश ने महाराणा से पूछा कि ये सरदार कौन हैं? मेदपाटेश्वर ने कहा ये झाला सरदार हैं।' महाराणा ने उनके पूर्वजों के हलवद से आने एवं मेवाड़ में उनकी सेवाओं और अटल वीरता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।[1]

श्री झाला भूषण मार्तण्ड के इस उल्लेख को ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर परखना आवश्यक है। 1743 ई. में राजराणा रायसिंह सादड़ी में उत्तराधिकारी हुआ। अतएव उपरोक्त घटना 1743 ई. में अथवा उसके वाद हुई। 1734 ई. में हुरड़ा सम्मेलन के अहदनामे के वावजूद राजपूत राजा एक नहीं रह सके। 1736 ई. में ही महाराजा जयसिंह ने वाजीराव पेशवा से सन्धि

---

1 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा (पृ 67-69) के अनुसार आमेराधीश से भेंट के समय आड़ापाड़खा ने निम्नलिखित कविता कही—

झोका लीजिये बने ही वाता वक्का शुद्धापणे झाला,
अखियाता अक्का वधू राखबा उदोत्।
रायसिंघ जैसिंघ सू मिलन्ता मुरज्जी राखे,
दाखै दवा गिरोहूता नरमी दसोत्॥1॥
कीरते सतणा रायजदो घनो आटाकोट,
दोहू बाता आवादा बचाणा दसू देश।
करता जुहार गाढ धारै पती कुरगा सू,
नरमी अपार करै कवेशां नरेश॥2॥
पाटरी गरब्वै वश सावलो उदोत पाट,
वरा पूर वन्ने थक्का राजी बाप।
धारिया अमोध जेम मिलै छत्रधारिया सू,
मोमरूपी होय करे सुथाता मणाप॥3॥
सोभाग चढाऊ कणा रयम्मा उजास सारे,
शीतलता तेज मही बन्दे हिन्दूशाह।
अवणा कपणों चन्द्र विजा पृथी सारे ऊगो,
ऊगो सम्वणां कपणों सूरज्यू अथाह॥4॥

कर ली। उसके बाद शाहपुरे के मामले में महाराजा जयसिंह और महाराणा जगतसिंह के बीच मनोमालिन्य हो गया। बाजीराव ने उदयपुर आकर महाराणा के साथ अलग से सन्धि कर ली। उसी समय महाराजा जयसिंह द्वारा बूंदी राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करके राव बुधसिंह को हटाकर दलेलसिंह को बूंदी का स्वामी बनाने से भी महाराणा नाराज हुआ। फिर भी दोनों शासकों के बीच इस काल में लड़ाई की स्थिति पैदा नही हुई। अपनी मृत्यु से पहिले महाराजा जयसिंह ने महाराणा के कहने पर रामपुरे के परगने पर माधवसिंह को पूरा अधिकार दे दिया था। उस समय महाराजा सवाईजयसिंह गंभीर रूप से बीमार था। यदि वह ज्यादा बीमार नहीं होता तो वह शायद रामपुरे का कब्जा माधवसिंह को नही देता।[2] अतएव इन स्थितियों में जयसिंह का मेवाड़ में आकर महाराणा से मिलने की बात संभव नहीं लगती है और उसका उल्लेख भी नही मिलता। 3 अक्टूबर, 1743 ई. को राजा जयसिंह का देहान्त भी हो गया।

राजराणा रायसिंह द्वारा शाहपुरा राजा को उदयपुर लाना

महाराणा संग्रामसिंह दूसरे की मृत्यु के बाद शाहपुरे का राजा उम्मेदसिंह पुनः स्वतंत्र होने का प्रयास करने लगा।[3] इस पर महाराजा जगतसिंह ने शाहपुरा को पूरी तरह अधीन करने का विचार किया। महाराणा ने सादडी राजराणा रायसिंह झाला और भींडर महाराज खुशालसिंह शक्तावत को आज्ञा प्रदान की कि वे मध्यस्थ होकर युक्ति द्वारा समझा-बुझाकर उम्मेदसिंह को उदयपुर महाराणा की सेवा में बुला लावें। इस पर दोनों सरदारों ने महाराणा को निवेदन किया कि यदि वह उसके अपराधों को क्षमा करने का वचन दे तो वे उसको उदयपुर बुलवा सकते हैं। महाराणा के वचन देने पर राजराणा रायसिंह और महाराज खुशालसिंह ने शाहपुरा राजा से सम्पर्क किया और उनके आश्वासन पर 1750 ई. में राजा उम्मेदसिंह उदयपुर आ गया।[4] किन्तु महाराणा जगतसिंह ने अपने वचन का पालन नहीं किया। शाहपुरा राजा के उदयपुर आगमन पर उसका विधिवत स्वागत करने के बजाय बदले की भावना के वशीभूत होकर उसने तीन बार दुन्दुभी बजवाई और हाथी पर सवार होकर शाहपुरा राजा की ओर ससैन्य कूच किया, जैसे कि वह विजयार्थ प्रस्थान कर रहा हो। जब राजराणा रायसिंह को महाराणा की इस कार्यवाही का पता चला तो उसने तत्काल शाहपुरा राजा को संदेश भिजवाकर सावधान किया और स्वयं अपने सैन्य बल के साथ महाराणा के सन्मुख आकर खड़ा हो गया। महाराज खुशालसिंह भी अपने सैनिक लेकर राजराणा से आ मिला। राजराणा ने महाराणा को कहा कि 'शाहपुरा राजा हमारे कहने और आश्वासन देने पर उदयपुर आये हैं, अतएव हम वचनबद्ध है। यदि आपका इरादा उन पर हमला करने का है तो उससे पहिले हमें मारना होगा।' महाराणा का उन पर

---

2 वीरविनोद, भाग 2, ले श्यामलदास, पृ 1230

3 शाहपुरा राजा फूलिये परगने पर अपना स्वतत्र अधिकार प्रकट कर रहा था, जबकि महाराणा ने 1737 ई में मुगल बादशाह से फूलिया अपने नाम लिखवा लिया था।—उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 633

4 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 69-70

हमला करने का साहस नही हुआ और कुपित होकर वापस लौट गया। राजराणा रायसिह और महाराज खुशालसिह दोनों ने शाहपुरा नरेश से क्षमा-याचना करते हुए उसको सुरक्षित देबारी के बाहर छोड़कर शाहपुरा की ओर रवाना किया।[5]

हीता में मराठों से लड़ाई और राजराणा रायसिंह का घायल होना

उपरोक्त घटना के बाद उदयपुर में उपस्थित सभी सरदार अपनी-अपनी जागीरो की ओर रवाना हो गये। जब राजराणा रायसिंह सादड़ी की ओर प्रस्थान करने हेतु तैयार हुआ तो उसको सूचना मिली कि हट्टू नामक एक मराठा सेनापति ने आठ हजार सेना सहित देवलिया घाटे के मार्ग से प्रवेश करके मेवाड़ के बानसी, घरियावद, कानोड़ आदि गावों को लूट लिया है और वह मेवाड़ में आगे बढ़ रहा है तथा सादड़ी पर भी उसके हमले का खतरा पैदा हो गया है। उस समय महाराणा के पास उदयपुर में विशेष सैन्यबल मौजूद नही था। महाराणा ने राजराणा को मराठों को आगे बढ़ने से रोकने का आदेश प्रदान किया। राजराणा के पास उस समय केवल चार सौ के लगभग सवार थे। वह उनको साथ लेकर उदयपुर से रवाना हुआ और हीता नामक स्थान पर मराठा सेना से जा भिड़ा।[6] उस समय सादडी जाकर अधिक सैनिक एकत्रित करने का उसके पास समय नहीं था। किन्तु उसने अपने छोटे भ्राता ताणाराज नाथजी को सादडी में सूचना भिजवा दी। इस पर नाथजी भी तत्काल सादड़ी से सैन्यबल लेकर राजराणा से आ मिला। समाचार मिलने पर दिन में सलूम्बर से नाहरसिह चूंडावत भी अपने पचीस सवार लेकर हीता आ पहुंचा। दिन भर युद्ध चलता रहा। ताणाराज नाथजी खेत रहा। राजराणा के अधिकांश सैनिक मारे गये और लगभग पचीस सवार ही बचे होंगे कि उस समय भींडर महाराज खुशालसिंह भी चार सौ सवार सैनिक लेकर रणक्षेत्र में आ मिला। इसके कारण युद्ध की बाजी बदल गई। मराठों को पराजित होकर पीछे हटना पडा। राजराणा रायसिंह प्रातःकाल से लेकर दिन में कई घंटों तक वीरतापूर्वक अदम्य रूप से लड़ता रहा। उसने बड़ा युद्ध-कौशल और साहस का परिचय दिया। उसके कारण वह बुरी तरह घायल हो गया। मराठों को खदेड़ने के बाद महाराज खुशालसिंह राजराणा को घायलावस्था में भींडर लेकर आ गया और चिकित्सा करवाई। उस समय एक बार तो मराठों ने भींडर को घेरने का प्रयास किया किन्तु अपनी स्थिति कमजोर देखकर वे वापस चले गये।[7]

---

5 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 69-70

6 वही, पृ 70

हट्टू नामक मराठा सेनापति कौन था? इसका पता नही चलता। इस मराठा आक्रमण के सम्बन्ध में श्यामलदास और गौ ही ओझा अपने ग्रथों में विशेष सूचना नही प्रदान करते। डॉ के एस. गुप्त कृत मेवाड़ एड दी मराठाज़ पुस्तक में भी इसका उल्लेख नहीं है। अवश्य ही, ओझाजी ने अपनी पुस्तक उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृष्ट 837 में लिखा है कि सादड़ी का राजराणा रायसिंह हीता के पास मराठों से युद्ध करते हुए घायल हुआ था।

7 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 71

महाराणा प्रतापसिंह दूसरे की नाराजगी : रायसिंह का डूंगरपुर जाना

5 जून, 1751 ई. को महाराणा जगतसिंह का देहान्त हो गया। उस समय उसका ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह अपने पिता की नाराजगी की वजह से कैद में था। सलूंवर रावत जैतसिंह ने उसको कैद से निकाल कर गद्दी पर बिठाया। महाराणा प्रतापसिंह (दूसरा) राजराणा रायसिंह (दूसरा) से बहुत नाराज था, चूंकि पिता-पुत्र (महाराणा जगतसिंह और पुत्र कुंवर प्रतापसिंह) के बीच के गृह-कलह में राजराणा रायसिंह सदैव महाराणा जगतसिंह का पक्षधर रहा था। प्रतापसिंह ने महाराणा बनते ही उन सब सरदारों से बदला लेना चाहा, जिन्होंने उसके पिता का साथ दिया था। महाराणा प्रतापसिंह के इस प्रकार के प्रतिशोधपूर्ण इरादे को देखकर स्वर्गीय महाराणा के पक्षधर रहे कई सरदार महाराणा जगतसिंह का छोटा भाई नाथजी, देवगढ रावत जसवंतसिंह, सादड़ी राजराणा रायसिंह, शाहपुरा राजा उम्मेदसिंह[8], रावत फतेसिंह तथा अन्य सरदार राजनगर में एकत्र हुए और उन्होंने महाराणा प्रतापसिंह से मेल करने हेतु प्रयास किये किन्तु महाराणा राजी नही हुआ। वे सभी एक साथ पहले उदयपुर आये और फिर गुडली तक जाकर अलग-अलग होकर अपने-अपने स्थानों की ओर प्रस्थान कर गये।[9] उस समय सादड़ी राजराणा रायसिंह महाराणा के साथ किसी प्रकार के झगड़े से बचने के लिये सादड़ी न जाकर डूंगरपुर महारावल के पास चला गया, जिसने राजराणा को बड़े सम्मान के साथ मेहमान बनाकर डूंगरपुर में रखा। राजराणा कुछ अर्से तक डूंगरपुर में रहकर वापस सादड़ी चला आया।[10]

भीलों के विद्रोह को दबाने में सहयोग

उपरोक्त घटना के कुछ समय बाद ही मेवाड के पहाड़ी भाग में भोराई, सारंग आदि पालों के भीलों-मीणों ने विद्रोह कर दिया और राज्याज्ञा की अवहेलना करते हुए सर्वत्र अशांति और उत्पात मचाना शुरू कर दिया। महाराणा ने पहाड़ी भाग के निकटवर्ती सभी जागीरदारों को भीलों के विद्रोह को दबाने में सहायता करने के पर्वाने भिजवाये। उस समय महाराणा की आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य मान कर राजराणा रायसिंह डूंगरपुर से रवाना होकर (तब तक वह डूंगरपुर में था) सादडी आया और अपने सैनिक लेकर विद्रोही पालों की ओर प्रस्थान किया, जहां उसने भीलों को काबू में करने में बड़ा योगदान दिया। जब महाराणा प्रतापसिंह को राजराणा रायसिंह द्वारा की गई इस कार्यवाही का पता चला तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। महाराणा ने अपनी प्रतिशोध की भावना भुला कर राजराणा को उदयपुर बुलवाया और विशेष खिलअत आदि देकर दरबार में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई उसके बाद उसको सादड़ी जाने की आज्ञा दी।[11]

10 जनवरी, 1754 ई. को महाराणा प्रतापसिंह का निधन हो गया और उसका ज्येष्ठ पुत्र राजसिंह दूसरा ग्यारह वर्ष की आयु में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। स्वर्गीय महाराणा प्रतापसिंह

---

8 शाहपुरा राजा ने बाद में महाराणा जगतसिंह से मेल कर लिया था।

9 Mewar and the Marathas Relations by K S. Gupta, p 71

10 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 74

11 वही।

का विश्वसनीय रहा सलूंबर का जागीरदार रावत जैतसिंह उसका मुसाहिव रहा। वालक राजसिंह सात वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहा। ये सात वर्ष मेवाड़ की भारी बर्वादी और पतन के वर्ष रहे। महाराणा की वाल्यावस्था तथा सरदारों के पारस्परिक कलह का लाभ उठाकर मराठों के झुंड वार-वार मेवाड़ पर धावा वोलने लगे और हर धावे में वे लाखों की सम्पत्ति लूट कर ले जाते थे। मेवाड़ की ओर से पंचोली काशीनाथ के सेनापतित्व में मराठों से लड़ने हेतु मेवाड़ की सेना मल्हारगढ़ की ओर भेजी गई, किन्तु उसको कोई सफलता नहीं मिली और सरदारों की आपसी फूट के कारण मराठों की विनाशलीला वढ़ती गई। परिणामस्वरूप चम्वल नदी के निकट के मेवाड़ के कई परगने कणजेड़ा, जारड़ा, हिंगलाजगढ़, जामणिया, वूडसू आदि मराठों को ठेके पर देकर उनसे मुक्ति प्राप्त की गई।[12]

3 अप्रेल, 1761 ई. को अल्पायु में महाराणा राजसिंह का लाऔलाद देहान्त हो गया। उसकी जगह राजसिंह का चाचा और स्वर्गीय महाराणा जगतसिंह का छोटा पुत्र महाराणा अरिसिंह (अड़सी) मेवाड़ का महाराणा वना।

रायसिंह का देहान्त

सादड़ी राजराणा रायसिंह का भी उसी वर्ष 1761 ई. में महाराणा राजसिंह के देहावसान के कुछ समय वाद, सादड़ी में निधन हो गया। राजराणा रायसिंह भी अपने पूर्ववर्ती राजराणाओं की भांति वीर योद्धा, योग्य प्रशासक एवं कुशल राजनीतिज्ञ रहा। उसकी महाराणा पद के प्रति निष्ठा और वफादारी निरन्तर वनी रही। महाराणा प्रतापसिंह की नाराजगी के वावजूद वह महाराणा विरोधी गुटों में शरीक नहीं हुआ और सरदारों के षड़यंत्रों एवं हिंसक कार्यवाहियों में भागीदार नहीं रहा। वह निरन्तर मेवाड़ की सुरक्षा के लिये सचेष्ट था। महाराणा का आदेश होने पर वह अपने पास अल्प संख्या में सवार होते हुए भी मराठों से लड़ने हेतु हींता जा पहुँचा। हींता की लड़ाई में उसने वड़ी वीरता और साहस दिखाया और घायल हो जाने पर भी वह मराठों को रोकने के लिये दिन भर युद्ध करता रहा, जव तक कि भींडर महाराज अपने सवार लेकर सहायतार्थ नहीं आ पहुँचा।

---

12 वीरविनोद, भाग 2, ले. श्यामलदास, पृ 1540
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले. गौ ही ओझा, पृ 645

डॉ के. एस. गुप्त ने लिखा है कि 1757-58 के भीषण सकटपूर्ण वर्ष में रूपाहेली ठाकुर शिवसिंह राठोड़ ने महाराणा के मर्जीदा और मुसाहिब सलूबर रावत जैतसिंह के कहने से महाराणा की ओर से मेवाड़ में लूटमार करने से मराठों को मनाने और रोकने में वड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस पर महाराणा ने सादड़ी पट्टे के चार गाव सादड़ी, यशवंतपुरा, राजपुरा और लाडपुरा का पट्टा रूपाहेली ठाकुर को लिख दिया था। (Mewar and the Maratha Relations by Dr. K. S Gupta, p 75) किन्तु बड़ीसादड़ी ठिकाने की पत्रावलियों में उसका उल्लेख नहीं मिलता। *यदि ऐसा कोई आदेश हुआ भी, तो उसकी क्रियान्विति नहीं हुई होगी।* उस समय की चूंडावतों की झालाओं के प्रति चल रही नाराजगी को देखते हुए सम्भव है कि जैतसिंह चूडावत ने महाराणा के नाम से ऐसा कोई आदेश प्रसारित करा दिया हो, जिसमें सादड़ी जागीर के प्रधान गाव को भी जागीर से अलग करके रूपाहेली ठाकुर को दे दिया गया।

रायसिंह के विवाह और संतति

राजराणा रायसिह ने निम्नलिखित विवाह किये—

1. देवगढ रावत संग्रामसिह चूंडावत की पुत्री अजबकवर के साथ,
2. आमेट रावत केसरीसिह चूडावत की पुत्री सरूपकंवर के साथ
3. बिजालिया राव सवाई मांधाता पवार की पुत्री अजबकवर के साथ,
4 घाणेराव ठाकुर दुलेसिह राठोड की पुत्री सरूपकंवर के साथ,
5 बिनोता रावत हरीसिह शक्तावत की पुत्री सरदारकवर के साथ
6 शाहपुरा राजाधिराज उम्मेदसिंह राणावत की पुत्री गुलाबकंवर के साथ
7. माणचा ठाकुर बख्तावरसिंह की पुत्री इन्द्रकवर के साथ।

देवगढ की चूंडावत रानी अजबकवर से कुवर जालमसिंह का जन्म हुआ। माणचा की इन्द्रकवर से राजकुमार सुरताणसिह (सुलतानसिह) का जन्म हुआ।[13]

बड़वा ईश्वरसिह की पोथी में उपरोक्त में से केवल शाहपुरा राजाधिराज की पुत्री से विवाह होने का उल्लेख है। इस पोथी के अनुसार रायसिंह द्वारा अन्य विवाह लूणदा, बखतगढ़, सलूंबर, थाना, बानसी, पीसागन और घमोतर ठिकानों में किये गये।

राजराणा रायसिह के तीन पुत्र और दो पुत्रियां होने का उल्लेख है—

1. कुवर सुरताणसिह (सुलतानसिह) जो सादड़ी पाट बैठा।
2. कुवर जालमसिह
3 कुंवर लालसिह (बडवा मदनसिह की पोथी के अनुसार)[14]

पुत्रियां—

1. अजबकंवर, जिसका विवाह बादरवाड़ा ठाकुर जोधसिंह राठौड के साथ हुआ।
2 शभूकंवर (बडवा मदनसिह की पोथी के अनुसार)[15]

---

13 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 75
बड़ीसादड़ी ठिकाने के प्राचीन बही

14 बड़वा मदनसिंह की पोथी।

15 बड़ी सादड़ी ठिकाने की प्राचीन बही में भी केवल कुवर जालमसिंह और कुवर सुरताणसिंह दो नाम ही दिये गये हैं। कुवर जालमसिंह का अमेरा ? में मारे जाने का उल्लेख है।

13. राजराणा सुरताणसिंह (सुलतान सिंह) तृतीय (1761-1798 ई.)

3 अप्रेल, 1761 ई. को महाराणा राजसिंह (दूसरे) का देहावसान होने के कुछ अर्से वाद ही उसी वर्ष राजराणा रायसिंह का भी सादड़ी में निधन हो गया। उसके स्थान पर उसका दूसरा पुत्र सुरताणसिंह (सुलतानसिंह) तीसरा सादड़ी की पाट बैठा। बड़े पुत्र जालमसिंह की मृत्यु पहिले ही हो चुकी थी। यद्यपि ठिकाने पर खालसा भेजने और वापस उठंत्री आदि की कार्यवाही तो हो गई किन्तु मेवाड़ की तत्कालीन आंतरिक परिस्थितियों के कारण नये महाराणा अरिसिंह द्वारा तत्काल नये राजराणा सुरताणसिंह की तलवारबन्दी की रस्म पूरी नहीं की जा सकी। राजराणा सुरताणसिंह की तलवारबन्दी की रस्म वि.सं. 1822, भादवा सुदी 2 (1765 ई.) के दिन महाराणा अरिसिंह द्वारा उदयपुर राजमहलों में सम्पन्न की गई।[1]

महाराणा अरिसिंह से विरोध

महाराणा राजसिंह (दूसरे) के मरने पर स्वर्गीय महाराणा जगतसिंह के दूसरे पुत्र अरिसिंह को गोद लिया गया था। यह महाराणा वहुत हठी, अहंकारी और क्रोधी था। वह शुरू से ही अपने सरदारों के साथ वड़ा स्वेच्छाचारी और अपमानजनक व्यवहार करने लगा। एकलिंगजी के दर्शन से उदयपुर लौटते समय उसने अनावश्यक रूप मे क्रोधित होकर अपने साथ के छड़ीदारों द्वारा कई सरदारों के घोड़ों की पीठ पर चावुक मारने के आदेश दिये। इससे सभी सरदारों को वड़ी ग्लानि हुई और वे इस अपमानपूर्ण व्यवहार से उसके विरोधी हो गये। सादड़ी राजराणा जैसे सरदार भी जो पहिले के सभी संकटपूर्ण अवसरों, पिता-पुत्र के झगड़ों और महाराणा विरोधी सरदारों द्वारा किये गये षड़यंत्रों के मौकों पर महाराणा का हर प्रकार से साथ देते रहे थे, महाराणा अरिसिंह के विरोधी हो गये। वे स्वर्गीय महाराणा राजसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसकी झाला महारानी की गर्भ से उत्पन्न पुत्र रतनसिंह का पक्ष लेकर उसको मेवाड़ राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी घोषित करके उसको अरिसिंह के स्थान पर मेवाड़ का महाराणा वनाने का प्रयत्न करने लगे। ऐसे वड़े सरदारों में देवगढ़ रावत जसवंतसिंह, सादड़ी राजराणा सुरताणसिंह, वेदला राव रामचन्द्र, गोगूंदा राजराणा जसवंतसिंह, देलवाड़ा राजराणा राघवदेव, वेगूं रावत मेघसिंह, कोठारिया रावत फतेसिंह, भींडर रावत मोहकमसिंह आदि प्रमुख रहे।[2]

मेवाड़ राज्य में उत्तराधिकार को लेकर अरिसिंह और वालक रतनसिंह के बीच जो विवाद

---

1 वड़ीसादड़ी ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

2. वीरविनोद, भाग 2 ले श्यामलदास, पृ 1543-44
Mewar and the Maratha Relations by Dr. K.S Gupta. p. 81
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2. ले गौ ही ओझा, पृ 647

शुरू हुआ, उसमें सादड़ी के राजराणा सुरताणसिंह तीसरे ने रतनसिह का पक्ष लिया। प्रथम, महाराणा अरिसिंह अपनी अल्पबुद्धि और हठवादिता के कारण मेवाड़ के सामंतवर्ग के साथ अपमानजनक व्यवहार कर रहा था और सादड़ी राजराणा की तलवारबन्दी करके जागीर के अधिकार प्रदान करने की विधि को सम्पन्न करना टाल रहा था, दूसरे, राज्यगद्दी का समुचित दावेदार बालक रतनसिंह झाली रानी से उत्पन्न हुआ था, जो गोगूंदा के राजराणा जसवंतसिंह झाला की पुत्री थी[3] और सादडी राजराणा के हलवदी झाला परिवार की थी। तीसरे, महाराणा प्रतापसिंह (दूसरे) के राज्यकाल से ही सलूबर के चूडावत रावत जैतसिंह के प्रावल्य के कारण और उसके सादड़ी राजराणा का विरोधी होने के कारण सादड़ी ठिकाने को कई प्रकार से हानि पहुंचाने की कार्यवाहियां की जा रही थी, जो महाराणा अरिसिंह के गद्दीनशीन होने के बाद भी चलती रही। अतएव राजराणा सुरताणसिंह भी अरिसिंह विरोधी सामंतीदल में शरीक हो गया।

उधर 1763 ई. में मल्हारराव होलकर ने मेवाड़ राज्य पर चढ़े हुए खिराज की वसूली के लिये मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी और सेना लेकर ऊंठाले तक आ पहुँचा। उस समय महाराणा अरिसिह ने उसको 51 लाख रुपये देकर उससे पीछा छुडाया। किन्तु होलकर ने मेवाड़ के उन सभी परगनों पर अधिकार कर लिया जो उसको खिराज चुकाने हेतु ठेके पर दिये गये थे। इसमें मराठा सरदार ने भारी स्वेच्छाचारिता से काम लिया।[4]

उज्जैन की लड़ाई में सिंधिया का साथ देना

इस बीच महाराणा अरिसिंह ने अपने पद का दुरुपयोग करते हुए महाराज नाथसिंह को धोखे से मरवा डाला और सलूंबर के रावत जोधसिंह को पान के बीड़े में जहर देकर उसका भी प्राणान्त कर दिया। इन कार्यवाहियों से मेवाड़ का सामंतवर्ग कुपित हो गया और अधिकाश ने राज्य विरोधी कार्यवाहियां शुरू कर दी। इस स्थिति में महाराणा की स्वयं की सुरक्षा भी खतरे में पड़ गई। उसने सिन्धी मुसलमान सिपाहियों की भर्ती करके अपनी एक केन्द्रीय सेना खड़ी कर ली। इसी बीच सामंतों के पारस्परिक मतभेद एवं स्वार्थों का लाभ उठा कर महाराणा ने प्रलोभन आदि देकर देलवाड़े के राजराणा राघवदेव झाला[5] तथा शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंह को अपने पक्ष में कर लिया। कोटा का उभरता हुआ चतुर कूटनीतिज्ञ झाला जालिमसिंह भी उस समय महाराणा की सेवा में आ गया। इस भांति अरिसिंह ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। ऐसी स्थिति में महाराणा अरिसिंह विरोधी एवं रतनसिंह पक्षीय सामंत दल की ओर से देवगढ़ रावत जसवतसिह चूंडावत ने मराठा सरदार माधवराव सिंधिया को सवा करोड़ रुपया देना मंजूर

---

3 वीरविनोद, भाग 2, ले श्यामलदास, 1543-44

4 वही, 1546-47

5 झाला राघवदेव को बाद में सन्देह के कारण महाराणा अरिसिंह ने मरवा डाला। उदयपुर राज्य का इतिहास, ले गौ ही ओझा, पृ 651

करके महाराणा के विरुद्ध अपनी मदद के लिये बुलाया। उस समय देवगढ़, कोठारिया, वेदला, भीडर, गोगूंदा, वेगूं आदि मेवाड़ के कई वड़े सरदारों के साथ सादड़ी राजराणा सुरताणसिंह भी अपना सैन्य वल लेकर सिंधिया के साथ हो गया। 13 जनवरी, 1769 ई. को उज्जैन के पास महाराणा द्वारा भेजी गई सेना के साथ सिंधिया की इस सम्मिलित सेना का युद्ध हुआ। युद्ध का अन्त महाराणा की सेना की पराजय के साथ हुआ। युद्ध में सलूंवर रावत पहाड़सिंह, वनेड़ा का राजा रायसिंह और शाहपुरे का राजा उम्मेदसिंह मारे गये, जो महाराणा की सेना के साथ थे। महाराणा की सेना का एक अन्य योद्धा झाला जालिमसिंह मराठों द्वारा कैद कर लिया गया, जिसको मराठों को धनराशि देकर छुड़वाया गया। युद्ध में सादड़ी का झाला कल्याण, दौलामियां और मानसिंह घायल हुए।[6]

मेवाड़ राज्य का विघटन

उज्जैन की विजय के वाद माधवराव सिंधिया ने आगे वढ़कर उदयपुर को घेर लिया। अंत में महाराणा के प्रधान अमरचंद वड़वा ने जुलाई 1769 ई. में साठ लाख रुपये देना स्वीकार करके सिंधिया से संधि कर ली। कुल रुपया नकद नहीं दे पाने के कारण शेष रुपया चुकाने की एवज में मेवाड़ राज्य के जावद, जीरण, मोरवण आदि परगने उसके गिरवी रख दिये गये, जिनको आगे जाकर सिंधिया ने अपने अधिकार में कर लिया। संधि के अनुसार रतनसिंह को कुम्भलगढ़ से हटाकर मंदसौर भेजने का निर्णय किया गया।[7]

उधर रतनसिंह की सात वर्ष की आयु में शीतला की वीमारी से मृत्यु हो गई। किन्तु विरोधी सामंतों ने महाराणा के प्रति नाराजगी के कारण रतनसिंह की आयु के एक दूसरे लड़के को रतनसिंह करार देकर महाराणा को पदच्युत करने का उद्योग जारी रखा।[8] उपर्युक्त संधि करके और रुपया लेकर सिंधिया लौट गया किन्तु उसने रतनसिंह को कुम्भलगढ़ से मंदसौर हटाने की शर्त पूरी नहीं की। देवगढ़ रावत और विरोधी सामंतों ने महाराणा के विरुद्ध लड़ाई जारी रखी। इस पर महाराणा अरिसिंह ने उदयपुर की रक्षार्थ मारवाड़ के महाराजा विजयसिंह से संधि करके उसके द्वारा तीन हजार सवार नाथद्वारे में रखना तय करके उसके व्यय की एवज में गोड़वाड़ का परगना अस्थायी तौर पर महाराजा को दे दिया, जो महाराजा ने फौज हटाने के वाद भी नहीं लौटाया और वह सदा के लिये मेवाड़ राज्य के हाथ से निकल गया।[9]

---

6 वीरविनोद, भाग 2, ले. श्यामलदास, पृ 1556-58
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 76
कल्याणसिंह झाला राजराणा चन्द्रसेन का छोटा वेटा था।

7. वीरविनोद, भाग 2, ले. श्यामलदास, पृ. 1560-66
उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले. गौ. ही. ओझा, पृ 656-657

8 वीरविनोद, भाग 2, ले. श्यामलदास, पृ 1550, 1571-73

9 वही

राजराणा द्वारा महाराणा हम्मीरसिंह का साथ देना

9 मार्च, 1773 ई. को आखेट के समय महाराणा अरिसिंह बूंदी के राव अजीतसिंह द्वारा मारा गया। उसके स्थान पर उसका अल्पवयस्क पुत्र हम्मीरसिंह (दूसरा) मेवाड़ का महाराणा वना। हम्मीरसिंह के छ वर्षीय राज्यकाल में मेवाड राज्य की दुर्दशा में अत्यधिक वृद्धि हुई। दरबारी षडयंत्र के फलस्वरूप मेवाड राज्य के रक्षक, हितैषी एवं योग्य प्रशासक राज्य के प्रधान अमरचन्द बड़वा की हत्या कर दी गई। वेतन नही मिलने से महाराणा अरिसिंह द्वारा नियुक्त सिंधी सिपाहियों ने नाहरनगरे में महलों की ड्यौढ़ी को घेरकर धरना दिया तथा धमकियां देने लगे। उस समय सादड़ी राजराणा सुरताणसिह, महाराज बाघसिंह, महाराज अर्जुनसिंह, महाराज गुमानसिंह आदि सरदार अपने-अपने हथियार लेकर उनसे लड़ने के लिये उनके सामने आ खड़े हुए। इस पर सिंधी सिपाही शांत हो गये।[10]

रींछेड़ की लड़ाई में महाराणा की सहायता और महाराणा द्वारा उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि करना

महाराणा हम्मीरसिंह की गद्दीनशीनी के साथ ही मेवाड राज्य में राजनीतिक समीकरण वदल गये। महाराणा पद के प्रति वफादारी की भावना रखने वाले और मेवाड़ की एकता के इच्छुक सादड़ी राजर"" सुरताणसिंह सहित कई सरदार विरोध छोड़ कर महाराणा के साथ हो गये। 1776 ई. में जव तथाकथित रतनसिंह को कुम्भलगढ़ से निकालने हेतु महाराणा हम्मीरसिह की फौज ने कूच किया तो उस समय महाराणा का पर्वाना मिलने पर सादड़ी राजराणा सुरताणसिंह अपना सैन्यबल लेकर मेवाड की फौज में शरीक हुआ। रींछेड़ गांव के पास रतनसिंह के पक्षधर और महाराणा विरोधी सरदारों के अग्रणी देवगढ के रावत राघवदेव चूंडावत की सेना के साथ लड़ाई हुई, जिसमें राघवदेव पराजित हुआ और वह भाग कर कुम्भलगढ़ के किले में जा छिपा। उस समय किले को लेना सरल नही समझकर महाराणा वापस उदयपुर लौट आया।[11] सादड़ी के राजराणा सुरताणसिंह द्वारा नाहर मगरे में सिंधियों के उपद्रव को दवाने में सहायता करने, रावत राघवदेव के विरुद्ध लड़ाई में साथ देने और किले को उससे खाली करवाने में सहयोग देने तथा वेगू रावत की राज्य विरोधी कार्यवाहियां[12] को रोकने में सहयोग देने के लिये राजराणा की सराहना करते हुए महाराणा हम्मीरसिंह ने जेठ सुदी

---

10 वही, पृ 1578

11 वही, पृ 1700

12 वेगू रावत मेघसिंह रतनसिंह के पक्षधरों में से था। उसने खालसे के कुछ परगनों पर अधिकार कर लिया था। इस पर महाराणा द्वारा चाहने पर माधवराव सिंधिया वेगू पर चढ़ आया। उस समय बेगू रावत मेघसिंह ने लगभग पाच लाख रुपया तथा सिंगोली के 36 गाव और भींचोर के 18 गाव तथा अन्य परगनों के 48 गाव सिंधिया को दे दिये। इससे महाराणा को कोई लाभ नही हुआ, इसके विपरीत मेवाड़ के कई परगने सिंधिया ने हड़प लिये और वह वापस चला गया।—उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 669

14, सं. 1833 को राजराणा सुरताण सिंह को एक पर्वाना भेजा, जिसमें राजराणा को परम्परागत रूप से प्राप्त कुरव, पद-प्रतिष्ठा एवं लवाजमे आदि को पुन: मान्य किया गया। उसके सिवाय 25000 रुपये रोकड़ का परगना और उदयपुर में रहने के व्यय के 5000 रुपये वांध दिये।[13]

महाराणा द्वारा राजराणा की सराहना

सिंधी सिपाहियों का विद्रोह, वेतन का भुगतान नहीं होने से, फिर भड़क उठा, यहां तक कि राजमाता को विवश होकर अपने वालक राजकुमार भीमसिंह को उनके पास 'ओल' में रखना पड़ा। अंत में उनको वेतन की एवज में जागीरें देकर शान्त करना पड़ा। उधर अहिल्यावाई होलकर ने भी महाराणा को डरा कर मेवाड़ राज्य का नींवाहेड़ा परगना भी हड़प लिया। राजमाता द्वारा भींडर के महाराज मोहकमसिंह को महाराणा का मुसाहिव वनाने से चूंडावतों और शक्तावतों के वीच आपसी लड़ाई अत्यधिक तेज हो गई। इस विनाश, विद्रोह और विघटन की परिस्थितियों में महाराणा हम्मीरसिंह का 6 जनवरी, 1778 ई. को अल्पायु में देहान्त हो गया।

मराठों को मेवाड़ से निकालना

महाराणा हम्मीरसिंह के स्थान पर उसका छोटा भाई भीमसिंह 10 वर्ष की आयु में मेवाड़ का महाराणा वना। तव रावत भीमसिंह के नेतृत्व में राज्य में चूंडावतों का प्रावल्य हो गया और गृह-कलह हिंसक रूप लेकर चलता रहा। 1787 ई. में लालसोट की लड़ाई में जोधपुर एवं जयपुर की सम्मिलित सेना के हाथों मराठों की पराजय की घटना हुई, इससे राजपूताने में मराठा शक्ति को भारी आघात पहुँचा। ऐसी स्थिति देखकर मराठों से मेवाड़ के परगने वापस लेने के इरादे से मेवाड़ और कोटा की संयुक्त सेना ने कूच करके नींवाहेड़ा, नकुम्प, जीरण, जावद, सिंगोली, रामपुरा आदि परगनों से मराठों को भगा दिया। इस अभियान में महाराणा की ओर

---

13 श्री गणेश प्रसादातु श्री रामो जयति श्री एकलिंग प्रसादातु
भालो सही

स्वस्ती श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री हमेरसींहजी आदेशात राजरणा सुरतानसींह कस्य अप्रंच राघोदेव फोज लेकर कुंभलगढ रा किला में जाय वेटो तथा सींधी अवदुल रहीम आदलवेगोत खरचा तनखा व रुपीया बावत नाहरमगरे आय मरदानी डोडी गेरो गाल्यो जी पर या दोई मोका पर राजरणा अजाजी री तरेह स्यामखोरी सुरह कर कलो खाली करायो तथा सीधी वीलोचारो घेरो उठाया जी सुं परवानो कर देवाणो है जींरी वीगत—

छत्र छाहांगीर चमर सदीप सरस्ते बहाल रहेगा ने इजत सदीप री है जी में कसर पडेगा नहीं

सवाय परगणो 25000 रुपया रो रोकड़ उदेपुर रा खरचा रा अटे रहेवो होवे जतरे 5000 रुपया

नकारो एक डंक्यो बड़ी पोल सुदी सोना रा गेहणा सुदी गोडो कवुल सुरत वलाणो वगस्यो, हाथीं दिलदरयाव बगस्यो

ऊपर लिख्या मुजब म्हारा बस रो सींसोदो होवेगा सोतो लोपेगा न्हीं और वेगूंवाला खालसाही परगणा दाबे लीधा सो वणी माहे मदद राखसी सं. 1833 वरसे जेठ सुदी 14 गुरे परवानगी श्री मुख लीखता मोतीराम बोल्यो।

से पर्वाना प्राप्त होने पर सादड़ी राजराणा सुरताणसिंह अपना सैन्यबल लेकर मेवाड़ की सेना के साथ रहा।[14]

हड़क्याखाल की लड़ाई में राजराणा का घायल होकर कैद होना

मराठों की पराजय से क्षुब्ध होकर अहिल्याबाई होलकर ने एक बड़ी सेना मेवाड़ पर भेजी। उसका मुकाबला करने के लिये महता मालदास की अध्यक्षता में मेवाड़ की सेना ने कूच किया। इस सेना में सादड़ी राजराणा झाला सुरताणसिंह, देलवाड़े का राजराणा झाला कल्याणसिंह, कानोड़ रावत जालिमसिह, सनवाड़ का बाबा दौलतसिंह आदि राजपूत सरदार अपनी सेनाओं को लेकर सिंधी सिपाहियों की सेना के साथ शरीक हुए। फरवरी, 1788 ई. में हड़क्याखाल स्थान के पास दोनों सेनाओं के मध्य भीषण लड़ाई हुई। लडाई में महता मालदास सहित कई राजपूत योद्धा मारे गये। देलवाडे का झाला कल्याणसिंह और कानोड़ रावत जालिमसिंह घायल अवस्था में रणक्षेत्र से बचकर निकल गये। सादडी का राजराणा सुरताणसिंह वीरतापूर्वक युद्ध करता रहा। अंत में वह बुरी तरह घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा। उसको छोटे-बड़े चौरासी घाव लगे। सुरताणसिंह घायल अवस्था में मराठों के हाथ पड़ गया। मेवाड़ी सेना बुरी तरह पराजित हुई। उसके परिणामस्वरूप मेवाड की सेना द्वारा मराठों से वापस जीत लिये गये मेवाड़ के परगने पुनः हाथ से निकल गये।[15]

राजराणा सुरताणसिह को घायलावस्था में ले जाकर मराठों ने कैद कर लिया। महाराणा की ओर से उसको मुक्त कराने का कोई प्रयास नही किया। वह दो वर्ष तक मराठों की कैद में रहा। अंत में ठिकाने की ओर से मराठों को दो लाख रुपया देकर राजराणा सुरताणसिंह को मुक्त कराया गया।[16]

मेवाड़ पर मराठों का वर्चस्व

हड़क्याखाल की बुरी पराजय से मेवाड़ के सामंत वर्ग ने कोई सबक नहीं लिया। चूंडावतों और शक्तावतों ने राज्य में वर्चस्व के लिये आकोला और खैरोदा स्थानों पर आपस में युद्ध लड़े। चित्तौड़गढ़ से सलूंबर रावत भीमसिंह चूंडावत को निकालने हेतु अम्बाजी इंगलिया

---

14 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 676
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 76

15 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 677-678
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 76

16 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 76
गौ ही ओझा ने राजराणा को छुड़वाने की एवज में सादड़ी ठिकाने के चार गाव देना लिखा है। (उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ 873)
डॉ के एस. गुप्त ने उस बाबत ठिकाने की ओर से दो गाव दिया जाना लिखा है। (Mewar and the Maratha Relations, p 130)

द्वारा मदद लेने पर हमीरगढ़ और बसी के परगने भी मेवाड़ राज्य के हाथ से निकल गये। माधवराव सिंधिया की इच्छा और झाला जालिमसिंह के आग्रह पर सितंबर, 1791 ई. में महाराणा भीमसिंह ने सिंधिया से नाहरमगरे में मुलाकात की।[17] इस मुलाकात के समय सादड़ी राजराणा सुरताणसिंह, कोठारिया रावत विजयसिंह तथा अन्य प्रधान सरदार महाराणा के साथ में मौजूद रहे।

1791 ई. की नाहरमगरे की मुलाकात के बाद मेवाड़ का शासन माधवराव सिंधिया के प्रतिनिधि आंबाजी इंगलिया के हाथों में चला गया। इससे स्थिति और बिगड़ गई। आंबाजी ने चूंडावतों और शक्तावतों दोनों से लाखों रुपये वसूल किये। मेवाड़ अब सरदारों की आपसी लड़ाई के अलावा सिंधिया के ही दो अधिकारियों लकवा दादा और आंबाजी के प्रतिनिधि गणेशपंत के बीच की लड़ाई का अखाड़ा बन गया। यद्यपि सादड़ी राजराणा का मेवाड़ राज्य के सरदारों के किसी गुट विशेष के साथ रहना और खूनखराबे में भाग लेना नहीं पाया जाता किन्तु सरदारों द्वारा खालसा भूमि को हथियाने, उनकी और मराठा सरदारों की आपसी लड़ाइयों और लूटपाट की कार्यवारियों का सादड़ी ठिकाने पर बड़ा दुष्प्रभाव पड़ा। इसके परिणामस्वरूप राजराणा सुरताणसिंह के जीवन के अंतिम वर्षों में सादड़ी ठिकाने की आय बहुत कम हो गई।

राजराणा के निर्माण-कार्य और परोपकारिता

राजराणा सुरताणसिंह के काल में सादड़ी ठिकाने की सालाना आय तीन लाख रुपये[18] थी। उसके पास सात हाथी और तीन सौ अरबी घोड़े थे। उसके बारह नगारबंदी ठिकानेवाले जागीरदार उसकी धींगा गणगौर की सवारी में (सादड़ी में) शरीक होते थे।[19]

राजराणा सुरताणसिंह द्वारा निरन्तर लड़ाइयों में शरीक रहने के बावजूद उसके काल में सादड़ी में कई निर्माण कार्य हुए। राजराणा ने सादड़ी के दक्षिण की ओर एक तड़ाग एवं पहाड़ी

---

17. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 681
डॉ के. एस. गुप्त के अनुसार यह मुलाकात जुलाई, 1790 ई में हुई।—Mewar and the Maratha Relations, p 130

18 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 78
सादड़ी ठिकाने से खड़लाकड़ के रुपये की वसूली हेतु प्राप्त पर्वाने की प्रति पर्वाना महाराणा भीमसिंह का रणा सुरताण सिंह के नाम "सवत् 1841 के बरस के खड़ लाकड़ के रुपये भडार भरज्यो भातो दीन 1 प्रत रुपयो 1/= दीज्यो। प्रवानगी पचोली प्रताप।

19 ये जागीरदार निम्नलिखित थे—

1 तलावदा	2 सेमरवाड़ा
3 वागदरी	4 पालाखेड़ी
5 भियाणां	6 सरोड़
7 सेमल्या	8 मेताजी का खेड़ा
9 बबोरा	10 सेमलथली
11 मीडाणा	12 साकरियाखेड़ी

पर एक दुर्ग (सुलतानगढ़) बन गया, जिन पर एक लाख रुपया व्यय हुआ। राजराणा ने पारसोली का तालाब निर्मित करवाया। इनके अलावा बडी ओदी, गोरवड़ा ओदी, आदमाता मंदिर में सिंहासन, लालबाबा में कुंड का हौज, बाकड़ा पर कोट आदि कार्य भी करवाये। सं 1832 (1775 ई.) में बेदलावाली रानी फतेकवर ने नगर के उत्तर की ओर चांदरवां कारीगर द्वारा एक सुदर कुंड का निर्माण करवाया, जो अभी तक उसी रूप मे विद्यमान है। इसके निर्माण पर 72000 रुपये व्यय हुए।[20]

अतिम वर्षो को छोडकर राजराणा सुरताणसिंह (तीसरे) के काल में सादडी ठिकाना अच्छा आबाद और सम्पन्न रहा। बाद मे मराठो की लूटपाट और बदइतजामी के कारण ठिकाना बर्बाद होता गया।

विवाह और संतति

राजराणा सुरताणसिह द्वारा निम्नलिखित विवाह करना पाया जाता है—

1. भिणाय के नाहरसिह राठोड़ की पुत्री चादकंवर के साथ
2. बेदला राव रामचन्द्र चौहान की पुत्री फतेकंवर के साथ
3 सेलाणा महाराज उदयसिह राठोड की पुत्री रतनकंवर के साथ
4. बेगूं रावत माधोसिह चूडावत की पुत्री अजबकंवर के साथ
5. भैंसरोड रावत लालसिह चूंडावत की पुत्री सुखकवर के साथ
6 अठाणा रावत नाहरसिंह चूंडावत की पुत्री कुशलकंवर के साथ
7. हमीरगढ रावत मालदेव राणावत की पुत्री सरूपकंवर के साथ
8 तलवाड़ा के ठाकुर सालमसिह राठोड़ की पुत्री एजनकवर के साथ
9. भदेसर रावत दुलेसिंह चूडावत की पुत्री उम्मेदकंवर के साथ
10. आमेट रावत रोड़सिह चूंडावत की पुत्री अमृतकंवर के साथ

राजराणा सुरताणसिह के केवल एक पुत्र चन्दनसिंह, आमेट वाली चूंडावत रानी अमृतकंवर से हुआ।[21]

राजराणा सुरताणसिंह का मूल्यांकन

राजराणा सुरताणसिह तीन महाराणाओं अरिसिह, हम्मीरसिह और भीमसिह के राज्यकाल में ठिकानेदार रहा। उसका लगभग सारा काल मेवाड की आंतरिक कलह और सामंतों की आपसी लड़ाईयों तथा माधवराव सिंधिया और अहिल्याबाई होलकर के आक्रमणों और लूटपाट तथा मेवाड़ के विघटन का रहा। उसने आंतरिक गुटबाजी एवं चूडावतों और शक्तावतों की आपसी लड़ाइयों आदि से निरन्तर अलग रहने का प्रयास किया। सादड़ी के झाला अटूट रूप

---

20 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 77

21 वही।

से महाराणाओं के पक्ष में रहकर अपनी स्वामिभक्ति का पालन करते रहे, जो जागीरदारी प्रथा की प्रमुख विशेषता होती थी। केवल महाराणा अरिसिंह के काल में महाराणा के असंयत व्यवहार एवं अपमानजनक कार्यवाहियों तथा चूंडावतों के प्राबल्य के कारण झालाओं के साथ किये गये दुर्व्यवहार एवं भेदभाव की स्थितियों में सादड़ी राजराणा सुरताणसिंह को मजबूर होकर उस मार्ग को छोड़ना पड़ा। किन्तु महाराणा हम्मीरसिह के राज्यकाल से वह पुन महाराणा के प्रति अपनी स्वामिभक्ति का व्यवहार करने लगा।

सुरताणसिंह बुद्धिमान, कर्त्तव्यपरायण और धार्मिक भावना वाला व्यक्ति था। वह एक अच्छा शासक था और उसने अपने ठिकाने की तरक्की और प्रजा के हित की दृष्टि से कई कार्य किये। उसके द्वारा बनवाये गये कुंड और तालाब इस बात के प्रमाण हैं। वह एक कुशल योद्धा था। हड़क्याखाल की लड़ाई में वह घायल अवस्था में भी वीरतापूर्वक लड़ता रहा। वह अपनी धर्मपरायणता, उदारता, परोपकारिता और दानशीलता के लिये प्रसिद्ध हुआ।[22]

वि.सं. 1855 (1798 ई.) में राजराणा सुरताणसिंह का सादड़ी में निधन हो गया। उसका एक मात्र पुत्र चंदनसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ और सादड़ी में पाट बैठा।

---

22 उसकी परोपकारिता और दानी प्रवृत्ति के लिये कई जनश्रुतिया प्रचलित रही—

वेदलावाली चौहान रानी के विवाह के समय राजराणा सुरताणसिंह ने तीन लाख रुपये चारणों एव राव लोगों आदि को त्याग में दिये। तैरह सौ ऊट और एक हजार सात सौ घोड़े कविमडली में वितरित किये। उस समय कवि ने निम्मलिखित दोहे कहे—

तेरेसे टोडर दिया, सतरेसै केकाण।
द्रव्य झड़ी देवेरयो सादड़ी सुलतान॥
आधी गादी वेदलो आधी गादी राण।
सादड़ी सुलतान झाला, दूसरो दीवाण॥

एक समय राजराणा सुरताणसिंह द्वारा उदयपुर में एक छोटे घोड़े पर सवार होने पर किसी मनुष्य द्वारा उसके सम्बन्ध में शका व्यक्त की गई, इस पर दूसरे दिन अपनी हवेली से राजमहल जाते समय दो सौ घोड़े द्वारपालों को बाट दिये गये।

एक बार उदयपुर के एक चितारे ने सादड़ी के बड़े महल में एक मोर का उत्तम कलात्मक चित्र बनाया, जिसमें मीनाकारी का उत्कृष्ट काम किया गया था। उसकी कलात्मकता पर प्रसन्न होकर राजराणा सुरताणसिंह ने उसको देवदा और स्वयमपुरा गावों के आधे-आधे भाग दान स्वरूप जागीर में प्रदान कर दिये, जिनका उसकी सतानें उपभोग करती रही।

एक बार राजराणा सुरताण सिंह द्वारा केसरी (सुनहरी) सिंह का शिकार किया गया। इस अवसर पर उसने अपने सरदारो, कवियों और कर्मचारियों को साठ हजार रुपये प्रदान किये।
—श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले सीताराम शर्मा, पृष्ठ 77-78

14. राजराणा चन्दनसिंह (1798-1817 ई.)

विसं. 1854 (1798 ई.) में राजराणा सुरताणसिह का देहावसान होने पर उसका पुत्र चन्दनसिह उसके स्थान पर सादड़ी का राजराणा बना। इस समय उसकी बाल्यावस्था थी। सं.1854 भादवा बदी 4, शुक्रवार को नाहरनगरे के दरीखान मे विधिवत महाराणा भीमसिह द्वारा उसकी मातमपुर्सी और तलवारबन्दी की रस्में पूरी की गई। राजकुमार अमरसिह बालक था, अतएव वह (अमरसिह) धाय की गोद में बैठकर सादड़ी हवेली चन्दनसिह को लेने गया। बाडीमहल मे महाराणा ने उसकी तलवारबन्दी की तथा जागीर से खालसे की उठत्री के आदेश दिये।[1]

मेवाड़ राज्य और मराठे

राजराणा चन्दनसिह का लगभग बीस वर्षो का काल मराठों के भीषण विध्वंस और छीना-झपटी का काल रहा। इस दौरान सादडी ठिकाने की भारी दुर्व्यवस्था और पतन हुआ।

---

1 बड़ी सादड़ी की प्राचीन बही मे चन्दनसिंह की तलवारबन्दी सम्बन्धी विवरण इस भाति दिया गया है—

"कुवरजी बापजी श्री अमरसीगजी डेरे हवेली लेवा पदार्या बालक थे सो धायजी साथे गोद मे बैठ कर जनानी पालकी मे आये। राज (चन्दनसिंह) हवेली के दरवाजे तक सामने लेने गये फिर गादी पर बिठाये 1/= 5/= रुपये नजर नछरावल किये घोड़ा सरपाव गेणा की रकम नजर की दी फिर कुवरजी बापजी राज को लेकर महला पदारया श्रीजी बाड़ीमहल मे थे राज की सवारी आती देखकर नारा के दरीखाने आ गये राज पोल्या री उलीकानी जुहार को हुकम है—आया ने जुहार हुवो (बाद में) दरीखाने मुडा की बरोबर जाकर बैठे आधी घड़ी तक बैठे—पुरोहितजी हाथ मे तासक लेने आया श्रीजी ने तिलक किया आखा चढ़ाया बाद में पाडेजी से गेणा मगाया और दस्तूर मुताबिक (राज ने) गेणा पहनाया सरपेच पछे मोत्यारा कठी पहनाई—श्रीजी गेणा पहनाकर खड़े हुए और तलवार बन्दाई। तलवार बदावा बाद नज्र नछरावल हुई—पट्टा की उठत्री झेलाई और सारी राह मरजाद के वास्ते पगे लगाया—पछे बैठक पर बेठाया—पछे श्रीजी सीख का बीड़ा देकर (राज को) सीख बक्षी—राज जनानी ड्योणी नजराणो करता गया—(वहा से) बीडा लेकर हवेली लौटे।

(राज को) नजराणो इस प्रकार

1/- 5/- बडो नजराणो	5/= बैठक के वास्ते
5/= पट्टा के वास्ते	5/= दरीखाना का बीड़ा वास्ते
5/= सीख का बीड़ा के वास्ते	5/= रसोड़ा की बैठक वास्ते
5/= नाव की बैठक का वास्ते	5/= हाथी-पालकी वास्ते
5/= गेणा के वास्ते	5/= बलेणा घोड़ा का
5/= घोड़ा के वास्ते	5/= छागीर का
5/= चवर के वास्ते	5/= गादी ऊपर का
5/= नछरावल का	5/= पुरोहित चोगड़ा मे
100/= पुरोहित की तासक मे	5/= श्री दरबार की परणेतु पोसाक का
20/= जोत का	

इन लोगो को नेग दिये—छड़ीदार, रसोड़ेदार, भडारवाला, ढाल-तलवार वाला, सहीवाला, घोड़ा का दरोगा, हाथी का दरोगा, पाडेजी, महासाणी, डोडिया, फरासिया, नगारची आदि।

मेवाड़ राज्य का इस काल में विनाश एवं विखंडन होता रहा। 1802 ई. में माधवराव सिंधिया से हारकर जसवंतराव होलकर मेवाड में घुस आया और धन प्राप्त करने के लिये सर्वत्र लूटमार करने लगा। सिंधिया की सेना भी होलकर का पीछा करती हुई मेवाड़ के भीतर आ गई। दोनों ने मेवाड़ को उजाड़ दिया और महाराणा एवं सरदारों से लाखों रुपये वसूल किये। अदूरदर्शी एवं स्वार्थरत मेवाड़ के सरदारों ने अपनी फूटपरस्ती के कारण पूरी तरह मराठों के आगे समर्पण कर दिया। एक ओर मेवाड़ की रिआया मराठा छीना-झपटी से त्रस्त थी, दूसरी ओर महाराणा और जागीरदार भी अपनी क्षतिपूर्ति के लिये राज्य के किसानों, महाजनों एवं अन्य प्रजाजनों से जबरन धन-राशि वसूल करने लगे। मेवाड़ के पहाड़ी इलाके में भील एवं मीणे पहाड़ी रास्ते बंद करके व्यापारियों आदि को लूटने लगे और बाहर निकलकर मैदानी भाग में लूटमार करने लगे। उस समय जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत पूरी तरह लागू हो गई। ऐसी आराजकता और उत्पात की स्थिति में मेवाड़ के किसान, व्यापारी आदि मेवाड़ छोड़ कर बाहर जाने लगे। कई जागीरदारों ने राज्य की भूमि (खालसा) पर कब्जा कर लिया और आपसी सीमा-विवाद को लेकर आपस में लड़ने लगे। स्थिति इतनी खराब हो गई कि सिंधिया और होलकर मेवाड़ के इतिहास प्रसिद्ध राज्य को समाप्त करके आपस में बांटने पर विचार करने लगे थे। महाराणा भीमसिंह की दयनीय हालत इस बात से प्रकट होती है कि उसका गुजारा कोटा के प्रशासक जालिमसिह झाला से आर्थिक सहायता लेकर चलता था। 1810 ई. में मेवाड़ के इतिहास की अमिट वर्वरतापूर्ण घटना घटी जब मेवाड़ की राजकुमारी कृष्णाकुमारी को लेकर जयपुर और जोधपुर महाराजा के मध्य आपसी झगड़ा हुआ और पिंडारी अमीरखां अपनी सेना लेकर उदयपुर पर चढ़ आया। ऐसी भीषण संकटपूर्ण स्थिति में बालिका कृष्णा ने अपने पिता और मेवाड़ की रक्षार्थ विषपान करके स्वयं का बलिदान कर दिया।

मराठा-आक्रमण और सादड़ी का विध्वंस

सादडी का राजराणा चन्दनसिह बालक था और ठिकाना बुरी तरह से लूटमार और दुर्व्यवस्था का शिकार हो रहा था। ठिकाने के प्रजाजनों पर अनेक प्रकार के अत्याचार हो रहे थे और उसके कई गांव उजड़ चुके थे और अधिकांश प्रजाजन स्वयं की रक्षार्थ अपने-अपने गांव छोड़कर इधर-उधर भाग चुके थे। मराठों का जब भी सादड़ी की ओर आना होता तो बालक राजराणा अपने परिवार सहित सादड़ी छोड़कर पहाड़ी भाग में शरण ले लेता। ऐसा भी अवसर आया कि मराठों ने दोबार सादडी पर पूरा अधिकार करके कुछ समय तक अपने अधीन रखा और उस दौरान न केवल ठिकाने के खजाने को लूटा अपितु ठिकाने की आय उन्होंने स्वयं जबरन आसामियों से वसूल की। फिर भी मराठों ने वहां अपना स्थायी प्रबंध कायम नही किया। जब भी वे सादडी छोड़कर गये, राजराणा और राज्य कर्मचारियों एवं सरदारों ने पहाड़ी भाग से निकल कर पुन· ठिकाने में अपनी व्यवस्था कायम करने की कार्यवाही की। 1809 ई में पिंडारी अमीर खां होलकर का साथ देते हुए स्वयं सादड़ी आ पहुँचा। उस समय सिंधिया के सेनापति वापू ने सादड़ी पर कब्जा कर रखा था। बापू ने होलकर और अमीर खां से लड़ाई

करना ठीक नही समझकर मैत्रीपूर्ण वार्ता चलाई और समझौता हो जाने से उनके बीच लड़ाई टल गई ।[2]

1810 ई. के कुछ वर्षों बाद सादड़ी पर मराठों का दवाव कम हो गया और सादड़ी में मराठों की शक्ति कम हो गई । स्थिति का लाभ उठाकर राजराणा और उसके सहयोगी जागीरदारों ने अपना सैन्यबल एकत्र किया और सादडी को घेर लिया । उस समय लकुजी नायक मराठा सूबेदार वहां कब्जा किये हुए था । राजराणा चन्दनसिह ने उसको सादड़ी से मार भगाया । उसके बाद सादड़ी की ओर मराठे पुनः नहीं आये । राजनैतिक परिस्थितियां तेजी से बदल रही थी और 1818 ई. में मेवाड़ राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार के साथ मैत्री संधि करने तक राजराणा सादडी में कमज्यादा अपनी प्रशासनिक व्यवस्था पुनर्स्थापित कर चुका था ।[3]

मेवाड़ राज्य और अंग्रेज सरकार के बीच संधि (1818 ई.)

13 जनवरी, 1818 ई. को मेवाड राज्य और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार के बीच परस्पर सहयोग एवं सहायता की मैत्री संधि हुई । उसके द्वारा मेवाड़ में महाराणा ने अंग्रेज सरकार की सर्वोच्चता को मान्यता देते हुए उसकी अधीनता स्वीकार कर ली । अंग्रेज सरकार ने मेवाड़ राज्य की रक्षा का दायित्व स्वयं ग्रहण किया और उसकी एवज में महाराणा ने अंग्रेज सरकार को अपने राज्य की आय का चौथा भाग (जिसको बाद में छठा भाग कर दिया गया) खिराज के रूप में देना मंजूर किया । अंग्रेज सरकार ने मेवाड़ राज्य के आतरिक मामलों में दखल नही देने और महाराणा के साथ खुदमुख्तार रईस की तरह वार्ता करने का वचन दिया । महाराणा ने आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेज सरकार को सैनिक सहायता देना मंजूर किया ।[4]

राजराणा की हत्या का षड्यंत्र

13 जनवरी 1818 की संधि [5] से कुछ माह पूर्व राजराणा चन्दनसिंह गंभीर अस्वस्थ स्थिति में सादड़ी लौट आया था और कुछ समय बाद वि सं. 1874 के मगसर माह (नवंबर 1817 ई) में उसका देहान्त हो गया ।

वह उदयपुर से अस्वस्थ अवस्था में सादड़ी लौटा था । वह लाऔलाद था । उसकी गंभीर बीमारी की हालत में गोद लेने के सम्बन्ध में भारी विवाद पैदा हो गया । रानियों और भाइयों में परस्पर कलह उत्पन्न हुआ । बीमार राजराणा की इच्छा थी कि देलवाड़े परिवार से

2 Mewar and the Maratha Relations by Dr K.S Gupta, p 185

3 राजराणा रायसिंह वशावली पुस्तक (हस्तलिखित)

4 Treaties, Engergements and Sanads, Vol 3, p 30-31

5 कर्नल (उस समय केप्टन) टॉड को अंग्रेज सरकार के गवर्नर जनरल मार्क्विस ऑफ हेस्टिंग्ज ने पश्चिमी राजपूत राज्यों का पोलिटिकल एजेंट नियुक्त करके अपने प्रतिनिधि के तौर पर 1818 ई में मेवाड़ के महाराणा के दरबार में भेजा था । उसने अपने ग्रथ Annals and Antiquities of Rajasthan के प्रथम खड पृष्ठ 401 पर मेवाड़ के तत्कालीन सोलह बड़े उमरावों के सम्बन्ध में निम्नलिखित जानकारी दी है—

कीर्तिसिंह को गोद लिया जाय। किन्तु उसकी इच्छा-पूर्ति से पहिले ही रनिवास में हुए षड़यंत्र के फलस्वरूप राजराणा को जहर दे दिया गया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। राजराणा की हत्या को गोपनीय रखकर उसके देहान्त को स्वाभाविक मृत्यु होना प्रकट किया गया और कुछ भाइयों

पदवी	नाम	शाखा नाम	जाति	जागीर	गांवों की संख्या	1760 ई में मूल्य	विशेष
राज	चदनसिंह	झाला	झाला	सादड़ी	127	1,00,000	इन जागीरों का मूल्य घट कर आधा रह गया है। उनकी आय इससे कहीं अधिक है
राव	प्रतापसिंह	चौहान	चौहान	वेदला	80	1,00,000	
राव	मुकीमसिंह	चौहान	चौहान	कोठारिया	65	80,000	
रावत	पदमसिंह	चूडावत	सिसोदिया	सलूवर	85	84,000	
ठाकुर	जोरावरसिंह	मेड़तिया	राठोड़	घाणेराव	100	1,00,000	गोड़वाड़ परगना मेवाड़ से निकल जाने से यह अब सौलह उमरावों में नहीं रहा।
राव	केशवदास	—	पंवार	विजोल्या	40	45,000	यह आय खेती होने पर होगी
रावत	गोकुलदास	सागावत	सिसोदिया	देवगढ़	125	80,000	यह आय खेती होने पर होगी
रावत	महासिंह	मेघावत	सिसोदिया	वेगू	150	2,00,000	खेती होने पर इसकी आय 70 000 होगी
राज	कल्याणसिंह	झाला	झाला	देलवाड़ा	125	1,00,000	खेती होने पर इसकी आय दो तिहाई होगी
रावत	सालिमसिंह	जगावत	सिसोदिया	आमेट	60	60 000	खेती होने पर इसकी आय दो तिहाई होगी
राज	छत्रसाल	झाला	झाला	गोगूदा	50	50,000	खेती होने पर यह आय होगी
रावत	फतेसिंह	सारंगदेवोत	सिसोदिया	कानोड़	50	95,000	खेती होने पर यह आय होगी
महाराज	जोरावरसिंह	शक्तावत	सिसोदिया	भींडर	64	64,000	खेती होने पर यह आय होगी
ठाकुर	जैतसिंह	मेड़तिया	राठोड़	वदनोर	80	80,000	खेती होने पर यह आय होगी
रावत	सालिमसिंह	शक्तावत	सिसोदिया	वानसी	40	40,000	इन उमरावों ने अपना प्रभाव और आधी आय खो दी है
राव	सूरजमल	चौहान	चौहान	पारसोली	40	40,000	
रावत	केसरीसिंह	किशनावत	सिसोदिया	भैंसरोड़	60	60,000	ये उमराव ऊपर के उमरावों के प्रभावहीन होने पर जोड़े गये हैं—वे एक ही दिन दरबार में हाजिर नहीं होते।
रावत	जवानसिंह	किशनावत	सिसोदिया	कुरावड़	35	35,000	
					1181	1310,000	

नोट—साठ साल पहिले (1760 ई में) भैंसरोड़ और कुरावड़ सौलह उमरावों में नहीं थे।

द्वारा सादड़ी झालावंश से निकले मकोड़्या ठिकाने के दौलतसिंह को गोद लेकर सादड़ी की गद्दी पर विठा दिया गया और उसकी सूचना उदयपुर महाराणा के पास भिजवा दी गई। किन्तु इस कार्यवाही को ठिकाने के कई वुजुर्ग सरदारों तथा अन्य भाइयों आदि ने स्वीकार नहीं किया। ताणा, झाड़ोल, कुंडला आदि ऐसे ठिकाने थे, जो मकोड़िया के वनिस्पत सादड़ी वंश के अधिक समीपवर्ती थे किन्तु वहां अतिरिक्त कुंवर नहीं था, जिसको वे सादड़ी में गोद भेज देते। कतिपय रानियों एवं वुजुर्ग सरदारों ने साटोला रावजी के साथ गुप्त मंत्रणा करके देलवाड़े ठिकाने से कीर्तिसिंह को गोद लाने हेतु तय किया, जहां पर दो कुंवर मौजूद थे और स्वर्गीय राजराणा की भी यही इच्छा थी।[6]

देलवाड़ा कुंवर कीर्तिसिंह का गोद आना

साटड़ी ठिकाने से कुछ मौतविर भायप तत्काल देलवाड़े गये और वहां के राजराणा कल्याणसिंह को राजराणा चन्दनसिंह की हत्या और दौलतसिंह द्वारा षड़यंत्रपूर्वक सादड़ी ठिकाना हथिया लेने की वास्तविक कहानी सुनाई। कल्याणसिंह को यह भी वताया गया कि सादड़ी राजघराने की रानियां भी देलवाड़े से कीर्तिसिंह को गोद लेने के पक्ष में हैं। देलवाड़ा राजराणा तत्काल उदयपुर पहुँचा और सारी घटना का वर्णन महाराणा भीमसिंह को किया। उधर महाराणा भी सादड़ी के घटनाक्रम से नाराज था, चूंकि उसकी मंजूरी के विना सादड़ी में दौलतसिंह को गोद लेने और ठिकाने का स्वामी वनाने की कार्यवाही की गई थी, जो प्रचलित विधि के विरुद्ध थी। महाराणा भीमसिंह ने कुंवर कीर्तिसिंह को सादड़ी में गोद लेने की राजराणा कल्याणसिंह की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। उसने विधि अनुसार महाराजकुमार अमरसिंह को कुंवर कीर्तिसिंह को उदयपुर लाने हेतु देलवाड़ा भेजा। कुंवर कीर्तिसिंह के उदयपुर पहुँचने पर महाराणा ने उसको सहेलियों की वाड़ी में ठहराया। महाराणा ने वहां जाकर उसकी मातमपुर्सी की और दूसरे दिन वि सं. 1874, मगसर वदी 2 को महाराणा ने कीर्तिसिंह को महलों में वुलाकर विधिवत उसकी तलवारवन्दी की रस्म पूरी की।[7]

महाराणा की आज्ञा से कानोड़ रावत फतेसिंह और शिवजी तिवाड़ी को कुंवर कीर्तिसिंह को लेकर सादड़ी भेजा गया, ताकि वे उसको सादड़ी का कब्जा दिला सके। उस समय सलूंवर रावत पदमसिंह, कुरावड़ रावत जवानसिंह और साटोला ठाकुर भी अपने-अपने सैनिक लेकर सादड़ी पहुँचे। जव दौलतसिंह को इस वात का पता चला तो वह सादड़ी छोड़ कर मकोड़्या भाग गया।[8] इस भांति देलवाड़े कुंवर कीर्तिसिंह को सादड़ी का स्वामी वनाया गया।

---

6. राजराणा रायसिंह की वंशावली (हस्तलिखित पुस्तक)
   श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले. महता सीताराम शर्मा, पृ 88-89
   श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड में राजराणा चन्दनसिंह को विष देने की घटना का जिक्र नहीं है।

7 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 89
   राजराणा रायसिंह की वशावली पुस्तक (हस्तलिखित)

8 वाद में दौलतसिंह के दो पुत्र राजराणा कीर्तिसिंह की सेवा में सादड़ी आये। कीर्तिसिंह ने दौलतसिंह के दूसरे वेटे संग्रामसिंह को चाहखेडी की जागीर तथा तीसरे वेटे प्यारसिंह को लालपुरा का खेड़ा की जागीर प्रदान की।

राजराणा चन्दनसिंह बाल्यावस्था में सादडी का स्वामी बना था और प्रारंभ में लगभग 6 वर्ष तक सादड़ी का शासन राज्य की देखरेख में रहा था। उसके राजराणा बनने के समय ठिकाना मराठों के अनवरत आक्रमणों एवं लूटमार का शिकार हो रहा था। उसको आधे से अधिक राज्यकाल सादड़ी छोड़कर पहाड़ों में निवास करना पड़ा अथवा उदयपुर की ओर भाग-दौड़ में निकला। 1809 ई. के बाद मराठों की शक्ति का ह्रास होने पर अवसर देखकर राजराणा चन्दनसिह ने अपनी शक्ति बटोर कर मराठों को धीरे-धीरे ठिकाने से बाहर निकाला। उसके काल में बर्बादी के कारण ठिकाने की आय तीन लाख रुपयों से घटकर एक लाख से कम हो गई। यह आय भी कृषि की पैदावार पर निर्भर करती थी। सुरक्षा के अभाव में लम्बे काल तक उसके अधिकांश प्रजाजन महाजन, किसान, शिल्पकार आदि ठिकाने से बाहर रहे, जिससे ठिकाने की पैदावार, वाणिज्य आदि बुरी तरह प्रभावित रहे। राजराणा को भी ठिकाने की दशा सुधारने हेतु समय, अवसर और साधन उपलब्ध नही रहे।

विवाह—

राजराणा चन्दनसिंह के निम्नलिखित विवाह हुए, किन्तु किसी भी रानी से कोई संतान नही हुई—

1. कानोड़ रावत जालिमसिह सारंगदेवोत की पुत्री उम्मेदकंवर के साथ
2. उदयपुर हवेली वाले महाराज बहादुरसिह राणावत की पुत्री जतनकंवर के साथ
3. बंबोरे रावत केसरीसिंह चूंडावत की पुत्री गुलाबकंवर के साथ
4. रामपुरा के राव चमनसिंह की पुत्री पदमकंवर के साथ।[9]

9 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 85

अध्याय - 7

मेवाड़ में ब्रिटिश प्रभुत्व

15. राजराणा कीर्तिसिंह द्वितीय (1817 ई. - 1865 ई.)

राजराणा कीर्तिसिह का जन्म वि. सं. 1864 भादवा वदी 12 को देलवाड़े गांव में हुआ था। दस वर्ष की अल्पायु में उसको सादड़ी ठिकाने का स्वामी वनाया गया। जैसाकि ऊपर वर्णित है वि. स. 1874 मगसर वदी 2 (नवंबर, 1817 ई) के दिन महाराणा भीमसिंह द्वारा विधिवत उसकी तलवारवन्दी की गई।[1]

मेवाड़ में अंग्रेज शासन

मेवाड राज्य और अंग्रेज सरकार की 13 जनवरी, 1818 ई. की सधि से कुछ समय पूर्व राजराणा चन्दनसिंह की मृत्यु हुई थी। 1818 ई. की सधि के वाद मेवाड़ राज्य में मराठों की विनाशलीला का अंत हुआ। मेवाड़ में नियुक्त पथम अग्रेज पोलिटिकल एजेंट कप्तान टॉड ने मेवाड़ का प्रशासन अपने हाथों में लेकर राज्य को पुनर्स्थापित एवं पुनर्व्यवस्थित करना शुरू किया। उसने मेवाड के सरदारों को उनके द्वारा हड़पी गई खालसा भूमि लौटाने के लिये बाध्य किया। उनकी आपसी सीमा सम्बन्धी लडाइयों को वन्द करके उनको अपनी-अपनी जागीरों में भेजा गया। उसने अंग्रेज सरकार से सैन्य सहायता लेकर मेवाड़ के पहाड़ी भोमट इलाके तथा मेरवाड़े में उपद्रवरत भीलों, मीणों एवं मेरों की राज्य विरोधी गतिविधियां दवाने हेतु आवश्यक सैन्य कार्यवाही की तथा मेवाड़ छोड़कर गये व्यापारियों, किसानों आदि को अंग्रेज सरकार की सुरक्षा गारंटी देकर वापस बुलाया। इस भांति टॉड ने मेवाड़ के पुनरुद्धार का प्रारम्भ किया। इसके साथ मेवाड के महाराणा और उसके सरदारों के वीच के चाकरी, कानूनी प्रशासन, कर और लागतों आदि वातों से सम्वन्धित विवादों के हल के लिये कौलनामा तैयार करवा कर उनके वीच समझौता करने का प्रयास किया। टॉड ने अंग्रेज सरकार की स्वीकृति से मेवाड़ का

1 मेवाड़ में प्रथम अग्रेज पोलिटिक एजेट कप्तान टॉड ने 4 मई 1818 ई (वि. स 1874 (श्रावणादि) वैसाख वदी 14) के दिन सरदारों के लिये 10 शर्तों का जो कौलनामा तैयार किया उस पर राजराणा कीर्तिसिंह ने दस्तखत किये थे।

पुनरुद्धार करने एवं महाराणा भीमसिंह की सत्ता को पुनर्जीवित करने हेतु मेवाड़ का शासन सीधा अपने हाथों में ले लिया था, जो 1818 ई. की सधि की शर्तो के खिलाफ कार्यवाही थी, जिसकी बड़ी आलोचना हुई। किन्तु यह सीधा हस्तक्षेप सधि पर हस्ताक्षर करने वाली दोनों सरकारों की मर्जी से हुआ, जो कुछ वर्षो तक चलता रहा। बाद में भी मेवाड़ राज्य के आंतरिक मामलों में सर्वोच्चसत्ता वाली अग्रेज सरकार का हस्तक्षेप एवं वर्चस्व अपरोक्ष रूप से चलता रहा, जो मेवाड़ के महाराणाओं एवं सरदारों के लिये असह्य, अप्रिय एवं अपमानजनक तथा उनके आत्मगौरव को क्षति पहुँचाता था किन्तु वे इतने अयोग्य और मतलबपरस्त हो गये थे तथा उनकी स्थिति इतनी कमजोर, मजबूर और दीनतापूर्ण हो चुकी थी कि अंग्रेज सरकार के हस्तक्षेप के विना मेवाड़ राज्य का प्रशासन सुचारू रूप से चलाया जाना भी कठिन हो चुका था। मेवाड़ राज्य का सीधा प्रशासन महाराणा और उसके फलस्वरूप जागीरदारों को लौटाने के बाद भी अपने सुरक्षा हितों की दृष्टि से भोमट और मेरवाड़ा इलाकों का प्रशासन अंग्रेज सरकार ने अपने पास ही रखा।[2]

अंग्रेज सरकार द्वारा मेवाड़ के प्रशासन में सीधा हस्तक्षेप बंद करने और प्रशासन के अधिकार महाराणा को सुपुर्द करने के बाद महाराणा और उसके सरदारों के बीच कई बातों को लेकर विवाद और झगडे चलते रहे, जिनको अंग्रेज सरकार मध्यस्थ बनकर सुलझाने के लिये प्रयास करती रही। उसने एक के बाद एक 1818 ई., 1827 ई., 1840 ई., 1845 ई. और 1854 ई. में महाराणा और सरदारों के बीच के झगड़ों को सुलझाने के लिये कौलनामे तैयार किये, जो दोनों पक्षों को मंजूर हों, किन्तु एकमतता कभी कायम नही हुई और उनके आपसी मदभेद, कलह और झगड़े कभी समाप्त नहीं हुए।

महाराणा और सरदारों के सम्बन्धों में परिवर्तन

1818 ई. की संधि के अनुसार अंग्रेज सरकार द्वारा मेवाड़ राज्य की सुरक्षा का दायित्व ग्रहण कर लेने के बाद मेवाड़ को बाहरी आक्रमण का खतरा समाप्त हो गया था। अतएव उसके कारण मेवाड़ राज्य की परम्परागत सामंती सैन्यव्यवस्था अनावश्यक हो गई थी और उस पर महाराणा तथा जागीरदारों द्वारा किया जाने वाला व्यय भी अत्यन्त कम हो गया था। मेवाड राज्य की बाहरी आक्रमण से सुरक्षा की एवज में अग्रेज सरकार संधि के मुताबिक मेवाड़ राज्य से वार्षिक खिराज राशि तीन लाख रुपये लेती थी (राज्य की आय का छठा भाग) जो बाद में दो लाख कलदार (अंग्रेजी सिक्का) कर दी गई थी। महाराणा ने उपरोक्त खिराज राशि के भुगतान हेतु अपने जागीरदारों से उनकी जागीर की आय का छठा भाग (छटूद) लेना शुरू किया, जिसका कई जागीरदारों ने विरोध किया। इसके अलावा जागीरदारों द्वारा उदयपुर में वर्ष में तीन माह कुछ सिपाहियों के साथ महाराणा की चाकरी में रहने, प्रतिवर्ष दशहरे के त्यौहार पर अपने-अपने सैनिक लेकर महाराणा के दरबार मे उदयपुर में त्यौहार से पन्द्रह दिन पूर्व और

---

2 Mewar and the British (1857-1921) by Dr Devilal Paliwal, P 7-13

उसके पन्द्रह दिन बाद तक हाजिर रहने, भिन्न-भिन्न अवसरो पर महाराणा को लागते देने, जागीरों में महाराणा की दीवानी एवं फौजदारी मामलो मे दखल, दाण आदि व्यापारिक करों पर राज्य का अधिकार होने, आदि बातो के सम्बन्ध मे जागीरदारो ने अपने-अपने एतराज उठाये और हर मामले में महाराणा की सर्वोच्चता स्वीकार करने से इन्कार किया। इसके अलावा दरबार मे हाजिर होने और महाराणा से भेट करते समय कई बड़े उमरावो ने अपनी गरिमा, पद-प्रतिष्ठा तथा शिष्टाच.र सम्बन्धी विशेषाधिकारो का महाराणा द्वारा पालन किये जाने पर जोर दिया गया। इन सब बातो को लेकर 1854 ई. मे अग्रेज सरकार के ए. जी जी. हेनरी लारेंस और पोलिटिकल जेंट जार्ज लारेंस ने 30 धाराओ वाला एक कौलनामा तैयार किया, जिस पर उन दोनों ने और महाराणा सरूपसिह ने दस्तखत किये। इस कौलनामे को मजूर करके सादड़ी राजराणा कीर्तिसिह ने अपने हस्ताक्षर किये। देवगढ़ और बदनोर के जागीरदारों ने हस्ताक्षर किये। फिर भी सलूंबर, गोगूदा, भीडर आदि ने हस्ताक्षर नही किये।[3]

यद्यपि कुछ सरदारों द्वारा उक्त कौलनामे पर हस्ताक्षर नही करने से उसको लागू नही माना गया - किन्तु कतिपय बातो पर अधिकांश सरदारों द्वारा व्यावहारिक तौर पर अमल होने लगा—

1. जागीरदारों द्वारा अपनी जागीर की आय मे से प्रतिवर्ष प्रति रुपया आय पर दो आने छ' पाई छटूंद के तौर पर देना शुरू किया गया।

2 जागीरदार दशहरे के त्यौहार पर दस दिन पहिले राजधानी (उदयपुर) में महाराणा की सेवा में हाजिर होने और त्यौहार के बाद पाच दिन बाद तक वहां हाजिर रहना मान गये।

3 वर्ष में तीन माह की अवधि के लिये जागीरदार अपनी निश्चित सख्या में सिपाहियों के साथ उदयपुर में महाराणा की सेवा में रहने लगे। ऐसे सिपाहियों की सख्या जागीर की आय के प्रति हजार रुपये पर एक सवार और दो प्यादे के हिसाब से तय की गई। (1930 ई में सरदारो की इस निजी चाकरी को नकद राशि के भुगतान मे बदल दिया गया।)

4 कैद अथवा तलवारबन्दी की रकम जागीर की असल पैदावार पर एक रुपये के पीछे बारह आने देना तय किया गया। किन्तु ऐसा करने पर उस वर्ष की छटूंद राशि देना माफ किया गया।

5. महाराणा की गद्दीनशीनी, उसकी शादी अथवा राजकुमार एव राजकुमारी की शादियों, महाराणा की तीर्थ-यात्रा आदि अवसरो पर जागीरदारों द्वारा देय कर-राशियां (लागतें) कायम रखी गई।

---

3 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, ले गौ ही ओझा, पृ 762

6. दाण, बिस्वा, खड़लाकड़, खानाशुमारी को राज्य के अधिकार के अधीन रखा गया।
7. जागीरों में जागीरदार के लाऔलाद मरने पर सदीप के रिवाज एवं परम्परा के अनुसार गोद लिया जाना तथा उसकी पूर्व स्वीकृति महाराणा से प्राप्त करना निश्चित किया गया।
8. संगीन मुकद्दमों तथा अन्य वड़े मुकद्दमों की अपील सुनने तथा तत्सम्वन्धी अन्तिम फैसले का अधिकार महाराणा के पास रखा गया। (वाद में वड़े उमरावों के दीवानी एवं फौजदारी मुकद्दमों सम्वन्धी अधिकारों को कानून द्वारा निश्चित कर दिया गया।
9. विभिन्न सरदारों को परम्परा से प्राप्त कुरव, ताजीम लवाजमा, दरवार में वैठक, मुजरा, सीख आदि वातों को उनकी पद-प्रतिष्ठा के अनुसार महाराणा द्वारा पालन किया जाने लगा।[4]

निश्चिय ही सरदारों द्वारा महाराणा के साथ उपरोक्त प्रकार से अपने सम्वन्धों को सुधारने तथा स्पष्ट करवाने में अंग्रेज सरकार के दखल और दवाव ने निर्णायक भूमिका अदा की। 1857 ई. में अंग्रेज साम्राज्यवाद के विरुद्ध हुए भारत व्यापी जनविद्रोह ने भी अंग्रेज सरकार को मेवाड़ सहित राजस्थान के राज्यों में शासकों एवं उनके सामन्तों के वीच लगातार चल रहे झगड़ों को साम्राज्य की रक्षा एवं शान्ति के लिये खतरा मान कर उनको समाप्त करने हेतु कदम उठाने के लिये वाध्य किया। इस विद्रोह के दौरान मेवाड़ के सलूंवर, भींडर, कोठारिया आदि ठिकाने के सरदारों ने विद्रोहियों का साथ दिया था। मेवाड़ में अंग्रेज प्रतिनिधि ने कई सरदारों को डराया धमकाया। आगामी कुछ वर्षो में मेवाड़ के लगभग सभी सरदारों ने उपरोक्त शर्तो के आधार पर महाराणा के साथ समझौता कर लिया।[5]

सादड़ी ठिकाने की वुरी हालत

जैसा कि ऊपर वर्णित हैं वालक कीर्तिसिंह के राजराणा वनने से पहिले तक सादड़ी ठिकाने की हालत वहुत खराव रही थी। ठिकाने की आय लगभग तीन लाख से घट कर नव्वे हजार रह गई थी। ठिकाने से वाहर चले गये प्रजाजन अव लौटने लगे थे। ठिकाने का प्रशासन नाममात्र के लिये था। दौलतसिंह द्वारा ठिकाने पर कव्जे के छ· महिनों के दौरान और उससे पहिले भी ठिकाने के गांव शिकमी जागीरदारों ने दवा लिये थे, जिनकी स्वयं की हालत भी वहुत खराव थी। उनमें आपस में भी गुटवाजी और झगड़े चलते थे और प्रत्येक अपनी स्वार्थपरता को लेकर काम करता था।[6] इन्ही हालात में राजराणा चन्दनसिंह भायपों के एक गुट के षड्यंत्र द्वारा मारा गया था। जागीर पर कर्जदारी होने के अलावा ठिकाने में योग्य कर्मचारियों

4 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

5 Mewar under Maharana Bhopal Singh by Sir Sukhdeo इस पुस्तक में मेवाड़ के सौलह एवं वत्तीस श्रेणी के सरदारों की स्थिति एव उनको प्राप्त न्यायिक अधिकारों के सम्वंध में विवरण दिया गया है।

6 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले. महता सीताराम शर्मा, पृ 89

का अभाव था। प्रतिष्ठित और बुद्धिमान सरदार लडाइयों में काम आ गये थे। धन की इतनी कमी थी कि गावों को रहन रख कर छटूंद का रुपया राज्य को चुकाया जाता था।[7]

ऐसी स्थिति में भी ठिकाने के कतिपय हितैषी सरदारों, सलाहकारों एवं कर्मचारियों की मददसे ठिकाने में सुधार के प्रयास किये गये। अग्रेज प्रतिनिधि कप्तान टॉड, कप्तान काब तथा उसके बाद के अंग्रेज अधिकारियों द्वारा मेवाड़ मे किये गये सुधारों का प्रभाव सादड़ी ठिकाने पर भी पड़ा। ठिकाने के गाव पुन· आबाद होने लगे और खेती एवं व्यवसाय पुनः पनपने लगे।

ठिकाने की दुर्व्यवस्था के काल में ठिकाने की भूमि में चोरी, डकैती आदि अपराधिक कार्यवाही करने वाली कई जरायमपेशा जातियां आकर बस गई थीं। ऐसे लोगों को दबाने और उनकी कार्यवाहिया रोकने हेतु राज्यादेश के अनुसार एव राज्य की मदद द्वारा ठिकाने के सरदारों एव कर्मचारियों ने उनके खिलाफ बल का प्रयोग किया और उन पर काबू पाने में पर्याप्त सफलता मिली।[8]

भील उत्पात को दबाने में राजराणा का सहयोग

कप्तान टॉड ने पहाड़ी इलाके में भीलो एवं मीणों के उपद्रवो को दबाने हेतु जो सैनिक कार्यवाही की, वह पूर्णत सफल नहीं रही। पहाड़ी मार्गों को बन्द रखने, यात्रियों एवं व्यापारियों से मनमाना कर वसूल करने तथा डकैती एवं लूट-खसोट करने की उनकी कार्यवाहियां जारी रही। भोमट का इलाका सर्वाधिक उपद्रवी इलाका था। अंग्रेज सरकार ने सीधा दखल करके कई वर्षों तक भोमट के भीलों का दमन करने तथा उस क्षेत्र के भोमिया ठिकानेदारों पानरवा, जूडा, जवास, ओगणा आदि को वश मे करने हेतु महाराणा की सहायता लेकर सैन्यबल का प्रयोग करती रही। महाराणा ने अपने जागीरदारों को इस कार्यवाही में अंग्रेजी फौज के साथ सहयोग करने हेतु परवाने भेजे। एक ऐसा ही परवाना महाराणा द्वारा 1830 ई. मे सादड़ी राजराणा कीर्तिसिंह को भेजा गया[9], जिसमें मेवाड़ के फौजदार शिवलाल दवे को आवश्यक सैनिक सहायता देने का आग्रह किया गया था। अंत में अंग्रेज सरकार ने भीलों का भीलों द्वारा ही दमन करवाने तथा उनमें परस्पर फूट और कलह पैदा करने हेतु 1841 ई. में खेरवाडा में तथा 1844 ई. में कोटडा में भीलो की भर्ती करके भील कोर पल्टनों की छावनियां कायम की गई।[10]

---

7 वही, पृ 88-89

8 वही।

9 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

"स्वस्ति श्री राज कीरतसीघजी हजूर म्हारो जुहार मालुम व्हे। अप्र फौज महे काम काज पड़े ने दवे सवलाल अरज केवावे जी घड़ी डीला जावा सरी को काम पड़े तो डीला जाणो, न जमीत रो काम पड़े तो जमीत मेलेगा। सवत् 1887 रा वर्षे भादवा सुदी 9"

10. History of Mewar by J C Brooke, P 72-89
पानरवा का सोलकी राजवश, ले डॉ देवीलाल पालीवाल, पृ 25-26

दाण आदि करों पर राज्य का एकाधिकार

जिस भांति कप्तान टॉड द्वारा पहाड़ी इलाके में भीलों द्वारा वसूल किये जाने वाले पथ-कर वोलाई तथा रखवाली-कर वन्द कर दिये गये थे। कप्तान टॉड द्वारा राज्य में किये गये प्रवध के अनुसार दाण, विस्वा, वोलाई, मापा, खड़लाकड़ आदि आय के कर वसूल करने का अधिकार राज्यशासन ने अपने हाथों में ले लिया था। फिर भी राज्य के आदेश का पालन सभी जगहों पर पूरी तरह नही हो रहा था और जागीरदारों द्वारा उन करों की वसूली की जा रही थी। लोगों से इस वावत शिकायतें प्राप्त होनेपर महाराणा की ओर से इस प्रकार की कार्यवाहिया वन्द करने हेतु जागीरदारों को पर्वाने भेजे गये। संवत् 1877 चेत सुदी 11 को एक ऐसा ही पर्वाना सादड़ी राजराणा कीर्तिसिंह को महाराणा द्वारा भेजा गया था, जिसमें सादड़ी के कामदारों द्वारा की जा रही दाण वसूली की कार्यवाही को रोकने के आदेश किये गये थे।[11]

उदयपुर में सादड़ी की हवेली के लिये भूमि मिलना

महाराणा द्वार. उदयपुर में सादड़ी की हवेली बनाने हेतु सादड़ी ठिकाने को पांच वीघा जमीन वक्षी गई थी। किन्तु ठिकाने के कर्मचारियों द्वारा उस जमीन का उपयोग खेती के लिये किया जाना पाया गया। इसके वावत महाराणा को शिकायत की गई। इस पर मेवाड़ दरबार द्वारा उस जमीन पर वापस कव्जा कर लिया गया। महाराणा द्वारा की गई इस कार्यवाही पर एतराज जताते हुए राजराणा कीर्तिसिंह ने हवेली बनाने और वाग लगाने हेतु उस जमीन को वापस सादड़ी ठिकाने को लौटाने की प्रार्थना की। इस पर महाराणा ने ठिकाने को वह जमीन वापस लौटाने के आदेश तो कर दिये किन्तु उसमें स्पष्टतः लिखा गया कि यह जमीन ठिकाने को हवेली वनाने के लिये दी गई है, अतएव उस पर खेती नही की जाय और उस पर केवल हवेली एवं वाग-वगीचे वनवाये जाय।[12]

---

11 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

"स्वस्ति श्री राज कीरतसीघजी हजूर म्हारो जुहार मालम व्हे। अप्र. कवाड़ा री गाड्या रो दाण एक जगे चुके है आपरा कामदारा है कहे दीवाये सो ले न्ही लीदो वे सो परो दीवाड़ सी अर आगे पण लख्यो हो ने दाण घटावे दीदो ने मापो वोलाई वढावी दीदो अणी मे अमल रा पोठी काडे दीदो सो काम री न्हीं दाणया रे हरकत पड़ी है सो आपने देणी पड़सी सवत् 1877 चेत सुदी 9"

12 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

"स्वस्ति श्री उदैपुर सुथाने महाराजाधिराज महाराणा श्री सरूपसीघजी आदेसातु रणा कीरतसीघ चनणसीघोत कस्य सुप्रसाद लिख्यते यथा अठा रा समाचार भला है आपणा समाचार सदा कहावजो अप्र थाहे हवेली सार, जायेगा वगसी जणी महे थाणा भला आदम्या खेती कराई जी वावत खालसे हुई जी तावे अरज कराई के पाछी वगसीजे सो अवे वाग लगाय आवादान करू सो पाछी वगसी है सो वाग लगाय आवादान करजे वाड़ी बीघा पाच आसरे पचोली सबकरण सी, प्रवानगी मेता सेरसीघ की सवत् 1904 वर्षे असाढ़ वदी 8, सनेऊ"

महाराणा सरूपसिंह के विरुद्ध सरदारों की बगावत और महाराणा द्वारा सादड़ी राजराणा से सहयोग का आग्रह

कतिपय बातों को लेकर महाराणा और सरदारो के बीच जो विवाद और कलह चल रहे थे, महाराणा सरूपसिह के काल में उसके निरंकुश व्यवहार के कारण उनमें वृद्धि हुई। प्रधानत. 1854 ई. में तैयार किये गये कौलनामे पर हस्ताक्षर नहीं करने वाले सलूंबर, देवगढ़, भीडर, गोगूंदा, कोठारिया आदि के सरदारों ने अग्रेज सरकार के दबाव के बावजूद महाराणा के आदेश मानने और चाकरी एव छटूद देने की शर्तें मानने से इन्कार करते रहे। इस पर महाराणा सरूपसिह ने सलूंबर का सावा, देवगढ़ का मोकरूंदा, भीडर का भादोडा, गोगूदे का रावल्या गांव जब्त कर लिये। किन्तु इन सरदारों ने अपने-अपने सैन्यबलों का प्रयोग करते हुए महाराणा के आदेशों का पालन नही होने दिया और खालसा करने हेतु आये हुए दलों को भगा दिया। इस अवसर पर महाराणा ने सादड़ी राजराणा को रुक्का भेजकर स्वामीधर्म का पालन करने और उसका साथ देने हेतु लिखा।[13]

जब दो वर्ष बाद 1857 ई मे अंग्रेज सरकार के खिलाफ देशव्यापी जनविद्रोह फूट पड़ा तो उपरोक्त जागीरदारो ने महाराणा द्वारा अंग्रेज सरकार की सहायता करने हेतु भेजे गये आदेश की अवलेहना करते हुए परोक्ष एव अपरोक्ष रूप से मेवाड़ में प्रवेश करने वाले तात्या टोपे जैसे विद्रोही सेनापति को शरण, धन एवं शस्त्र देकर विद्रोहियो की मदद की। इस अवसर पर महाराणा सरूपसिह ने सादडी राजराणा को भी रुक्का भेज कर अग्रेज सरकार के साथ सहयोग करने हेतु लिखा था। सादडी राजराणा ने उसका पालन करते हुए सक्रिय रूप से अंग्रेज सरकार की सहायता की।[14]

मेवाड़ में सती प्रथा को बंद करने बाबत

राजस्थान के राजाओं के साथ संधि करने के पश्चात अग्रेज सरकार ने उनको न केवल बाहरी आक्रमणों के खतरे से मुक्त किया अपितु उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करके इन राज्यों में प्रचलित कई सामाजिक कुरीतियों एवं सतीप्रथा, डाकिनप्रथा जैसी अमानवीय प्रथाओं और अंधविश्वासो को समाप्त करने हेतु उन पर दबाव डालना शुरू किया। अंग्रेज सरकार की

---

13 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

"स्वस्ति श्री राज कीरतसीघजी हजूर म्हारो जुहार मालम वे अप्र अरज आई समाचार मालम हुआ था कतराक समाचार रावत वगतसीघजी (वेदला) मालम कीदा आपका आदमी गोगूदे गीया जी तावे वसतार ने अरज हुई सो या वात तो चलती सुणी पर तीनजु वेती तो आपने लीखता ने आपको तो पूरो सावधरमो है सीमता वेई अतरो हुकम करायो पण आपनो सावधरमा पर ही नजर राखी जव अवे या कुवेई की आप कोई अदेसो न्हीं राखसी आप हरामखोर नोज हो हरामखोर तो चुडावत सकतावत है आपरो ठीकाणो तो ठेठ सुदी सावधरमी है सो मा डीला की एवजी आप की दी है सो सीवाय सावधरमो किस्यो होवे है। सवत् 1909 रा आसाड़ वदी 5, सने।

14 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 92-93

ओर से सतीप्रथा तथा डाकिनों के वध जैसी स्त्री-हत्या वाली प्रथाओं को वन्द करने हेतु मेवाड़ के महाराणा सरूपसिंह को भी पत्र लिखे गये। ये प्रथाएं मेवाड़ में अज्ञान, पिछड़ेपन एवं अंधविश्वासों से पूर्ण सामाजिक वातावरण में गहरी जड़े जमाये हुई थीं। मेवाड़ का शासकवर्ग, महाराणा और जागीरदार स्वयं इस प्रकार की कुप्रथाओं से प्रभावित थे। पिछले कई महाराणाओं और जागीरदारों की मृत्यु पर उनकी स्त्रियां उनके साथ उनकी चिता पर वैठकर जल मरती थी। इस प्रथा को धार्मिक पुष्टि देकर सतीप्रथा का नाम दिया गया था। अंग्रेज सरकार ने अपने आदेशों का पालन नहीं होने और सतीप्रथा के जारी रहने पर कुपित होकर उसको वन्द करने हेतु पुन: कठोर आदेश भिजवाये। महाराणा ने प्रारंभ में धार्मिक भावना के आधार पर अंग्रेज सरकार की नीति का विरोध किया। धीरे-धीरे राजस्थान के राजाओं ने अपने राज्यों में सतीप्रथा पर रोक लगाना स्वीकार कर लिया। फिर भी मेवाड़ के महाराणा कुछ काल तक उसको पूरी तरह वन्द करने के सम्वन्ध में आना-कानी करते रहे। जव महाराणा सरूपसिंह पर अंग्रेज सरकार का अधिक दवाव पड़ा तो उसने अपने प्रधान जागीरदारों को तत्सम्वन्धी जानकारी देते हुए उनकी राय लिख भेजने हेतु खरीते भेजे। एक ऐसा ही वि.सं. 1912, सावन वदी 12 का खरीता सादड़ी राजराणा कीर्तिसिंह को प्राप्त हुआ, जो इस प्रकार है—

"स्वस्ति श्री उदयपुरसुधाने महाराजाधिराज महाराणा सरूपसींघजी आदेसातु रणा कीरतसींघ कस्य सुप्रसाद लीख्यते अथा अठा रा समाचार भला है आपणां कहावजो। अप्रं सती री मनाई रा मुकदमा में रेजीडेंट साव को खलीतो आयो जी रो जवाव जल्दी मंगायो है ई में सती होवा का दसतूर सीसत की रीत प्रमाणे कदीम सु चल्या आवे है परत ई वात ने सरकार अंगरेजी आत्महत्या रो दोस समजे न ई रमम ने मने करवा रो सवाल महाराणा श्री जवानसींघजी छतां मु लेने आज तांई आया गया जीरो जवाव सीसत्रा की मरजाद परमाणे दीटा गया अव दोए वरस सुं करनेल सर हेनरी मंटस गुमरी लारेंस साव वहादुर अजंट गवरनर जनरल राजसथान की पूरी ताकीद है—परत म्हे साराकी सला वीदुन खुलासा जवाव दीटो न्हीं—क्यों या देसाई वात है अर जेपुर, जोधपुर वीकानेर कोटा वगेरे राजसथान वाला साराई मनाई की मंजुरी लीख दीदी अर पेली जवाव सवाल वांवी रसम ससत्र की रीत सुं करयो पर एक ही धारी न्हीं अवार अठे सीसोदा मोवतसींग रा लारे सती हुई जी की खवर उटे गई जी तावे पूरी ताकीद वो खलीतो आयो है अर साफ लीखी है के या रसम कुं वंद करो न्हीं तो अजंटी उठा लेवेंगे सो पूरी वीचार सरीखी वात है अठे जो थारी दो सती हुईज आछो हुवो है सो यांने वेराजी कीया पूरवे न्ही अर कदीम की है जीरो वी वीचार है परत सारा ही वीचारयो अर जसी सला लीखो जी में साहव लोग राजी रहे दो सती वधे वर म्हें फरक न्हीं पडे ठीक दीखे जीतरे सावधरमा की वे ज्यों लीखोगा या न्ही चावे के फलाणां ने वुजजे क्यों या देमाई वात है। संवत् 1913 मावण वदी 12, सोमे।"[15]

15 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

बड़ी सादडी ठिकाने की प्राचीन पत्रावलियों में उपरोक्त पत्र की प्रतिलिपि तो मिली किन्तु राजराणा द्वारा दिये गये उत्तर की प्रतिलिपि नही मिलती। राजराणा ने उसका क्या उत्तर दिया अथवा उत्तर दिया या नही, यह स्पष्ट नही होता। सादडी में भी राजराणाओं की मृत्यु होने पर उनकी चिताओं पर उनकी स्त्रियों द्वारा सती होने के उल्लेख मिलते हैं। इतना ही नहीं स्वयं महाराणा सरूपसिंह की मृत्यु होने पर उसकी पासवान एजांबाई उसके साथ अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट की मौजूदगी में सती हो गई। इस घटना पर अंग्रेज सरकार ने भारी रोष जताया।[16]

बोहेड़ा पर फौजकशी

मेवाड के महाराणा और उसके सरदारों के बीच के आपसी झगड़ों में अंग्रेज सरकार ने महाराणा की प्रभुता का पक्षधर होने के बावजूद उसने महाराणा द्वारा अपने किसी विरोधी सरदार के खिलाफ की गई सैनिक कार्यवाही का साथ नही दिया। उसने समय-समय पर मध्यस्थता से कार्य लिया। अवश्य ही, उसने अपने हितों की पूर्ति तथा मेवाड़ में अपना वर्चस्व एवं हस्तक्षेप बना रहे, उस दृष्टि से उनके बीच मतभेद और फूट कायम रखने की नीति अपनाई। ऐसी ही नीति उसने मेवाड़ के द्वितीय श्रेणी के शक्तावत ठिकाने बोहेड़ा में चले उत्तराधिकार के झगड़े के सम्बन्ध में अपनाई। 1859 ई. में बोहेडा के रावत शक्तावत बख्तावरसिंह के लाऔलाद मरने पर उसका छोटा भाई अदोतसिंह को गोद लिया गया और महाराणा सरूपसिंह ने उसको मंजूर करके उसको तलवार बधवा दी। किन्तु उस समय शक्तावतों के प्रधान ठिकाने और मेवाड के बड़े सोलह उमरावों में से एक भीडर महाराज हमीरसिंह ने उसका विरोध किया। इतना ही नही वह बोहेडा से अदोतसिंह को निकालने हेतु अपने पक्षीय सरदारों का साथ लेकर एव अपने सैन्यबल का प्रयोग करके जोर-जबरदस्ती करने लगा। भींडर महाराज पहिले से महाराणा विरोधी सामंती गुट का सदस्य था और उसने 1854 ई. के कौलनामे पर हस्ताक्षर नही किये थे। महाराज हमीरसिंह की इस विद्रोहपूर्ण कार्यवाही के विरुद्ध महाराणा सरूपसिंह ने फौजकशी करने के इरादे से अपने पक्ष वाले सरदारों को सैनिक मदद करने के लिये परवाने भेजे। उस समय अंग्रेज सरकार ने इस झगड़े में दखल देने से इन्कार कर दिया। इस फौजकशी में सहायता हेतु महाराणा ने सादड़ी राजराणा कीर्तिसिंह को भी परवाना भेजा।[17] किन्तु भीडर महाराज को दबाया नहीं जा सका और महाराणा सरूपसिह की मृत्यु (1861 ई.) तक यह झगड़ा चलता रहा। उसके उत्तराधिकारी महाराणा शम्भूसिंह की नाबालिगी के कारण राज्य का शासन चलाने हेतु अंग्रेज सरकार ने अपने पोलिटिकल एजेंट मेजर टेलर की अध्यक्षता में एक पंच

---

16 Mewar and the British (1857-1921 AD) by Dr Devilal Paliwal, P 63-64

17 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

"स्वस्ति श्री राज कीरतसीगजी हजूर म्हारा जुहार मालम व्हे अप्र अबार भीडर केर बोयेड़ा के आपस में खच रही है सो म्हाराज (भीडर महाराज) साफ गेर सरसतारी करे सो पगा तो कसी चाले है आप डीला (खुद) या जमीन बोयेड़े रावत अदोतसीग सामल भेजेगा अर वारी मुदत पूरी राखेगा। सवत् 1918 भादवा सुदी 15 बुधे

सरदारी (रीजेंसी कौंसिल) नियुक्त की, भींडर महाराज हमीरसिंह को उस कौंसिल का सदस्य मनोनीत किया गया। पद का लाभ उठा कर हमीरसिंह ने अपने पुत्र शक्तिसिंह को रावत अदोतसिंह का दत्तक पुत्र नियुक्त करवा लिया। किन्तु अदोतसिंह नहीं माना। उसने अपने भतीजे शक्तपुरा के केसरीसिंह को गोद रख लिया। इस भांति हिंसापूर्ण झगड़ा चलता रहा। 1884 ई. में अदोतसिंह के मरने पर उसके द्वारा गोद लिया गया केसरीसिंह महाराणा की आज्ञा के विरुद्ध बोहेड़ा का स्वामी बन बैठा। उसके परिणामस्वरूप महाराणा सज्जनसिंह ने बोहेड़ा पर फौजकशी की, जिसमें बोहेड़ा की भारी बर्बादी हुई।[18]

1857 ई. का जनविद्रोह एवं महाराणा और जागीरदार

मई, 1857 ई. में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध भारतव्यापी बगावत फूट पड़ी। भारतीय लोगों के प्रति अंग्रेज सरकार द्वारा अपनाई गई राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक भेदभाव एवं अन्यायपूर्ण नीतियों के कारण देश के कई भागों में स्थित फौजी छावनियों में भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। कई स्थानों पर अंग्रेज अधिकारियों को जान से हाथ धोना पड़ा। इस बगावत में अंग्रेज सरकार की नीतियों से त्रस्त कई विदेशी शासन विरोधी राजा, नवाब एवं जागीरदार और जमींदार शामिल हो गये। जगह-जगह पर जनता ने विद्रोहियों को धन एवं शस्त्र आदि मुहैया करके उनकी मदद की। इस समय राजपूताने के राजाओं ने और मेवाड़ के महाराणा सरूपसिंह ने अंग्रेज सरकार को विद्रोहियों को दबाने हेतु सैन्य सहायता प्रदान की। महाराणा ने अपने सभी जागीरदारों को खास रुक्के भेज कर लिखा कि वे विद्रोहियों को अपने इलाके में प्रवेश नहीं करने दें, उनकी किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं करे और अंग्रेज सरकार की सैन्य सहायता करे। राजपूताने में नसीराबाद और नीमच छावनियों में भारतीय सैनिकों ने विद्रोह करके कई अंग्रेज अफसरों और उनके परिवार के लोगों को मार डाला। महाराणा ने अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट कप्तान शावर्स और बेदला राव बख्तसिंह की अध्यक्षता में मेवाड़ का एक सैन्य दल अंग्रेज सरकार की मदद के लिये नीमच छावनी की ओर रवाना किया। जिसमें महाराणा के आग्रह पर मेवाड़ के कई जागीरदारों द्वारा भेजी गई जमीयतें भी शामिल थी।[19]

राजकुमार शिवसिंह का जमीयत लेकर अंग्रेज सरकार की मदद करना

सादड़ी राजराणा कीर्तिसिंह अपनी वृद्धावस्था के कारण स्वयं नहीं जाकर, राजकुमार शिवसिंह, जयसिंह और उम्मेदसिंह को सादड़ी की जमीयत देकर मेवाड़ की सेना में शामिल

---

18 (i) Mewar and the British (1857-1921) by Dr. Devilal Paliwal, P. 171

(ii) महाराज शक्तिसिंह और बोहेड़ा के शक्तावत, ले. डॉ. देवीलाल पालीवाल, पृष्ठ 56-66। बोहेड़ा के उत्तराधिकार को लेकर जो झगड़ा 1859 ई से 1884 ई तक चला, उसके विस्तृत विवरण के लिये यह पुस्तक देखें।

19 Mewar and the British (1857-1921 A.D) by Dr Devilal Paliwal, P. 25-33

रहने हेतु भेजा। उन्होंने मेवाड़ की सेना में रहकर निम्बाहेड़ा की विजय में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।[20]

जब नीमच में विद्रोही सैनिकों ने अंग्रेज लोगों का वध करना शुरू किया तो कई अंग्रेज लोग अपने परिवार और बाल-बच्चों को लेकर वहा से निकल भागे। लगभग चालीस स्त्री-पुरुष और बच्चे भागते हुए मेवाड की सीमा पर स्थित डूंगला गांव पहुँचे, जहा पर स्थानीय लोगों ने शरणागतों को आश्रय देकर दिलासा दी। किन्तु उनका पीछा करते हुए विद्रोही सैनिकों ने उनको आ घेरा। उसी समय कप्तान शावर्स और बेदला राव बख्तसिंह मेवाड़ की सेना के साथ उनकी मदद के लिये पहुँच गये। इस पर विद्रोही सैनिक वहा से वापस लौट गये। बेदला राव और मेवाड़ के अन्य अधिकारियों ने उन अग्रेज शरणार्थियों को सुरक्षित उदयपुर पहुँचा दिया, जहां महाराणा ने उनको पिछोला झील के बीच बने हुए जगमदिर महल में सुरक्षित रूप से ठहराया।[21]

इसी समय नीमच से भागने वाले अग्रेज परिवारों में से बिछुड़कर दो व्यक्ति डॉ. मुरे और डॉ. मेन उनसे अलग हो गये और वे सादड़ी ठिकाने के केसूंदा गांव में पहुंचे, जहां पंडित यदुराम पटेल रामसिंह तथा ओंकारसिह ने उनको शरण दी। इनका पीछा करते हुए भी कुछ विद्रोही सैनिक केसूंदा पहुंचे किन्तु ग्रामवासी उनकी रक्षा के लिये एकत्र हो गये और विद्रोहियों की धमकियों के बावजूद उन्होंने अग्रेजों को उनको सुपुर्द नही किया। इतने में सादड़ी राजराणा और बेगू रावत की ओर से भेजी गई जमीयतें उनकी रक्षा के लिये आ पहुँची, जिससे विद्रोही वहां से चले गये। रात्रि के अंधेरे में उन दोनों अंग्रेजों को डूंगला पहुँचाया गया, जहां वे उदयपुर रवाना होने से पूर्व अपने परिजनों से जा मिले।[22]

निम्बाहेड़ा पर कब्जे में शिवसिंह द्वारा वीरता-प्रदर्शन

उसी समय निम्बाहेड़ा में विद्रोहियों की हलचल का पता चला। इससे नीमच, निम्बाहेड़ा और मेवाड की सीमा वाले सारे इलाके में विद्रोह फैलने का खतरा पैदा हो गया। इस पर अग्रेज सरकार की ओर से महाराणा से अतिरिक्त सैन्य सहायता की मांग की गई महाराणा ने दो तोपें, पचास सवार और पैदल सेना भेजी। उनको सादड़ी में जाकर ठहरने और वहां से आवश्यकतानुसार अंग्रेज सेना की मदद करने के निर्देश दिये गये। यह सेना सादड़ी जाकर ठहरी। इसके साथ ही मेवाड की सीमा पर स्थित सभी ठिकानों—सादडी, कानोड़, बासी, बेगू, भदेसर, अथाणा, सरवानिया, बानोटा आदि के जागीरदारों को रुक्के भेज कर महाराणा ने निम्बाहेडा पर कब्जा करने हेतु मेवाड़ की सेना की मदद करने के लिये लिखा गया। मेवाड

---

20 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 93

21 Mewar and the British (1857-1921 A D) by Dr Devilal Paliwal, P 25-33

22 Ibid

की सेना और ब्रिटिश रेजिमेंट ने निम्बाहेड़ा पर कब्जा कर लिया। उस समय निम्बाहेड़ा मेवाड़ के अधिकार में रखा गया।[23]

कीर्तिसिंह का देहान्त और मूल्यांकन

राजराणा कीर्तिसिंह का देहावसान वि.सं.1922 भादवा वदी 6 के दिन सादड़ी में हुआ। वह लगभग 47 वर्षो तक सादड़ी ठिकाने का स्वामी रहा। उसके काल में आर्थिक सुधारों और ठिकाने में शान्ति रहने के कारण ठिकाने की आय में धीरे-धीरे पर्याप्त वृद्धि हुई। उसके गद्दीनशीन होने के समय ठिकाने के कई गांव, राज्य एवं महाजनों आदि के पास रहन रखे हुए थे, जिनसे होने वाली आय वे उठा लेते थे। वार्षिक छटूंद नहीं चुकाने के कारण भी उसकी एवज में राज्य ने ठिकाने के कुछ गांव अपने कब्जे में ले लिये थे। राजराणा की ओर से महाराणा को अर्जी भेज कर लिखा गया कि राज्याधीन ठिकाने के गांव ठिकाने को लौटा दिये जावें, ठिकाने राज्य का कर्जा चुका देगा। इस पर महाराणा की ओर से उत्तर भेज कर लिखा गया कि—"आप गेणां रा गामा तावे अरज कराई सो ठीक ई रीवाज वी वेगा ज्यो वे जावेगा दुवे भाणेज मोतीसींग संवत् 1921 फागण वदी 14 भौमे"[24]

वानसी रावत के साथ समझौता

सादड़ी पटे का गांव भरावदिया वानसी रावत के रहन था। सादड़ी राजराणा ने 1838 ई. में उसको वापस लेना चाहा था। किन्तु दोनों पक्षों में उस वावत कुछ विवाद पैदा हो गया जिसकी शिकायत महाराणा सरदारसिंह के पास पहुँची। महाराणा ने दोनों पक्षों को आपस में मिलजुल कर निपटारा करने हेतु लिखा। इस पर महाराज अनोपसिंह की वाड़ी में वानसी रावत नाहरसिंह और सादड़ी राजराणा कीर्तिसिंह के पक्ष के सरदार एकत्र हुए उस समय यह फैसला किया गया कि मरावदिया गांव का आधा भाग सादड़ी और आधा भाग वानसी के पास रहेगा और दोनों ठिकाने के कामदार मिलकर काम करेंगे।[25]

राजराणा कीर्तिसिंह धीर, गंभीर, सहिष्णु एवं दयालु प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसने ठिकाने में सुधार हेतु पूरे प्रयास किये, जिससे ठिकाने की आमदनी में वृद्धि हुई। जिसके फलस्वरूप उसके ठिकाने में कुछ निर्माण-कार्य प्रारम्भ किये गये। मूलतः वह धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था और उसने वैष्णव धर्म अंगीकार कर लिया था। अपनी अति धार्मिक प्रवृत्ति के कारण

---

23 Ibid
निम्बाहेड़ा सदा से मेवाड़ का पर्गना रहा था। महाराणा हमीरसिंह दूसरे के राज्यकाल में अहिल्याबाई होलकर ने निम्बाहेड़ा पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया था। यद्यपि इस समय अंग्रेज अधिकारियों द्वारा निम्बाहेड़ा पर मेवाड़ का कब्जा कायम रखने का वादा किया गया था, किन्तु विद्रोह समाप्त होने के बाद अंग्रेज सरकार ने निम्बाहेड़ा पुन मेवाड़ के कब्जे से वापस ले लिया।

24 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

25 वही।

वृद्धावस्था में ठिकाने के शासन-कार्य के प्रति उसमें उदासीनता पैदा हो गई। इस पर उसने अपने ज्येष्ठ कुवर शिवसिह की योग्यता, कार्यकुशलता एवं कर्तव्यपरायणता की प्रवृत्ति देकर वि स. 1908 (1851 ई.) मे ही उसको ठिकाने का शासन-कार्य सुपुर्द कर दिया था।[26]

राजराणा कीर्तिसिह और चौहान रानी श्रृगारकंवर ने सादड़ी में कुंड के पास कीरत श्रृंगारबिहारी जी का मदिर तथा उसके साथ एक धर्मशाला का निर्माण करवाया। राजराणा ने पारसोली के तालाब को दूसरी बार बंधवाया।[27]

विवाह एवं संतति—

राजराणा ने पहला विवाह बेदला राव केसरीसिह[28] चौहान की पुत्री शृंगारकंवर के साथ किया।

शृगारकंवर की कोख से स. 1886 फागण वदी 13, रविवार के दिन कुंवर शिवसिंह का जन्म हुआ। उस की कोख से सं. 1888, भादो वदी 2 के दिन दूसरे पुत्र फतहसिंह का जन्म हुआ। सं. 1892 पोष वदी 14 के दिन तीसरे पुत्र जयसिह का जन्म हुआ। सं. 1895 चेत वदी 4 के दिन उसकी कोख से चौथे पुत्र उम्मेदसिह का जन्म हुआ। इसी रानी से तीन पुत्रिया चमनकंवर, रूपकवर और दौलतकंवर हुईं।

प्रथम पुत्री चमनकंवर का विवाह सं. 1904 में बेगूं ठिकाने के कुंवर माधोसिह के साथ हुआ। सं. 1917 मे माधोसिह की मृत्यु हो जाने पर चमनकंवर उसके साथ सती हो गई। स. 1908 में दूसरी पुत्री रूपकवर का विवाह कानोड़ रावत उम्मेदसिंह के साथ हुआ। सं. 1919 में तीसरी पुत्री दौलतकंवर का विवाह मेवाड़ के महाराणा शभूसिंह के साथ हुआ।[29]

राजराणा कीर्तिसिंह का दूसरा विवाह बानसी रावत अजीतसिंह की वेटी गुलावकंवर के साथ हुआ, जिसकी कोख से कुंवर केसरीसिंह का जन्म हुआ।

ज्येष्ठ कुंवर शिवसिह सादड़ी में उत्तराधिकारी हुआ। कुंवर फतहसिह देलवाड़े राज बेरिसाल की गोद जाकर देलवाड़ा का स्वामी हुआ।

कुंवर जयसिह के निस्संतान रहने पर अपने छोटे भाई उम्मेदसिह के छोटे पुत्र सुरताण

---

26 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 94

27 वही, पृ 90

28 वही, पृ 90 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड मे तत्कालीन बेदला राव का नाम केसरीसिंह लिखा है, किन्तु वह राव सुलतानसिंह होना चाहिये, जो राव बख्तसिंह का पिता था।

29 कुवर फतहसिंह देलवाड़े राज बेरीसाल के गोद गया और देलवाड़े का स्वामी हुआ। देलवाड़ा राजराणा फतहसिंह पहले मेवाड़ राज्य की इजलासखास और बाद मे महद्राजसभा का मेम्बर नियुक्त किया गया। महाराणा ने उसको 'राजराणा' का खिताब विधिवत प्रदान किया। अग्रेज सरकार द्वारा उसको 'रावबहादुर' का खिताब दिया गया।

सिंह को गोद लिया। सुरताण सिंह वहुत योग्य, कुशल और बुद्धिमान व्यक्ति हुआ और सादड़ी की उन्नति और शासन-कार्य में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

कुंवर उम्मेदसिंह का ज्येष्ठ पुत्र सादड़ी राजराणा के निस्संतान रहने पर गोद गया और सादड़ी का स्वामी हुआ।

उम्मेदसिंह के तीसरे और चौथे पुत्र चतरसिंह और जवानसिंह हुए।[30]

महाराणा भीमसिंह के काल में (अंग्रेज सरकार से संधि होने के वाद) मेवाड़ के सभी जागीरदारों को उनकी जागीरों के गांव सुनिश्चित करने के लिये पुराने पट्टों के आधार पर नये पट्टे प्रदान किये गये थे। तदनुसार संवत् 1874 मगसर वदी 2 के दिन महाराणा की ओर सादड़ी राजराणा को सादड़ी जागीर का नया पट्टा दिया गया।[31] सादड़ी जागीर में वड़ीसादड़ी पर्गना के गांवों के अलावा कतिपय गांव मावली, ऊँठाला, अचलाणा, कुंडाल, वारां, वीनोता, खेरोदा, भादसोड़ा तथा ताणा परगनों भी शामिल थे। कुछ गांव रखवाली के थे। (देखें परिशिष्ट 9)

---

30 वही, पृ 90

31 वही।
खालसा इलाके में सादड़ी नामक अन्य गाव राज्य के जिले का मुख्यालय था। वह छोटीसादड़ी कहलाया और सादड़ी ठिकाना का गाव वड़ीसादड़ी कहलाया।

16. राजराणा शिवसिंह (1865-1883 ई.)

शिवसिंह का जन्म वि सं. 1886 फाल्गुन वदी 13, रविवार के दिन हुआ। वि सं. 1922 भादवा वदी 7 के दिन राजराणा कीर्तिसिंह का देहान्त होने पर 36 वर्ष की आयु में उसका ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह सादडी ठिकाने का स्वामी हुआ। उसके एक वर्ष के वाद शिवरती महाराज गजसिंह राजराणा शिवसिंह को उदयपुर लाने हेतु वड़ीसादड़ी आया। महाराणा शंभूसिंह ने सादड़ी की हवेली आकर राजराणा की मातमपुर्सी की। दूसरे दिन वि.म 1923, मगसर वदी 5, तदनुसार 26 नवंवर 1866 ई. को महाराज गजसिंह महाराणा की ओर से सरोपाव लेकर हवेली आया। राजराणा शिवसिंह उस सरोपाव को पहिन कर नक्कारा, निशान एवं लवाजमा सहित अपनी सवारी लेकर महलों में पहुँचा। महाराणा शंभुसिंह द्वारा नाहरों को दरीखाने में उसकी तलवारवन्दी का दस्तूर पूरा किया गया। महाराणा ने उस समय राजराणा को मोतियों की कंठी, पूंछा जड़ाऊ, मोती चोकड़ो और सीरसोवा पहनाये तथा उसको सोने की मूठ वाली तलवार, सरोपाव एव घोड़े और हाथी वक्षे।[1]

1861 ई. में महाराणा सरूपसिंह का निधन होने पर महाराणा शंभूसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ था। शंभूसिंह के नावालिग होने से अंग्रेज सरकार ने राज्य का शासन चलाने के लिये अपने पोलिटिकल एजेंट मेजर टेलर की अध्यक्षता में मेवाड़ के कुछ सरदारों और अधिकारियों की एक रीजेन्सी कौंसिल (पंचसरदारी) नियुक्त कर दी, जो दो वर्षों तक कायम रही। उसके वाद 'अहिल्यान श्री दरवार राज्य मेवाड़' नामक कचहरी कायम की गई। नवंवर 1865 ई. में शभूसिंह को अंग्रेज सरकार ने शासन के पूरे अधिकार प्रदान किये।

पोलिटिकल एजेंट द्वारा प्रशंसा

जैसा कि ऊपर वर्णित है शिवसिंह कुंवरपदे में अपने भाईयों जयसिंह एवं उम्मेदसिंह के साथ सादड़ी की जमीयत लेकर पोलिटिकल एजेंट शावर्स द्वारा निम्वाहेड़ा पर की गई फौजकशी में मेवाड़ की सेना में रहते हुए वड़ी वीरता और युद्ध कौशल दिखाया था और

---

1 परपरागत दस्तूर के मुताविक महाराणा अपने ज्येष्ट पुत्र को नये राजराणा की मातमपुर्सी और तलवारवन्दी के लिये सादड़ी से उदयपुर लाने हेतु भेजा करता था। महाराणा के निस्सतान होने पर वह अपने किसी वरिष्ट सम्वन्धी को तदर्थ भेजा करता था। चूकि महाराणा शभूसिंह निस्सतान था, अतएव उसने शिवरती के महाराज गजसिंह को राजराणा को लाने हेतु भेजा था। उससे पूर्व महाराणा शभूसिंह का विवाह 1862 ई में सादड़ी राजराणा कीर्तिसिंह की पुत्री एव शिवसिंह की वहन के साथ सम्पन्न हो गया था।

उसी दिन दिनाक 26 नवबर, 1866 ई को महाराणा शभूसिंह ने सलूंवर के साथ लम्वे समय से चल रहे झगड़े को मिटाने की दृष्टि से सलूवर में रावत जोधसिंह को भी, जिसको वह सलूवर जाकर लिवा लाया था, तलवारवन्दी की रस्म सम्पन्न की। उसी दिन आमेट के रावत अमरसिंह तथा लसाणी एव वम्भोरावालों को भी महाराणा ने तलवार वधवा दी।—वीर विनोद, भाग 2, पृ 207-8

निम्बाहेड़ा पर विजय में बड़ी भूमिका निभाई थी। इस पर प्रसन्न होकर शावर्स ने शिवसिंह की प्रशंसा करते हुए महाराजा को पत्र लिखा था। उदयपुर लौटने पर पुनः शावर्स ने मौखिक तौर पर महाराणा के सन्मुख कुंवर शिवसिंह की प्रशंसा की। महाराणा ने स्वयं शिवसिंह की तदर्थ प्रशंसा में राजराणा कीर्तिसिंह को पत्र भेजा। इतना ही नहीं राज्य के पास रहन रखे हुए कतिपय गांव गूंदलपुर, हनुमंतिया, सैमिल्या, करमला, लवासिया आदि गांव विना ऋण वसूल किये सादड़ी ठिकाने को लौटा दिये, जिसके लिये राजराणा कीर्तिसिंह प्रयत्न कर रहा था।[2]

महाराणा के साथ अजमेर दरबार में जाना

1870 ई. में भारत में अंग्रेज सरकार के गवर्नर जनरल लार्ड मेयो ने राजपूताने के राजाओं का एक दरवार आयोजित किया, जिसमें भाग लेने हेतु मेवाड़ के महाराणा शंभूसिंह को आमंत्रित किया गया। पहले तो महाराणा द्वारा मेवाड़ राज्य के वाहर इस प्रकार के दरवार में शामिल होने से एतराज किया गया, किन्तु एजीजी. आदि अंग्रेज अधिकारियों के दवाव एवं समझाईश के वाद वह अपने सरदारों तथा जमीयत लेकर 19 अक्टूवर, 1870 ई. को अजमेर पहुँचा। सादड़ी राजराणा शिवसिंह भी महाराणा के साथ था। महाराणा के साथ जाने वालों अन्य उमरावों में वेदला, देलवाड़ा, कानोड़, पारसोली, देवगढ़, वेगूं, भैंसरोड़, वानसी, वटनोर, आसींद, कुरावड़, करजाली, शिवरती, वनेड़ा, हमीरगढ़, वोहेड़ा, भदेसर आदि प्रधान थे।[3] दरवार में महाराणा को पहली वैठक दी गई।

---

2 Mewar and the British by Dr. Devilal Paliwal, p 108
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले. महता सीताराम शर्मा, पृ 95

कुंवर शिवसिंह द्वारा निम्बाहेड़ा विजय के समय प्रदर्शित वीरता और रणकौशल के सम्बन्ध में रचित तत्कालीन कवि की कविता के कुछ अश इस भाति है, जिसमें पोलिटिकल एजेंट शावर्स द्वारा की गई प्रशंसा वर्णित है—

राण लखै फुरमाण, सुकरा कीरतसिंह रै।
आप भुजा अवसाण, हे लेनो नीमवाहिडो ॥2 ॥
सुण फरमाण सकाज, कुल दीपक सेवो कुवर।
ऊस लियो जुध आज, पिता हुकम पित धाम पर ॥3 ॥
सेवो जसो सधीर, ऊमेवो रजवट अडग
वरदाई वरवीर, भ्राता त्रिखैडे भुजग ॥4 ॥
....
मेघ चमू सत्रमार, कर फतह लीधौ किलो।
आदूधर आचार, सो वृद अजवाणे सवा ॥7 ॥
सुनी खवर सारूप, करी फतह सेवे कुवर।
जुधरे रथधर जूप, कलह क्लण वाहर कटै ॥8 ॥
श्रीमुख हुकम सुणाय, शोर साहेव प्रतिवचन सुण।
मेदपाट धरमाहि, साधरम भण सादड़ी ॥9 ॥

3 वीरविनोद, भाग 2, ले श्यामलदास, पृ 2100-2105

तीर्थयात्रा

अजमेर दरबार के बाद महाराणा की अनुमति लेकर राजराणा शिवसिंह अजमेर से तीर्थ यात्रा के लिये रवाना हुआ। वह प्रयाग, काशी, गया, जगन्नाथ एवं ब्रज की यात्रा करके सात महिनों बाद सादडी लौटा।[4]

महाराणा शंभूसिंह को जी.सी.एस. आई का खिताब मिलना

अगले वर्ष अंग्रेज सरकार की ओर से महाराणा शंभूसिह को जी.सी.एस आई.(ग्रेट कमांडर आफ दि स्टार आफ इंडिया) का खिताब दिया गया। महाराणा की ओर से इस पर एतराज किया गया और कहा कि मेवाड़ के महाराणा प्राचीन काल से "हिन्दुआ सूरज" कहलाते हैं, इसलिये उसको 'स्टार' का खिताब दिया जाना उचित नही है। इसके उत्तर में अंग्रेज सरकार के गवर्नर जनरल ने कहलाया कि ऐसा खिताब अंग्रेज सरकार केवल अपने बराबर वालों को ही देती है, अतएव यह अप्रतिष्ठा की बात न होकर प्रतिष्ठा की बात है। इस पर महाराणा राजी हो गया। खिताब प्रदान करने हेतु 6 दिसंबर, 1871 ई. को उदयपुर के राजमहल में मेवाड़ के सभी सरदारों आदि का दरबार रखा गया। दरबार में उपस्थित होने हेतु महाराणा की ओर से सादड़ी राजराणा शिवसिंह को विधिवत पर्वाना मिला। वह अन्य उमरावों एवं सरदारों के साथ दरवार में शरीक हुआ और महाराणा के पास वाली पहली सीट पर बैठ गया।[5] दरबार में अंग्रेज सरकार एजीजी कर्नल ब्रूक ने महाराणा को खिताब का तमगा पहना कर मेवाड़ के राज्यचिह्न सहित एक झंडा भेंट किया।[6]

---

4 Mewar and the British by Dr Devilal Paliwal, p 121
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 98

5 दस्तूर के अनुसार दरबार में महाराणा के पास वाली उमरावों की ओल में पहली बैठक सादड़ी के झाला उमराव की होती थी। इस दरबार में बेदला राव बख्तसिंह को उस जगह बिठाने का प्रयास किया गया। इन दिनों बेदला राव बख्तसिंह का 1857 ई के विद्रोह में अंग्रेज लोगों की मदद करने के कारण अंग्रेज अधिकारियो के साथ मेलजोल बहुत था और वे उसको विशेष मान्यता देते थे। इससे मेवाड़ का महाराणा और उच्च राज्याधिकारी भी बेदला राव को सर्वाधिक महत्व देने लगे थे। इस दरबार के समय बेदला राव बख्तसिंह ने भीडर कुवर मदनसिंह और पुरोहितों के साथ सटपट करके सादड़ी वाली पहली कुर्सी के आगे बैठ गया। जब सादड़ी राजराणा शिवसिंह ने देखा कि बेदला राव की कुर्सी उसके आगे रख दी गई है तो वह इसका विरोध करके वापस जाने लगा। यह विघ्नकारी घटना होती। इससे बचने के लिये महाराणा ने देलवाड़ा राजराणा फतहसिंह (शिवसिंह का छोटा भाई) को बुलाकर कहा कि 'दरबार में आकर सादड़ी राजराणा का इस भाति चला जाना बड़ा अशोभनीय होगा और ए, जी जी नाराज होगा, जिससे हमारी हतक होगी। इस समय अंग्रेजो का बड़ा पेच चल रहा है।' भाई फतहसिंह से बात करके तथा उस समय की स्थिति को देखकर शिवसिंह आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया।

6 अंग्रेज सरकार द्वारा महाराणा को दिये गये मेवाड़ के इस राज्यचिह्न मे एक ओर क्षत्रिय तथा दूसरी ओर भील अंकित था। उनके बीच में सूर्य और उसके ऊपर एकलिंगेश्वर की मूर्ति अंकित थी और नीचे ये अक्षर अंकित थे—"जो दृढ़ राखे धर्म को तिहि राखै करतार"—वीरविनोद, भाग 2, पृ 2112

मेवाड़ में शासन-सुधार

9 अक्टूबर, 1872 ई. को महाराणा शंभूसिह का निधन हो गया। महाराणा सज्जनसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। शंभूसिंह के राज्य-काल में 1863 ई. में 'अहलियान श्री दरवार राज्य मेवाड़' नामक कचहरी कायम करके अंग्रेज सरकार ने मेवाड़ में आधुनिक शासन-प्रवंध का प्रारंभ किया था। पुलिस और जेल का प्रवंध किया गया तथा मदरसा एवं अस्पताल खोले गये। 23 दिसम्बर 1869 ई. को 'महकमा खास' नामक कचहरी कायम की गई और दीवानी एवं फौजदारी अदालतों के कायदे जारी किये गये। इसके साथ स्टाम्प और रजिस्ट्री के नये नियम लागू किये गये। प्रशासन के सुप्रबध के लिये मेवाड़ राज्य के सात विभाग किये गये उनमें पांच पर एक-एक पुलिस मजिस्ट्रेट (नायव फौजदार) कायम किये गये तथा ताजीरात हिन्द और जाब्ता कानून फौजदारी के मुताबिक कार्यवाही शुरु की गई।[7]

प्रशासनिक सुधारों का क्रम महाराणा सज्जनसिंह के काल में जारी रहा। 1897 ई. में दीवानी एवं फौजदारी महकमों के ऊपर अपील की एक कौंसिल 'इजलासखास' कायम की गई, जिसमें वेदला राव बख्तसिंह, देलवाड़ा राजराणा फतहसिंह[8], पारसोली राव लक्ष्मणसिंह, आसींद रावत अर्जुनसिंह, शिवरती महाराज गजसिंह, सरदारगढ़ ठाकुर मनोहरसिंह, ताणाराज देवीसिंह[9] काकरवा राणावत उदयसिंह, आदि सदस्य नियुक्त किये गये। 1880 ई. में इजलासखास के स्थान पर महद्राजसभा की स्थापना की गई तथा राज्य के लिये कानून नं. 1 वनाकर राज्य का सारा प्रवंध महकमाखास और महद्राजसभा में बांटा गया।

सादड़ी जागीर में दीवानी एवं फौजदारी कानून लागू होना

इस भांति राज्य (खालसा) में किये गये उपरोक्त प्रवन्ध के अनुसार मेवाड़ दरवार द्वारा जागीरों में भी कानून का शासन लागू करने हेतु कदम उठाये गये। वि.सं. 1935 श्रावण शुक्ला 2 को महाराणा सज्जनसिंह ने मेवाड़ के उमरावों को अपनी जागीरों में फौजदारी एवं दीवानी मुकदमों सम्बन्धी व्यवस्था करने के वावत एक खास रुक्का भेजा। सादड़ी राजराणा शिवसिंह को भी यह रुक्का मिला। सादड़ी राजराणा की ओर से उसके संवंध में महाराणा को भादवा वदी 5 को कुछ एतराज लिखकर भेजे गये। उसके उत्तर में वि.सं. 1935 भादवा शुक्ला 7,

---

7 Mewar and the British by Dr Devilal Paliwal, p 114, 172
वीरविनोद, भाग 2, ले श्यामलदास, पृ 2119

8 पहिले लिखा गया है कि फतहसिंह सादड़ी राजराणा कीर्तिसिंह झाला का दूसरा पुत्र और शिवसिंह का छोटा भाई था। देलवाड़ा राजराणा झाला वैरीसाल के लाऔलाद होने से उसको सादड़ी से गोद लिया गया था। वह पहिले इजलासखास का और वाद में महद्राज सभा का सदस्य रहा। वह वड़ा वुद्धिमान, योग्य एव कुशल प्रशासक था। महाराणा फतहसिंह ने उसको विधिवत राजराणा का खिताब वक्षा था और अंग्रेज सरकार ने उसको 'राववहादुर' का खिताव दिया था।—उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 899

9 ताणाराज देवीसिंह भी सादड़ी झाला वश से था। सादड़ी राजराणा चन्द्रसेन के छोटे पुत्र दौलतसिंह को ताणा की जागीर मिली थी। उसके वाद ताणा में क्रमश नाथसिंह, गुलावसिंह, किशोरसिंह, हम्मीरसिंह, भैरवसिंह और देवीसिंह हुए।

गुरुवार को महाराणा सज्जनसिह ने सादडी राजराणा शिवसिह को एक रुक्का भेजा, जिसका आशय इस भाति था—

"स्वस्ति श्री राज सबसीधजी हजूर माहरो जुहार मालूम होवे अपरं आपरी अर्जी भादवा कृष्णा 5 की दीवानी एव फौजदारी मुकदमात की कार्यवाही बावत मालुम हुई।

1 इजलासखास और महकमाखास सबसे ऊपर की अदालतें हैं। उनके हुकम और फैसले की आप बराबर तामील करे। मुद्दई और मुद्दायला वडीसादडी के होने पर उसका फैसला सिवाय मुकदमात मुन्दर जमें कलम के अपील सुनने के अलावा, आप करेंगे। उसमें ऊपर से दखलंदाजी नही होगी।

2 जब किसी (सादड़ी के) आसामी को तलब करने अथवा किसी किस्म की कार्यवाही करना आवश्यक होगा तो इजलासखास या महकमाखास द्वारा आपके वकील की मार्फत हुआ करेगा। कार्यवाही के लिये मुनासिब समय दिया जावेगा। यदि मियाद के भीतर (आपका) वकील जवाब नही देगा तो महकमाखास आसामी को सीधा बुलाने की अथवा अन्य मुनासिब कार्यवाही करेगा।

3 जब कभी ऐसा कोई फौजदारी मुकदमा हो, जिसका एक फरीक आपकी जागीर का तथा दूसरा खालसा अथवा अन्य जागीर का हो तो आपकी जागीर के ऐसे मुजरिम को महकमाखास या इजलासखास के आदेशानुसार आप भिजवा देंगे।

4. कत्ल, डकैती, सती एवं राहजनी की घटनाओं में जिसमें कोई व्यक्ति मारा गया हो या मर जाने का खौफ हो अथवा वादाफरोशी अथवा जालसाजी की घटना हो, उसकी इत्तला घटना के समय आपकी ओर से महकमाखास को भेजी जावे और तहकीकात के बाद मिसल मजूरी के वास्ते इजलासखास में भेजी जाये तथा तलब करने पर ऐसे मुजरिमों को भेजा जावे।

5. हकरसी का कानून अथवा अन्य कोई कानून जो कुल मेवाड के लिये जारी हुआ है अथवा होवे तो उसके मुताबिक सादड़ी पट्टे में अमल किया जावे।

6. दीवानी या फौजदारी मुकदमे में एक फरीक वडीसादडी का हो और दूसरा खालसा अथवा अन्य पट्टे (जागीर) का हो तो नालिश चित्तौड़ हाकिम के पास होगी। सादड़ी पट्‌टे के नारपटी के गावों सम्बन्धी ऐसी कार्यवाही गिरवा हाकिम के पास होगी। ये हाकिम अपनी कार्यवाही आपके मार्फत करेंगे। ऐसे मुकदमों की सुनवाई अन्यत्र नहीं होगी। ये हाकिम अथवा अन्य कोई हाकिम सादड़ी पट्टे में दखलदाजी नही करेंगे।

7 जिन दीवानी मुकदमो के मुदायले बडीसादडी के पट्टे में रहते हैं और मुदई दूसरी जगह के हैं और दावा पाच सौ रुपये से अधिक का नही है तो मुदई को आपके पास भेजा जावेगा और आप फैसला करेंगे, जिसकी अपील इजलासखास मे होगी। कार्यवाही में बिना वजह विलंब होने पर इत्तला देकर इजलासखास तत्सम्बन्धी मिसल तलब करेगा।

8. बड़ीसादड़ी पट्टे की रिआया दस्तूर माफिक अदालतों में स्टाम्प पर नालिश करेगी। आपसे अन्य उमरावों की तरह नालिश, तहरीर, सनद वगैरा में स्टाम्प नहीं लिया जावेगा।

9. इजलासखास, चित्तौड़ अथवा गिरवा हाकिम द्वारा वड़ीसादड़ी के किसी आसामी पर जुर्माना किया जाने पर उसकी वसूली आपकी मार्फत होगी। पांच साल तक के कैद के मुजरिम को आप सजा दे सकेंगे और आपके ठिकाने के जेलखाने में अच्छा वन्दोवस्त होने पर उसकी सजा उसमें भुगताई जावेगी।

10. ठिकाने की अदालत को तीन साल की कैद की सजा देने एवं 1000 रुपये तक का जुर्माना करने का अधिकार होगा।

11. दीवानी मुकदमों में, जिनमें ठिकाना फरीकन हो, जिनकी तादाद रकम या मालियत दस हजार रुपयों तक हो या जिनकी मालियत कायम नहीं की जा सके और जिनमें मुदई ठिकाने की अदालत में दावा करे, ऐसे मामलों में ठिकाने की अदालत फैसला करे। ऐसे मामलों में अदालती फीस व दिगर फीस ठिकाने में जमा होगी। जिन मामलों में मालियत दस हजार से अधिक हो, उनकी ठिकाने की अदालत से तहकीकात करके अपनी राय के साथ उनको राज महद्राजसभा में पेश किया जावे। ऐसे मामलों में अदालती फीस ठिकाने में ही जमा होगी।

12. जिन मामलों में ठिकाना फरीक होगा, उनकी कार्यवाही जिला सेशन्स जज की अदालत से की जावेगी। अगर ठिकाना मुदई हो तो ऐसे मामले में दावा दायर होने पर अदालती फीस ठिकाने से वसूल नही की जावेगी। यदि फैसला ठिकाने के खिलाफ हो तो कायदे के मुताविक ठिकाने से वसूल होगी। फैसला ठिकाने के हक में होने पर फीस मुदायले से वसूल की जावेगी।

13. ठिकाना अदालत के फैसलों के खिलाफ अपील महद्राजसभा में होगी।

14. ठिकाने में दीवानी एवं फौजदारी मुकदमों की कार्यवाही हेतु ऐसे अहलकारों को नियुक्त किया जावेगा तो तफतीश एवं तहकीकात करने के योग्य, अनुभवी एवं नेकचलन वाले हों।

15. जो अधिकार इन कायदों के द्वारा ठिकाने को दिये गये हैं, यदि उनकी तामील महद्राज सभा के इत्मीनान की नही पाई गई तो राज्य का ज्युडिशियल अधिकारी ठिकाने के खर्चे पर ऐसे कार्य को अंजाम देने के लिये कुछ समय के लिये ठिकाने में भेजे जावेंगे। ऐसे अफसर के काम में अनुचित दखलंदाजी की जाने पर महाराणा साहब द्वारा मुनासिव आदेश दिया जावेगा।[10]

---

10 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।
Mewar and the British by Dr Devilal Paliwal, p. 166-168.

महाराणा और जागीरदारों में मतभेद

इस भांति महाराणा सज्जनसिंह के राज्यकाल में खालसा इलाके के साथ जागीरों में भी दीवानी एवं फौजदारी कानून लागू किये गये। इससे जागीरदारों के चले आ रहे तत्सम्बन्धी अधिकारों पर अकुश लग गया। अब सादड़ी ठिकाने में नियमित रूप से कचहरी, पुलिस और जेल आदि का सुप्रबंध करना पडा। ये सब बदलते हुए समय के अनुसार थे और राजराणा ने राज्य के कानून के शासन को स्वीकार कर लिया। सादड़ी के अलावा शाहपुरा, बनेडा, बेदला, बिजोलिया, बेगूं, बदनोर, देलवाडा, आमेट, कानोड़, पारसोली, कुरावड़, आसीद, लावा आदि के सरदारों ने नवीन व्यवस्था को मंजूर कर लिया। कोठारिया, सलूंबर, देवगढ़, मेजा, गोगूंदा, भींडर, वानसी, भैंसरोड़ ठिकानों ने यद्यपि राज्य के अपील सुनने के अधिकार को मजूर किया किन्तु हकरसी कानून नहीं लागू करने एव दीवानी और फौजदारी मामलों में मालियत तथा सजा एवं जुर्माना की सीमा नही रखने की माग की और दस कलमों की एक दरखास्त उनकी ओर से महाराणा को भेजी गई। फिर उनकी ओर से तेईस कलमों की एक और दरखवास्त महाराणा को भेजी गई, जिसमें उपरोक्त विषयों के अलावा राह मुरजाद, नजाराणा, गोद, तलवारवन्दाई की राशि, छटूंद, चाकरी, दाण आदि वातों के संबंध में उनके अधिकार सुरक्षित रखने की उनकी मांगें जोड़ी गई। इस पर महाराणा सज्जनसिंह ने इन मामलों को आपसी सलाहमशविरा से तय करने हेतु 17 सदस्यों की एक कमेटी नियुक्त कर दी और एक खास रुक्का[11] संवत् 1936 आसाढ़ सुदी 7 के दिन सादड़ी सहित सभी बड़े उमरावों को भेजा गया और कहा गया कि आगामी हरियाली अमावस्या के दिन कमेटी के सभी सदस्य उदयपुर में आकर बैठक करें और अपनी राय बनावें, जिससे हमेशा के लिये इंतजाम किया जा सके।[12]

---

11 स्वस्ति श्री राज सवसीगजी हजूर म्हारों जुहार मालुम वे अप्रच कतराक सीरदारा अबार चद कलमा पेस की दी जीमें कतरीक कलमा खाप-खाप मे सु एक सीरदार वा मुसदी पासवाना की कमेटी होवा की राए ते करनी जरूर मुनासीब समझी गई है। कमेटी में नीचे लिख्या मुजब मेम्बर वेगा—

1 बेदले राव तखतसींगजी 2 बिजोलिया राव सवाई गोविन्ददासजी 3 देवगढ़ रावत कीसनसींगजी 4 बेगम रावत सवाई मेगसीगजी 4 देलवाड़ा राज फतेसीगजी 6 आमेट रावत सवनाथसीगजी 7. कानोड़ रावत उमेदसींगजी 8 भींडर महाराज मदनसीगजी 9 बदनोर ठाकुर केसरसीगजी 10 साहपुरे राजाधिराज नाहरसीगजी, 11 सरदारगढ़ ठाकुर मनोरसीगजी 12 राय पन्नालाल मेहता 13 सहीवाला उरजणसीगजी 14. कोठारी राय छगनलालजी 15 परोत पदमनाथ 16 पचोली अखैनाथ 17 बगसी मथुरादास

या कमेटी सावण सुदीं में वेणी चाहीजे जद नवरात रे पेली सब बात ते पाइएगी ई वास्ते आपने सावन वद में याने हरीयाली अमावस पर आवणो चाहीजे सो ई मीयाद पर जरूर पदार जावे अगर कोई सवव बेमारी वगेरा लाचारी को असो वे के जीसु ई मोका पर आवा में देर वे तो जो भी मेम्वर कमेटी में मुकरर कीया हुवा है या में सु मुनासीव समझे ज्या ने आपकी तरफ सु अखत्यार देणो चावे सो वे राय देगा जो आपकी तरफ की समझी जावेगा ये काम मुदत तक नेकनामी रहेवा को और हमेसा के लिये आराम इन्तजाम जरूरी है सो आवा में बिलकुल देर नही वेणी चावे। सवत् 1936 का आसाढ सुदी 7

12 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

महाराणा सज्जनसिंह द्वारा नियुक्त उमरावों और अधिकारियों की बैठक नही हुई। 1884 ई. में महाराणा सज्जनसिंह का देहान्त होने और उसकी जगह फतहसिंह का महाराणा बनने के बाद आपसी सामंजस्य और विश्वास के वातावरण में कमी आ गई। महाराणा फतहसिंह निरंकुश प्रकृति का शासक था। उससे सरदारों का विरोध और असहयोग बढ़ने लगा। संवत् 1955 कार्तिक वदी 9 को मेवाड़ के लगभग सभी बड़े-छोटे उमरावों की ओर से उनके वकीलों द्वारा संयुक्त रूप से अपना मांग पत्र महाराणा को भेजा गया। इस पर सादड़ी की ओर से वकील सोलंकी सामंतसिह ने दस्तखत किये थे। उसका उत्तर नही प्राप्त होने पर 54 कलमों का स्मरण-पत्र सं. 1955 काती सुदी 15 तथा उसके बाद एक अन्य पत्र मगसर वदी 13 को महकमाखास को भेजे गये। उसके बाद सरदारों की ओर से मगसर सुदी 4 के दिन अंग्रेज रेजिडेंट रेवेनशा को अपने मांग-पत्र की प्रति भेजकर लिखा गया—"हमारी तकलीफें बढ़ रही हैं। महकमाखास सुनवाई नही करता। जो कमेटी बनाई गई थी उसकी मीटिग नही की जाती। हमारी तकलीफों पर गौर करें और हुकम फरमावें।" रेजिडेंट ने महकमाखास को लिख कर उसके सम्बन्ध में कार्यवाही करने हेतु आग्रह किया। किन्तु महाराणा फतहसिंह बहाने बनाकर कार्यवाही टालता रहा, कमेटी की मीटिंग नहीं हुई और अंग्रेज सरकार ने इन मामलों में सीधा दखल करने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार महाराणा फतहसिंह के राज्यकाल में विवाद चलते रहे। अंत में 1930 ई में महाराणा भूपालसिंह के गद्दीनशील होने के बाद ही महाराणा और सरदारों के बीच के सभी विवादों एवं मतभेदों का संतोषजनक हल निकाला गया।[13]

कुंवर रायसिंह को गोद लेना

राजराणा शिवसिह के कोई संतान नही होने से संवत् 1932 (1875 ई.) में उसने अपने छोटे भाई उम्मेदसिंह के कुवर रायसिंह को योग्य, बुद्धिमान और कर्मठ देखकर उसको गोद रख लिया, जिसकी मंजूरी विधिवत महाराणा सज्जनसिंह से प्राप्त की गई। राजराणा शिवसिंह ने रायसिंह को युवराज की पदवी प्रदान की और उससे ठिकाने का प्रशासनिक कार्य करवाने लगा। राजराणा शिवसिंह अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था और वह अधिकाधिक धार्मिक एवं परमार्थ के कार्यों में लीन रहने लगा अतएव कुंवरपदे में ही रायसिंह ठिकाने का लगभग सारा कार्य देखने लगा था।[14]

बागोर ठिकाने पर फौजकशी

1875 ई. के सितम्बर माह में महाराणा सज्जनसिंह द्वारा बागोर ठिकाने पर फौजकशी की गई। महाराणा शंभुसिंह की मृत्यु होने पर बागोर ठिकाने से नाबालिग सज्जनसिंह को गोद लिया जाकर मेवाड़ का महाराणा बनाया गया। उस समय बागोर के स्वामी सोहनसिंह ने मेवाड़ के गद्दी के लिये स्वयं का दावा पेश किया, जिसको अंग्रेज सरकार ने मंजूर नहीं किया और

---

13 वही।

14 वही।

उसको वागोर भेज दिया। सोहनसिंह ने वागोर जाकर विद्रोह कर दिया और अशांति उत्पन्न कर दी। इस पर उसको दवाने हेतु मेजर गर्निंग की अध्यक्षता में राज्य की सेना, मेवाड़ भील कोर और उमरावों की जमीयतों को वागोर भेजकर सोहनसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। उसको वनारस को भेज दिया गया और वागोर की जागीर जब्त कर ली गई।[15] इस फौजकशी में भाग लेने हेतु सादडी की जमीयत भेजने हेतु संवत् 1932 भादवा वदी 12, शनिवार को एक पर्वाना महाराणा की ओर से राजराणा शिवसिह को भेजा गया था, जिसमें लिखा था—"वागोर फौज जावे है। ठावा होवे जी की लार आपकी जमीयत आछा गोड़ा रजपूत ससतर वारूद गोली समेत भेज देवेगा सो भादवा सुद 5 सनीवार के दन वागोर पूग जावे देर नहीं होवे।"[16]

नाथद्वारा पर फौजकशी

इसी भांति नाथद्वारा के गोस्वामी गिरधरलाल द्वारा राज्य की आज्ञाओं की अवहेलना करने और राज्य के विपरीत कार्यवाही करने पर 8 मई, 1876 ई. को अंग्रेज रेजिडेंट और मेवाड़ के कुछ सरदार फौज लेकर नाथद्वारे गये और गोस्वामी को गिरफ्तार कर लिया। उसको मेवाड़ से वाहर निकाल कर मथुरा भेज दिया। उसके स्थान पर उसके पुत्र गोवर्धनलाल को गोस्वामी वनाया गया।[17] इस अवसर पर भी सादड़ी से जमीयत मंगाई गई। संवत् 1932 के पोस महिने में महाराणा की ओर से सादड़ी राजराणा को लिखा गया—"श्री जी दुवारे श्री गुसाई जी भी अदूल हुकमी है ई वास्ते उठां का वदोवस्त वास्ते फौज भेजी जावे सो पूरी जमीयत लेर भेला वो पोस सुद 12 के दन उदयपुर आवो।" दोनों अवसरो पर सादड़ी राजराणा की ओर से मदद हेतु अपनी जमीयतें भेजी गई।[18]

चित्तौड़ दरबार में कुंवर रायसिंह का भाग लेना

1881 ई. में अंग्रेज सरकार ने महाराणा सज्जनसिंह को जी सी एस आई का खिताव देने का निर्णय किया। प्रारंभ में महाराणा ने महाराणा शंभुसिंह की भांति अपने वंश के प्राचीन गौरव और हिन्दुआ सूर्य होने के नाम पर उसको स्वीकार करने के वारे में अपनी आनाकानी जताई। किन्तु जव यह तय हुआ कि अंग्रेज सरकार का गवर्नर जनरल एवं वायसराय लार्ड रिपन स्वयं आकर अपने हाथ से यह खिताव महाराणा को देगा तो उसने मंजूर कर लिया।[19]

23 नवम्वर, 1881 ई. को चित्तौड़गढ़ में उसके लिये दरवार आयोजित किया गया, जिसमें शामिल होने के लिये मेवाड़ के उमरावों को अपनी जमीयतें लेकर वुलाया गया। महाराणा

---

15 Mewar and the British by Dr Devilal Paliwal, p 133-135

16 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।
Mewar and the British by Dr Devilal Paliwal, p 128-129

17 Mewar and the British by Dr Devilal Paliwal, p 134

18 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

19 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 825
Mewar and the British by Dr Devilal Paliwal, p 177

द्वारा खास रुक्का सभी उमरावों को भेजा गया। उसके बाद वि.सं. 1938 आसोद वदी (19 सितंबर, 1881 ई.) को महकमाखास के सचिव पन्नालाल मेहता का एक पत्र ठिकाने के नाम आया जिसमें सूचित किया गया कि "लाटसाहव वहादुर चित्तौड़ आ रहे हैं। वड़ा जलसा होगा। ठिकाने से पूरे जुलूस एवं जमीयत सहित आवे। निवास डेरो में होगा, इसलिये उम्दा डेरे लेकर आवें।" उसके वाद 12 नवंवर, 1881 का एक और पत्र महकमाखास की ओर से मिला, जिसमें कुवरजी (रायसिंह) को अपने साथ हाथी लाने के लिये लिखा गया।[20]

राजराणा शिवसिंह ने अपने युवराज रायसिंह को चित्तौड़ दरवार में शरीक होने के लिये जमीयत देकर भेजा। वायसराय के चित्तौड़ आगमन पर स्वागत एवं सुरक्षा की दृष्टि से मेवाड़ के सरदारों की जमीयतें रेलवे मार्ग के दोनों ओर खड़ी की गई। सादड़ी की जमीयत नक्कारे एवं निशान सहित सड़क के दाहिनी ओर खड़ी रही। दरवार में मेवाड़ के 69 वड़े एवं छोटे सरदार तथा कई चारण, पासवान, अहलकार आदि शरीक हुए। चित्तौड़ में सभी जागीरदारों के डेरे दस्तूर मुताविक लगाये गये। सादड़ी का डेरा महाराणा के डेरे के दाहिनी ओर प्रथम रहा। महाराणा के लाल रंग के डेरे के समान सादड़ी का डेरा भी लाल रंग का था। दरवार में कुर्सियों की चार लाइनें मेवाड के सरदारों के लिये रखी गई और एक लाइन अंग्रेज अफसरों के लिये रही। कुंवरों की ओल में सादड़ी कुंवर रायसिंह प्रथम कुर्सी पर वैठा उसके वाद वेदला कुंवर वैठा।[21]

वायसराय लार्ड रिपन ट्रेन द्वारा चित्तौड़ पहुँचा और 23 नवम्वर, 1881 के दिन दरवार में महाराणा को जी.सी.एस. आई. का तगमा पहनाकर सिंहासन पर विठाया और 21 तोपों की सलामी दी गई।[22]

महाराणा सज्जनसिंह का सादड़ी में मेहमान होना और शिवसिंह को 'राजरणा' का खिताब मिलना

महाराणा सज्जनसिंह ने सरदारों के साथ अपने सम्वन्ध सुधारने और उनके साथ मेलजोल वढ़ाने हेतु भरसक प्रयास किया। इसी प्रयोजन से उसने 1878 ई. में मेवाड़ के कई ठिकानों का दौरा किया और वहां जाकर सरदारों को खिलअत, आभूषण आदि देकर उनकी इज्जत वढ़ाई। 28 नवंवर, 1878 ई. को महाराणा नाहरमगरे से रवाना होकर वाठरडे, कानोड़, वोहेड़ा, वानसी होते हुए 1 दिसम्वर को वड़ी सादड़ी पहुँचा। राजराणा शिवसिंह ने अपने कुंवर रायसिंह के साथ सादडी से एक मील दूर आकर महाराणा की पेशवाई की और महाराणा को सादड़ी लाकर दरीखाने में गादी पर विठाकर नज्र-नछरावल पेश किये। उसके वाद उसके जागीरदारों

---

20 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

21 वही।

22 उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, ले गौ ही ओझा, पृ 825
Mewar and the British by Dr. Devilal Paliwal, p 177-178

और कर्मचारियों ने महाराणा को अपनी-अपनी नज्रें पेश की। राजराणा ने बड़ी मोहब्बत एवं स्वामिभक्ति दिखाकर महाराणा की मेहमानदारी की और हाथी, घोड़े, जेवर, सरोपाव वगैरा महाराणा को पेश किये। महाराणा सादडी राजराणा के आतिथ्य से अत्यन्त प्रसन्न एवं प्रभावित हुआ। उसको खिलअत आदि देकर उसका सम्मान बढ़ाते हुए उसको 'राजरणा' का खिताब दिया।[23] तदर्थ 2 दिसम्बर, 1881 ई. को महाराणा ने एक खास रुक्का लिखकर भेजा—

"स्वस्ति श्री राजराणा शिवसिहजी हजुर म्हारो जुहार मालूम होवे, म्हारो पदारवो स्वदेशीय स्थान मेदपाट का पर्यटन के वास्ते हुवो सो सादडी पदारया जी राजरणा पदवी इनायत सर्व रीती प्रसन्न होय करी है सो पुस्तदरपुस्त कायम रहेगा। संवत् 1935 का मार्गशीर्ष शुक्ला 18, चन्दे, ता. 2 दिसंबर, 1878 ई"[24]

पदवी को 'राजराणा' लिखने का आग्रह

1878 ई. में महाराणा सज्जनसिह द्वारा सादड़ी राजराणा को "राजरणा' की पदवी देने के पश्चात् 1881 ई. में सादड़ी राजराणा की ओर से महाराणा को निवेदन किया गया कि राज्य की ओर जो रुक्के, परवाने तथा अन्य पत्रादि भेजे जाते हैं उनमें सादड़ी उमराव के लिये 'राजरणा' लिखा जाता है, उसके बजाय 'राजराणा' लिखा जाय। इससे पहिले उसके लिये 'राज' अथवा 'रणा' लिखा जाता था। किन्तु सादड़ी के झाला स्वामियों ने अपने प्राण देकर महाराणाओं के लिये जो अनुपम बलिदान किया है, उसके कारण सादडी के झाला उमराव को राज्य में परम्परा से सभी भांति महाराणा के बराबर पद-प्रतिष्ठा दी गई है। सादड़ी के उमराव हमेशा से अपने शिकमी जागीरदारों आदि के साथ पत्रव्यवहार में अपने लिये राजराणा अथवा महाराणा उपाधि का प्रयोग करते रहे हैं। महकमाखास द्वारा जाच करने पर पाया गया कि चूंकि महाराणा स्वयं को भी 'राणा' सम्बोधित किया जाता रहा, उसने किसी अन्य सरदार को 'राणा' उपाधि प्रदान नही की। भोमट के पानरवा ठिकाने के स्वामी को भी 'रणा' उपाधि से ही सम्बोधित किया जाता रहा यद्यपि व्यवहार में वहां के ठिकानेदारों को 'राणा' कहा जाता था। 1881 ई. में महकमाखास से सादडी के स्वामी को 'राजरणा' नाम से लिखकर भेजे गये कई पत्र सादड़ी ठिकाने से इस वजह से वापस भी कर दिये गये और लिखा गया कि 'राजराणा' नाम से पत्र भेजे जावें। किन्तु ठिकाने के इस तर्क को अस्वीकार करते हुए महकमा खास, उदयपुर ने वि.सं. 1938, सावण वदी 9 (18 जुलाई, 1881 ई.) को अपने पर्वाने द्वारा सादडी के फौजदारों कामदारों

---

23 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

24 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 101

ठिकाने की प्राचीन पत्रावलियों से पाया जाता है कि मेवाड़ के महाराणाओं द्वारा भेजे गये रुक्कों, पर्वानों आदि में सादड़ी के झाला जागीरदार को कभी 'राज' तो कभी 'रणा' सम्बोधित किया गया है। महाराणा की ओर से अब आगे सादड़ी के झाला ठिकानेदार को 'राजरणा' सम्बोधित करना प्रारभ किया गया। सामान्य पत्राचार में और अपने अधीनस्थ जागीरदारो को लिखे गये पत्रों में सादड़ी के स्वामियों द्वारा स्वय के लिये 'राजराणा' और कभी-कभी 'महाराणा' भी लिखा गया मिलता है।

के नाम से निम्नलिखित स्पष्टीकरण भेजा गया—

"कागज थारो लीख्यो सावण वदी 4 को 'राजरणा' की जगह 'राजराणा' कर लीखवा को हुकम होवे श्री जी हजुर दाम इकवालहु में मालूम होकर मुजीव हुकम लीखी जावे है के अवलसु ई 'रणा' कर लीख्या जाता हा श्री वड़ा हजुर की वखत में था 'राणा' कर लीख्या वी वगत रोकटोक हुई परत या वात पाई गई के थाकी तरफ का कागद में राणा कर लीख्या जावे अठा सुं रणा कर लीखेगा अर संवत् 1935 का साल में राजरणा को खीताव वखसी जी दीन सुं आज तक राजरणा ही लीख्यो जावे है आज तक ई माफक ही वरताव रेवे है वो थांकी दरखास्त सुंई जाहर है दोयम यो खीताव वखशो जी के वावत सन्द भी वखशी गई है तो वी ने भी देखणी छावे के काई लीखा है अव एकदम ही उस तरह उजर लीखणो वलके खानगी वाला की जवानी मालुम हुई के कागद भी न्ही लीया गया सो यो मुनासव नहीं है अगर या ही खवाहीश हो तो श्री जी हजुर दाम इकवालहु में अरज मारुज करावणी छावे ही कुंके हमेसा की वात में अठा सु कुछ फरक नही कीयो गयो है कागद फेरवा की तो थांकी उम्दा कारवाई न्ही समझी जा सके है।"[25]

राजराणा शिवसिंह का देहान्त

संवत् 1939 के माघ महिने में राजराणा शिवसिंह अपने छोटे भाई देलवाड़ा राजराणा फतहसिंह की पुत्री के विवाह में शरीक होने के लिये देलवाड़ा गया। वहां उसको खांसी और पार्श्वशूल की गंभीर शिकायत हुई। रोग प्रतिदिन वढ़ता गया और किसी इलाज का असर नहीं हुआ। देलवाड़ा में ही माघ सुदी 4 सं. 1939 को राजराणा शिवसिंह का देहावसान हो गया। उसकी दाह-क्रिया देलवाड़े से तीन मील दूर एकलिंगजी के मंदिर के निकट की गई। उस स्थान पर उसके उत्तराधिकारी राजराणा रायसिंह ने संगमरमर का एक स्मारक चवूतरा वनवाया।[26]

शिवसिंह का कृतित्व

शिवसिंह अपनी युवावस्था में ही मेघावी, योग्य, कुशल एवं उत्तरदायी व्यक्ति के रूप में पहचाना गया। यही कारण था कि राजराणा कीर्तिसिंह (दूसरे) ने उसको कुंवरपदे में ही ठिकाने के प्रशासन-कार्य में भागीदार वना दिया। उसने कुंवरपदे काल में ही अपने परिश्रम और लगन से सादड़ी ठिकाने में सुधार के कार्य में वड़ी सफलता प्राप्त की। 1857 ई. के विद्रोह-काल में निम्बाहेड़ा पर कब्जा करते समय उसने वड़ी वीरता और रणकौशल का परिचय दिया, जिसकी अंग्रेज अधिकारियों ने वड़ी प्रशंसा की। अपनी वुद्धिमता और व्यवहार-कुशलता के कारण वह महाराणा सरूपसिंह का मर्जीदां वन गया। उसने ठिकाने के कई गांव, जो कर्ज के कारण राज्य के अधीन रहन थे, उसने महाराणा को प्रसन्न करके विना अग्रिम कर्ज चुकाये

---

25 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

26 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 102

राज्य से वापस प्राप्त कर लिये। आयु वढने के साथ वह अधिकाधिक धार्मिक प्रवृत्ति का होता गया। इसके कारण ठिकाने के प्रशासनिक कार्य के प्रति उसकी उदासीनता बढने लगी। इस पर उसने अपने छोटे भाई उम्मेदसिंह के पुत्र रायसिंह को योग्य, बुद्धिमान, परिश्रमी और निष्ठावान प्रवृत्ति का देखकर उसको गोद ले लिया और उससे प्रशासन का कार्य करवाने लगा। यह निस्संदेह है कि राजराणा शिवसिंह अपने काल के उन कतिपय विचारवान उमरावों में से था, जिन्होंने महाराणा सज्जनसिंह द्वारा जारी किये गये दीवानी एवं फौजदारी कानून एवं नियमों को सहर्ष अपनी जागीर में लागू करना शुरू किया।

राजराणा शिवसिंह के काल में ठिकाने की वित्तीय हालत में पर्याप्त प्रगति हुई और ठिकाने की आय में वृद्धि हुई। उसके काल में सादड़ी में कई निर्माण कार्य हुए।

निर्माण कार्य

संवत् 1917 में कुंवरपदे में शिवसिंह ने सादडी राजमहलों के पूर्व-उत्तर दिशा में थोड़ी दूर पर निर्मित वड़े तालाव पर पक्का वांध वनवाया। पहिले वर्षा ऋतु में तालाव का वांध टूट जाया करता था। उसी वर्ष सादड़ी के दक्षिण में पहाड़ों में झरना नामक नाले के समीप एक उत्तम तालाव वनवाया, जो शिव-सागर नाम से प्रसिद्ध हुआ।[27]

संवत् 1919 (1862 ई.) में कुवर शिवसिंह ने नाहरा के दरीखाने के ऊपर तीन मजिला महल वनवाये जिनका निर्माण पूरा होने पर राजराणा की ओर से एक वड़ा जलसा किया गया जिसमें देलवाड़ा, कानोड, वानसी, कुण्डा, साटोला, अठाना, ताणा, आकोला, लूणदा आदि ठिकानों के सरदार मेहमान हुए।[28]

संवत् 1928 की माघ सुदी 13 के दिन कानोड़ वाली सारंगदेवोल रानी रूपकंवर द्वारा मुख्य द्वार के निकट हजारों रुपया व्यय करके श्री रामचन्द्रजी का एक मंदिर एवं धर्मशाला वनवाकर प्रतिष्ठा की गई। इस मदिर की प्रतिष्ठा में गोगूंदा, देलवाड़ा एवं कानोड़ के उमराव शरीक हुए।[29]

सवत् 1933 (1876 ई.) में राजभवन से पूर्व दिशा में कई हजार रुपया व्यय करके चतुर्भुजनाथ का मंदिर वनवाया और मदिर के निकट एक धर्मशाला एवं वावड़ी वनवाकर माघ सुदी 5 के दिन मंदिर की प्रतिष्ठा की गई। इसी वर्ष सैलानावाली राठौड़ रानी एजनकंवर द्वारा सादड़ी में श्रीकृष्ण का मंदिर और धर्मशाला का निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ। राजराणा शिवसिंह के छोटे भाई महाराज उम्मेदसिंह ने भी श्रीद्वारिकाधीश का एक मंदिर निर्मित करवाया। कानोड़ वाली सारंगदेवोत रानी द्वारा सादड़ी से एक कोस दूरी पर कानोड़ जाने वाले मार्ग पर एक

---

27 श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 99

28 वही।

29 वही।

वावड़ी का निर्माण करवाया गया। राजराणा द्वारा चतुर्भुजनाथ मंदिर के प्रतिष्ठा-समारोह में राजराणा ने पंडितों, विद्वानों एवं कवियों को हजारों रुपये दानपुरस्कार स्वरूप प्रदान किये तथा लगभग चालीस गांव अपने प्रतिष्ठित सरदारों एवं कर्मचारियों को प्रदान किये। इन सव कार्यों में राजराणा शिवसिंह को अपने दोनों छोटे भाईयों जयसिंह और उम्मेदसिंह का पूरा सहयोग मिला।[30]

विवाह

राजराणा शिवसिंह ने निम्नलिखित विवाह किये—

प्रथम विवाह वारह वर्ष की आयु में सैलाना महाराज तख्तसिंह राठोड़ की पुत्री एजनकंवर के साथ हुआ।

दूसरा विवाह वि.सं. 1909 फाल्गुन वदी 2 के दिन कानोड़ रावत अजीतसिंह सारंगदेवोत की पुत्री रूपकंवर के साथ हुआ।

तीसरा विवाह उसी वर्ष चेत वदी 2 के दिन थाना के रावत गंभीरसिंह चूंडावत की पुत्री फूलकंवर के साथ हुआ।[31]

निस्संतान रहने से राजराणा ने सं. 1932 में अपने छोटे भाई उम्मेदसिंह के पुत्र रायसिंह को गोद लिया जो उसकी मृत्यु के वाद सादड़ी का राजराणा हुआ।[32]

---

30 वही।

31 वही, पृ 94-95

32 वही, पृ 99

17. राजराणा रायसिंह तृतीय (1883-1897 ई.)

रायसिंह का गोद आना

राजराणा रायसिह[1] का जन्म वि स.1916, आसाढ़ शुक्ला 9 के दिन हुआ। वह स्वर्गीय राजराणा शिवसिह के छोटे भाई उम्मेदसिंह का पुत्र था। जब वह 16 वर्ष का था, तब उसको वि सं 1932 में राजराणा शिवसिह के निस्संतान होने से, राजराणा द्वारा गोद ले लिया गया था।[2] प्रथम, शिवसिह अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति का होता जा रहा था, दूसरे वह कुंवर रायसिह की अल्पायु मे ही उसकी प्रतिभा, बुद्धिमता और कार्यकुशलता से प्रभावित हुआ था, अतएव उसने राज्य के कार्यों मे उसकी सहायता लेने और प्रशासन-कार्य में उसको प्रारम्भ से ही अनुभव कराने की दृष्टि से उसको गोद ले लिया था। और जैसा कि पहिले लिखा गया है कुंवर रायसिंह ने अपने कुंवरपदे काल में ही ठिकाने मे नवीन विधि से प्रशासन जमाने, ठिकाने की आय में वृद्धि करने और निर्माण-कार्य सम्पन्न करने आदि का कार्य किया था।

प्रारम्भिक शिक्षा

कुवर रायसिह को बाल्यावस्था से ही संस्कृत भाषा और साहित्य का अच्छा अध्ययन कराया गया था। प्रधानत· मनुस्मृति का अच्छा ज्ञान प्रदान किया गया था। बाद में उसको वर्णाश्रम-धर्म और राजनीति-शास्त्र में अच्छी शिक्षा मिली थी। वि सं.1935 मे जब कुवर रायसिंह बीस वर्ष का था, राजराणा ने उसको राज्यकार्य में कई प्रकार के उत्तरदायित्व देना और सहयोग लेना शुरू कर दिया। उसके कुछ समय बाद उसका ज्ञान और कुशलता देखकर उसको ठिकाने की न्याय-व्यवस्था के कार्य में भी अधिकार प्रदान किये गये।[3]

---

1 Rajrunna Rai singh of Bari Sadri holds the first place among Solah (sixteen) nobles (of Mewar) His estate is valued at Rs 60,000 a year The estate has 89 villages, pays a tribute of Rs 1064 to the Durbar Rajrunna Rai singh, who is now 32 years of Age, succeeded his uncle and adopted father in 1883 A D He has no son –(Chiefs and Leading Families in Rajputana by C S Bayley, p 32 Published in 1894 A D)

2 कुवर रायसिंह राजराणा शिवसिंह के सबसे छोटे भाई उम्मेदसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था। शिवसिंह का तीसरे नम्बर का छोटा भाई महाराज जयसिंह भी निस्सतान रहा। अतएव महाराज उम्मेदसिंह का दूसरा पुत्र सुलतानसिंह (सुरताणसिंह) जगसिंह के गोद गया। जैसा कि ऊपर वर्णित है, शिवसिंह का दूसरे नम्बर का छोटा भाई फतहसिंह देलवाड़ा गोद गया था। महाराज उम्मेदसिंह के दो और पुत्र चतरसिंह और जवानसिंह हुए।

3 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।
श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले महता सीताराम शर्मा, पृ 103

तलवारबन्दी

वि. स. 1939 माघ सुदी 4 के दिन राजराणा शिवसिंह का देहान्त होने पर रायसिंह सादड़ी का स्वामी हुआ। महाराणा सज्जनसिंह के संतान नही होने से विधि अनुसार शिवरती महाराज गजसिंह को राजराणा रायसिह को उदयपुर लाने हेतु सादड़ी भेजा गया। रायसिंह के उदयपुर आगमन के वाद संवत् 1940 मगसर वदी 5, सोमवार के दिन महाराणा सज्जनसिह मातमपुर्ती के लिये सादड़ी की हवेली आया। उसी दिन की सरवत विलास की तिवारी में महाराणा द्वारा राजराणा रायसिंह की तलवारवन्दी की रस्म पूरी की गई।[4]

ठिकाना-प्रशासन का आधुनीकरण

गद्दीनशीन होने के वाद राजराणा रायसिंह ने ठिकाने के प्रशासन में बड़े परिवर्तन शुरू किये। उस समय तक प्रशासन का वहुत सारा काम जवानी तौर पर चलता था। दीवानी और फौजदारी मुकदमों की कार्यवाही की मिसल वना कर नही रखी जाती थी। अधिकांश मामलों में ठिकाने के अफसर स्वयं निर्णय लेते थे। कोई पक्का दफ्तर नही था। राजराणा रायसिंह ने सर्वप्रथम ठिकाने का हिसावदफ्तर कायम किया और उसके साथ खजाने का विभाग वनाया गया। ठिकाने के सभी परगनों की आय खजाने में जमा होने लगी। प्रत्येक सीगे के अलग-अलग दफ्तर कायम करके उसके हाकिम नियुक्त किये गये। प्रत्येक हाकिम अपने कार्य की रिपोर्ट राजराणा को भेजता था। विभिन्न मदों से होने वाली आय खजाने के मार्फत वसूल होकर जमा होने लगी। विभिन्न मदों पर होने वाले व्यय का ब्यौरा तैयार करके कुल खर्चे की वार्षिक रकम निश्चित की गई, जैसे रसोड़ा, जनाना, मकानात, पायगा, कर्मचारियों का वेतन, दफ्तरों की व्यवस्था तथा अन्य मदों पर होने वाला व्यय। व्यय करने का तरीका भी निश्चित किया गया। प्रत्येक मद पर होने वाले व्यय की चिट्ठी सम्वन्धित विभाग से हिसावदफ्तर को भेजी जाती थी। वहां से उसको प्रमाणित करके खजाने में भेजा जाता था और खजाने से उसका भुगतान होता था। व्यय किये जाने के वाद व्यय करने वाला अधिकारी उसके सम्वन्ध में तफसील से व्यय सम्बन्धी रिपोर्ट वना कर हिसाव दफ्तर को भेजता था, जिस पर राजराणा की मंजूरी ली जाती थी। दीवानी न्यायालय, फौजदारी न्यायालय, माल विभाग, हिसावदफ्तर, पुलिस, जेल आदि विभिन्न दफ्तरों में अलग-अलग अधिकारी और अहलकार नियुक्त किये गये तथा सभी कार्यवाहियों की मिसलें, फाइलें आदि विधिवत रखी जाने लगीं। डाक व्यवस्था का भी सुप्रवन्ध किया गया। ठिकाने की अलग मुहर बनाई गई।[5]

जिला-प्रशासन

ठिकाने के सुप्रबंध की दृष्टि से राजराणा रायसिंह ने ठिकाने को छः जिलों में विभक्त किया—

---

4 वही। राजराणा रायसिंह की तलवारवदी का सक्षिप्त विवरण इस अध्याय के परिशिष्ट में जोड़ा गया है।

5 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

1. मूजवा
2. पारसोलीगढ़
3. करमाला
4. गूंदलपुर
5. आकोदरा (नाहरपट्टी)
6. सादडी

इन जिलों में प्रशासन कार्य को विकेन्द्रित किया गया। फौजदारी न्यायालय के लिये एक सदर मजिस्ट्रेट, दीवानी न्यायालय के लिये एक मुन्सिफ, चोरी-डकैती आदि अपराधों पर नियत्रण के लिये एक पुलिस इन्स्पेक्टर तथा सादडी नगर के लिये अलग से एक पुलिस कोतवाल तथा इन सबसे ऊपर कार्य निरीक्षण हेतु तथा अपीलें सुनने के लिये खासपेशी की एक कचहरी कायम की गई, जिसमें राजराणा अपने सलाहकार सचिव के सहयोग से स्वयं निर्णय एवं न्याय करने लगा। शिक्षाविभाग, मालविभाग, चिकित्साविभाग, पृथ्वी-कर की वसूली का प्रबंध, राज्यकोष के हिसाब का प्रतिदिन निरीक्षण, आदि के लिये अलग से प्रबंध किया गया।[6]

इस भाति राजराणा रायसिंह ने उदयपुर में किये जा रहे शासन-सुधारों के अनुसार सादड़ी में भी प्रशासन-सुधार के प्रयास शुरु किये। इस प्रकार रायसिंह ने आधुनिक एवं विकासशील सादड़ी की नीव डाली।

महाराणा सज्जनसिंह द्वारा जागीरों के प्रबंध के लिये लागू की गई कलमबंदी की शर्तों को राजराणा ने मंजूर कर लिया था किन्तु व्यवहार में राज्य के अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा ठिकाने के आंतरिक प्रबंध विषयक मामलों में प्रधानतः फौजदारी और दीवानी मुकदमों सम्बन्धी कार्यवाही में नियम-विरुद्ध हस्तक्षेप किया जाता था। खालसा अथवा अन्य जागीरों के साथ सादड़ी के सीमा-विवादों तथा इसी प्रकार के फौजदारी मामलों में राज्य के कर्मचारियों द्वारा भेदभाव, पक्षपात एवं मनमानी कार्यवाही की जाती थी, जो प्रायः सादड़ी ठिकाने के प्रबंध व्यवस्था के विपरीत होती थी। ऐसे सभी मामलों के सम्बन्ध में ठिकाने के अधिकारियों द्वारा बराबर महकमाखास को शिकायतें भेजनी पड़ती थी।[7]

महाराणा फतहसिंह की गद्दीनशीनी का दरबार

23 दिसम्वर, 1884 ई. को महाराणा सज्जनसिंह का देहान्त होने पर शिवरती ठिकाने से गोद लेकर कुंवर फतहसिह को महाराणा बनाया गया। 4 मार्च, 1885 ई. को अंग्रेज सरकार का राजपूताने का एजी.जी.(एजेंट टू दी गवर्नर जनरल) कर्नल एडवर्ड ब्रेडफर्ड अंग्रेज सरकार की ओर से महाराणा फतहसिह की गद्दीनशीनी का खरीता लेकर उदयपुर आया। इस अवसर पर एक बड़े दरबार का आयोजन किया गया, जिसमें मेवाड़ के बड़े-छोटे सभी जागीरदार शरीक हुए। सादड़ी राजराणा रायसिंह को दरबार में शरीक होने का रुक्का मिलने पर वह अपने जागीरदारों सहित अपनी जमीयत लेकर उदयपुर पहुँचा। दरबार में राजराणा रायसिह महाराणा

---

6 वही। राजराणा रायसिंह के प्रधान सलाहकार सचिवों में रामलाल आसिया, सामतसिंह सोलकी, भवानीसिंह एवं जीतमल वक्षी रहे।

ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

की गद्दी के पास मुंह वरावर सरदारों की ओल में पहली मीट पर वैठा। ब्रेडफर्ड ने गवर्नर जनरल की ओर से गद्दीनशीनी का खरीता पढ़ कर सुनाया। उस समय महाराणा को शासन के अधिकार नहीं मिले। आगामी वर्ष, 22 अगस्त को अंग्रेज सरकार द्वारा महाराणा फतहसिंह को मेवाड़ राज्य के शासन के पूर्ण अधिकार दिये गये। इस अवसर पर पुनः वड़े दरवार का आयोजन किया गया। शंभुनिवास के नीचे के चौक में यह दरवार किया गया। महाराणा के वाईं ओर मेवाड़ के सरदारों एवं अन्य प्रधान व्यक्तियों की ओल रही और दाहिनी ओर अंग्रेज अफसरों आदि की वैठकें रही। सरदारों की ओल में सिरे पर पहली सीट पर सादड़ी राजराणा वैठा उसके वाद क्रमश- कोठारिया, देवगढ़, गोगूंदा, कानोड़ आदि के सरदार वैंठे। ए.जी.जी.कर्नल वाल्टर ने महाराणा को शासन के अधिकार देने सम्वन्धी वायसराय का खरीता पढ़ कर सुनाया। इसी प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य की महारानी विक्टोरिया के शासन की पचास साला गोल्डन जुविली मनाने के अवसर पर 16 फरवरी, 1887 ई. के दिन महाराणा द्वारा आयोजित दरवार में महाराणा का रुक्का मिलने पर सादड़ी राजराणा रायसिंह विधिवत शरीक हुआ।[8]

देलवाड़ा शासनसमिति की सदस्यता

देलवाड़ा राजराणा फतहसिंह जव वृद्ध होने लगा तो उसको अपने ठिकाने के भविष्य की चिंता सताने लगी, चूंकि उसका ज्येष्ठ पुत्र जालिमसिंह कुसंगति में पड़ कर चालचलन से खराव हो गया था। उसका छोटा पुत्र विजयसिंह कुन्हाड़ी (कोटा राज्य) गोद चला गया था। अतएव 2 जनवरी, 1890 ई. को राजराणा फतहसिंह ने महाराणा को अर्जी भेजकर लिखा कि चूंकि उसका वेटा जालिमसिंह कुसंगति में पड़ गया है और उसको ठीक मार्ग पर लाना आवश्यक है ताकि उसकी मृत्यु के वाद ठिकाने की वर्वादी नहीं हो, इसलिये दरवार की मंजूरी से ठिकाने की देखरेख और कुंवर जालिमसिंह में सुधार लाने हेतु एक कमेटी कायम कर दी जाय। महाराणा फतहसिंह ने अर्जी मंजूर करते हुए तदर्थ सात सदस्यों की एक कमेटी नियुक्त कर दी, जिसका पहला सदस्य सादड़ी राजराणा को वनाया गया। कमेटी के सदस्य इस भांति रखे गये—

1. सादड़ी राजराणा रायसिंह
2. वेदला राव तख्तसिंह
3. कानोड़ रावत नाहरसिंह
4. सरदारगढ़ ठाकुर मनोहरसिंह
5. कविराजा श्यामलदास
6. ताणाराज देवीसिंह
7. वोहेड़ा कुंवर मदनसिंह[9]

कुंवर जालिमसिंह पर कई प्रकार की पावंदियां लगाई गई और उसको वुरी संगति से

---

8 Mewar and the British by Dr Devilal Paliwal, p 181-82
ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

"स्वस्ति श्री राजरणा रायसींगजी हजूर माहरो जुहार मालुम होवे अपर मलिका मोजमा की तखतनसींनी ने पचासवों साल है जी री खुसी को जलसो 16 फरवरी मुताविक फागुन वदी 8 ने वेगा सो ई तारीख पेली आप अठा पधार जावेगा। समत् 1943 रा म्हा सुदी 9, वुधे।"

9 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

चपरासी एक प्रत 15 रुपये माहवार
हलकारो एक प्रत 15 रुपये माहवार

वि सं 1993 पोस सुदी 10 गुरुवार के दिन महाराणा ने मातमपुर्सी हेतु शिवरती महाराज शिवदानसिह को सादड़ी भेजकर राजराणा को उदयपुर बुलाया। महाराणा ने सादडी की हवेली जाकर उसकी मातमपुर्सी का दस्तूर पूरा किया। इस बीच वि सं 1992 जेठ सुदी 3 (श्रावणादि) तदनुसार दिनांक 23 मई, 1936 ई. के दिन महाराणा भूपालसिंह ने अपने अग्रेजी हस्ताक्षरो से सादडी से कैदखालसा के उठन्त्री के आदेश कर दिये।

तलवारबंदी और नजराणा

राजराणा कल्याणसिह की तलवारबन्दी की रस्म पूरी की जानी थी। तलवारबन्दी के नजराणे (कैदनजराणा) का प्रश्न पुन उठ खड़ा हुआ। स्वर्गीय राजराणा दुलहसिंह द्वारा यह नजराणा नही देने से महाराणा फतहसिह ने उसकी तलवारबन्दी की रस्म पूरी नही की थी और दुलहसिह इससे जीवनपर्यन्त महरूम रहा। जैसा कि पहिले लिखा गया है, सादड़ी ठिकाने की ओर से यह दावा किया गया था कि सादड़ी राजराणा पर कतिपय अन्य उमरावों की भांति तलवारबन्दी की राशि लागू नही होती, किन्तु महाराणा फतहसिह ने उसको मंजूर नहीं किया था। राजराणा कल्याणसिह द्वारा भी उसके इस स्वत्व पर जोर देकर महाराणा भूपालसिह को तलवारबंदी नजराणा माफ रखने हेतु अर्ज किया गया। किन्तु वि.सं. 1993 माह वदी 3 तदनुसार 1 फरवरी 1937 ई को महकमाखास ने बड़ीसादड़ी के कामदार-फौजदार के नाम रुक्का भिजवा कर लिखा कि तलवारबंदी नजराणा के पहिले से माफ होने के उजरात वाजिब नही है, अतएव नजराणा जमा कराने के हुक्म की तामील करे। राजराणा ने इस विवाद को उलझाये रखना उचित नहीं समझ कर अपने वकील राधावल्लभ द्वारा महकमाखास को संवत् 1907 (1850 ई.) की साल की पैदाइश के आधार पर 14896 रुपये तलवारबंदी नजराणे के देने की मंजूरी भिजवा दी और इस राशि को चार छ- माही किश्तो में जमा करने की अर्जी भेज दी, जो स्वीकार कर ली गई। इसके बाद वि.स 1994 (श्रावणादि 1993) वैसाख वदी 1 शुक्रवार के दिन नगीनावाड़ी के दरीखाने मे महाराणा भूपालसिह द्वारा सादड़ी राजराणा कल्याणसिह की तलवारबन्दी का दस्तूर सम्पन्न किया गया।[7]

---

7 बड़ीसादड़ी ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

तलवारबन्दी का पहनावा महाराणा द्वारा राजराणा की हवेली भेजा गया। उसको पहिनकर राजराणा कल्याणसिंह लवाजमा सहित घोड़े पर सवार होकर नक्कारा बजाते हुए सवारी सहित नगीनावाड़ी के दरीखाने पहुँचा। महाराणा को राजराणा द्वारा पट्टे का नजराणा तथा गेणे आदि के नजराणे किये गये। पाडेजी ने महाराणा का हाथ लगवाकर राजराणा को सिरपेच जड़ाऊ, मोत्या की कठी, कानों का मोती चोकड़ा, हाथो का सोने का पूछा चार गहने पहनाये। सवत् 1923 मे राजराणा शिवसिंह को और सवत् 1940 मे राजराणा रायसिंह को ये ही चार गहने तलवारबदी के समय पहनाये गये थे।

व्यापारियों का बलिदान विरोधी आंदोलन

राजराणा कल्याणसिह की गद्दीनशीनी के तीसरे वर्ष सादड़ी के ओसवाल जैन व्यापारियों ने ठिकाना प्रशासन एवं राजराणा के विरुद्ध सादड़ी के देवी मंदिरों में नवरात्रि तथा दशहरे के त्यौहार पर होने वाले पाड़े एव वकरे के बलिदान[8] को लेकर आन्दोलन शुरु कर दिया। अक्टूबर 1939 ई में उन्होंने इस बलिदान प्रथा को वंद करने हेतु वाजार वंद करके हड़ताल रखी और जुलूस निकाल कर राजराणा के विरुद्ध नारे लगाये। किन्तु राजराणा कल्याणसिंह ने शाति से काम लेते हुए उनके खिलाफ कोई पुलिस कार्यवाही नही की। राजराणा ने व्यापारियों द्वारा वाजार वंद रखने की कार्यवाही की सूचना महकमाखास, उदयपुर को भेजी। उस समय आंदोलनकारियो द्वारा मेवाड़ एवं मेवाड़ के वाहर प्रचार माध्यमों से यह प्रचारित किया कि सादड़ी ठिकाने में आये दिन खुले तौर पर पाडे और वकरे काटे जाते हैं। आंदोलनकारियों का प्रमुख नेता सादड़ी कस्वे का गुलाबचंद था। अन्य प्रधान लोगों में वालमुकुंद गांधी, मोहनलाल मोगरा आदि थे। उन्होंने अपनी मदद के लिये अलवर के आर्यसमाजी कार्यकर्ता वीर रामचन्द्र शर्मा को वड़ीसादड़ी वुला लिया। इस आन्दोलन को अहिंसा आन्दोलन के नाम से प्रचारित किया गया। वीर रामचन्द्र शर्मा सादड़ी कस्वे में अनशन पर बैठ गया। राजराणा की अर्जी तथा आदोलनकारियों के शिकायती पत्र मिलने पर मेवाड सरकार की ओर से उदयपुर सेशस जज वनेड़ा के मानसिह[9] ने वड़ीसादड़ी आकर स्थिति की जाच की। लगभग एक सप्ताह यह आन्दोलन चलता रहा। सेशंस जज की जाच रिपोर्ट देखने के वाद महकमाखास के आदेश से मेवाड़ का आई.जी. पुलिस लक्ष्मणसिह उदयपुर से पुलिस जाप्ता लेकर वड़ीसादड़ी पहुँचा और आदोलन के खास-खास नेताओं को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया। मेवाड़ पुलिस ने वीर रामचन्द्र शर्मा को निम्वाहेडा ले जाकर छोड़ टिया और उस पर मेवाड में प्रवेश की पावदी लगा दी। जेल में गिरफ्तार लोगों द्वारा माफी मांग लेने पर सिहपोल पर उदयपुर पुलिस द्वारा उनकी पिटाई करके उनको छोड़ दिया। इसके वाद हड़ताल समाप्त हो गई और वाजार पुन: खुल गये।[10]

---

8 वही। परम्परागत तौर पर बड़ी सादड़ी के महलो के चौक में, चान्देशी माता मदिर (वाजार के बीच में स्थित) हींगलाजमाता मदिर (कानोड़ दरवाजे पर स्थित) भमरेश्वरी माता मदिर (तोपखाने के नीचे स्थित) तथा पारसोली गाव में अजमेदिया भेरूजी के मदिर पर पाड़े और वकरे के वलिदान होते थे। यह प्रचार किया गया कि वड़ीसादड़ी में प्रतिदिन वलिदान किये जाते हैं और वीर रामचन्द्र शर्मा को भी यही वताकर वुलाया गया था। सादड़ी ठिकाने में भी अन्य ठिकानो की भाति दशहरे आदि मुख्य त्यौहारो पर ही परम्परानुसार ऐसा होता था।

9 जज मानसिंह वनेड़ा राजाधिराज अमरसिंह का छोटा पुत्र और प्रतापसिंह का छोटा भाई था। वह सुधारवादी राष्ट्रीय विचारो का व्यक्ति और राजराणा कल्याणसिंह का मित्र था। मानसिंह ने "देशी राज्यों की अतिम ज्योति" पुस्तक लिखी, जिसका भी राजराणा कल्याणसिंह की मानसिकता पर गहरा प्रभाव पड़ा था। राजराणा कल्याणसिंह का विवाह वनेड़ा राजाधिराज अमरसिंह की पोत्री और कुवर प्रतापसिंह की पुत्री के साथ हुआ था।

10 बड़ीसादड़ी ठिकान की प्राचीन पत्रावली।

सादड़ी में प्रजामंडल का आंदोलन और राजराणा की नीति

धीरे-धीरे बडी सादडी में भी राष्ट्रीय विचारों का प्रसार हुआ। इस ठिकाने में सामान्यतः राष्ट्रीय विचार रखने वाले लोगों को डराया-धमकाया नही जाता था और पुलिस का विशेष आंतक भी नही रहा। राजराणा दुलहसिह द्वारा सन् 1920-21 के आंदोलनकारियों के विरुद्ध पुलिस कार्यवाही नही करके, उनके साथ बैठकर शातिपूर्ण समझौता किया गया था। राजराणा कल्याणसिह स्वय उदार राष्ट्रीय विचारो का व्यक्ति था, गाधी-भक्त था और खादी पहनता था। इतना ही नही उसने ठिकाने के कर्मचारियो के लिये खादी पहिनना आवश्यक कर रखा था। फिर भी राजराणा की अपनी सीमाएं थी। वह अंग्रेज सरकार की नीति और मेवाड़ राज्य के कानून और शासन की अनदेखी नहीं कर सकता था। 1938 ई. मे मेवाड़ प्रजामडल की स्थापना के बाद बडी सादड़ी में भी उसकी हलचल शुरु हुई। प्रजामंडल के नेता माणिक्यलाल वर्मा की बडीसादड़ी मे आने की खबर सुनकर सादडीवासियो में कौतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न हो गई। बड़ी सख्या में लोग वर्मा जी के पास आकर एकत्र हो गये। उसके बाद माणिक्यलाल वर्मा का बाजार में जुलूस निकाला गया। जुलूस मे महात्मा गांधी की जय और अंग्रेजों भारत छोड़ों आदि नारे लगाये गये। सांयकाल माणिक्यलाल वर्मा ने एक बड़ी सभा को सम्बोधित किया। वर्माजी को रतीचन्द्र महता की हवेली में ठहराया गया। ठिकाने की ओर से किसी भी प्रकार का दखल नही किया गया।

अगले दिन माणिक्यलाल वर्मा घूमते हुए राजघाट की ओर गये। उस समय राजराणा कल्याणसिह वहां मौजूद था। माणिक्यलाल से भेंट हो गई। राजराणा ने कहा—मैं भी कांग्रेस की विचारधारा का हूँ।" राजराणा ने उनसे राष्ट्रीय राजनीति के बारे में बातचीत की। सन् 1942 की 8 अगस्त को भारत छोड़ो आंदोलन शुरू होने पर सादड़ी कस्बे मे प्रजामंडल की ओर से जनता का जुलूस निकाला गया, जिसमें बड़ी संख्या में लोग शरीक थे। जुलूस में अंग्रेजों भारत छोड़ो और महात्मा गांधी की जय आदि नारे प्रमुख रूप से लगाये गये। जुलूस की समाप्ति के बाद आम सभा की गई। सारा कार्यक्रम शांति पूर्ण ढंग से सम्पन्न हो गया।[11]

ठिकाना प्रशासन एवं पुलिस ने प्रदर्शनकारियों के विरुद्ध कोई दमनात्मक कार्यवाही नही की। सारी घटना की सूचना उदयपुर महकमाखास को भेजी गई। सामान्यत· ठिकाने मे सभा एवं जुलूस आदि पर प्रतिबंध नही था।[12]

---

11 बड़ीसादड़ी मे पचायत कार्य करती थी। किन्तु पचायत मे दो गुट बन जाने के कारण उसका कार्य ठप्प हो गया। स्वतत्रता प्राप्ति के बाद बड़ीसादड़ी मे नगरपालिका की स्थापना की गई। इस प्रकार 1950 ई में राजराणा हिम्मतसिंह के काल मे राजस्थान के प्रथम मुख्यमत्री हीरालालजी शास्त्री के बड़ी सादड़ी आने पर, उनके स्वागत मे आमसभा रखी गई, जिसमे उनके द्वारा बड़ीसादड़ी में हाईस्कूल स्थापित करने की घोषणा की गई। जिसके परिणामस्वरूप दुलह इग्लिश स्कूल उन्नत होकर दूल्हहाईस्कूल हो गया।

12 राजराणा कल्याणसिंह निश्चय ही ठिकाने का प्रशासन मेवाड़ राज्य के कानून के मुताबिक चलाता था किन्तु वह अपने राष्ट्रीय विचारों के कारण प्रजामडल विरोधी नही था।

वायसराय लिनलिथगो का उदयपुर में स्वागत

3 मार्च,1939 ई. को भारत के अंग्रेज वायसराय लार्ड लिनलिथगो का उदयपुर आगमन हुआ। महकमाखास से वायसराय के स्वागत कार्यक्रम में भाग लेने हेतु सादड़ी राजराणा को पर्वाना मिला,जिससे वह अपने कतिपय जागीरदारों एवं कर्मचारियों को लेकर उदयपुर पहुँचा। महाराणा भूपालसिंह ने उदयपुर रेलवे स्टेशन पर वायसराय का भव्य स्वागत किया। वायसराय को राज्य की प्रमुख होटल लक्ष्मी विलास पैलेस में ठहराया गया। अगले दिन महाराणा वायसराय की मिजाजपुर्सी के लिये उससे मिलने गया। उस समय महाराणा के साथ सादड़ी राजराणा कल्याणसिंह,कोठारिया रावल मानसिंह,मेजा रावत जयसिंह,दीवान बहादुर धर्मनारायण,मनोहर सिंह बेदला आर्जाराव नाहरसिंह,नेतावल बावा हरिसिंह,बाबू प्रयाशचन्द्र,कुंवर तेजसिंह मेहता, कुंवर संग्रामसिंह देवगढ़, कुंवर जगतसिंह करजाली उसके साथ रहे। बेदलाराव रावबहादुर नाहरसिंह उनके साथ नहीं था। उसको गत दिवस के स्वागत कार्यक्रम में शरीक किया गया था।[13]

वायसराय के स्वागत कार्यक्रम में महकमाखास द्वारा मेवाड़ के चार प्रमुख ठिकानों से निम्नलिखित अनुसार 25 फरवरी तक सुरक्षा-कार्य में सहयोग देने हेतु सवार और पैदल सिपाही मंगवाये गये थे—

सादड़ी	5	सवार और 10 पैदल
बेदला	12	सवार और 23 पैदल
सलूंबर	10	सवार और 20 पैदल
कोठारिया	6	सवार और 13 पैदल[14]

लागतों सम्बन्धी शिकायतें

जनवरी 1937 ई. में राज्य महकमाखास उदयपुर को बड़ी सादड़ी के आसामियों द्वारा ठिकाना प्रशासन के विरुद्ध कतिपय लागतों के सम्बन्ध में शिकायतें प्राप्त हुई। शिकायतपत्र में लिखा गया कि बड़ीसादड़ी ठिकाने में अभी तक निम्नलिखित लागतें ली जा रही हैं—

1. प्रति कुंआ पर किसानों से बारह रुपये लिये जा रहे हैं।
2. उगाई एवं बोवाई के समय किसानों से कपड़ा लिया जाता है।
3. धूल उड़ाई बराड़।
4. नागदेवता बराड।
5 धुआ बराड।
6. कुंवरमाफी बराड।

---

13 बड़ीसादड़ी ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

14 वही।

7 घरजुफी बराड।
8 खूंटकटी का एक रुपया, नई लागत।
9 कूत के समय एक मन के वजाय सवा मन अनाज लिया जा रहा है।
10. खडलाकड़ की नकद राशि ठिकाने मे जमा होती है, उसकी एवज में हमारा माल कपास, तिल आदि उठा ले जाते है।
11. माल बेचने जाने पर मापा वसूल करते है।
12. बिना काश्त पडी जमीन पर भी हासिल लेते है।
13 सिपाहियो को खुराक नही देने पर घरों से लोहे के वर्तन आदि उठा लेते है।[15]

महकमाखास उदयपुर द्वारा शिकायतो की जाच करवाई गई। जाच रिपोर्ट में कहा गया कि ठिकाने में अब तक पैमाइश नही कराई गई है, जिसके कारण कई प्रकार की समस्याएं चल रही हैं। महकमाखास द्वारा कई लागते माफ की गई थी, किन्तु ठिकाना प्रशासन द्वारा तदनुसार कार्यवाही नही की गई है। ठिकाने के कामदार-फौजदार को फौरन महकमाखास के आदेशों को लागू करना चाहिये। इसके साथ ही ठिकाने में पैमाइश का कार्य जून, 1937 ई. में प्रारम्भ किया गया। पैमाइश का कार्य राज्य के अधिकारी लालसिंह शक्तावत और कमलाकर द्वारा किया गया। लगान वसूल की पहिले की कूंताप्रथा को समाप्त करके जमावंदी लागू की गई।[16]

ठिकाने में ब्राह्मण वर्चस्व और मनमानी के विरुद्ध शिकायत

1943 ई में नखतरमल गांग नामक व्यक्ति द्वारा महकमाखास उदयपुर को इस वात की शिकायत की गई कि वड़ीसादड़ी ठिकाने के प्रशासन में ब्राह्मण-वर्ग ने अपना वर्चस्व वना रखा है। अपने 9 जून, 1943 ई. के पत्र में उसने शिकायत की कि नर्वदाशंकर और उसके सम्बन्धियों ने ठिकाने के इंतजाम पर अपना शिकंजा कायम करके कानून एवं न्याय कार्य में मनमाना हस्तक्षेप करते हैं। नखतरमल ने प्रमाण स्वरूप ठिकाने के निम्नलिखित अधिकारियो एवं कर्मचारियों के नामो का उल्लेख किया—

	पद	नाम अधिकारी/कर्मचारी
1	फौजदार, कामदार	नर्वदाशंकर ब्राह्मण
2	माल हाकिम	नारायणदत्त (नर्वदाशकर का भतीजा)
3	राजराणा का निजी सचिव	शिवदत्त (नारायणदत्त का भाई)
4.	फौजदार मोहरिर	देवदत्त (नारायणदत्त का भाई)
5	नाजिर अदालत	काशीनाथ (नर्वदाशंकर का दामाद)
6	नामेदार हिसाबदफ्तर	जेठाशंकर (नारायणलाल का श्वसुर)
7.	नामेदार हकरसी	नारायणलाल (नर्वदाशंकर का साला)

15 राज्सथान राज्य अभिलेखागार, उदयपुर, पत्रावली जागीर A सवत् 1994, स 1314 लागतें।

16 वही।

8.	सरिश्तेदार	मगनीलाल ब्राह्मण
9.	तहसीलदार	गोपीलाल ब्राह्मण
10.	पुलिस थानेदार	देवीलाल ब्राह्मण
11.	रोजनामचा नवीस	नर्वदाशंकर ब्राह्मण
12	नामेदार	लक्ष्मीलाल ब्राह्मण
13.	जंगलात मुलाजिम	रायसिंह राजपूत [17]

नखतरमल ने अपने शिकायती पत्र में उपरोक्त ठिकाना कर्मचारियों द्वारा की जा रही मनमानी कार्यवाहियों का उल्लेख करते हुए लिखा—

1. ठिकाने के अधिकारी किसी को भी विना कसूर पकड़कर हवालात में बिठा देते हैं।
2. अदालत में पेशशुदा अर्जियां फड़वा कर फेंक देते हैं।
3. किसी से भी नाजायज मतालवे का रुक्का लिखवा लेते हैं।
4. जंगलात का टैक्स लेकर फर्जी चिट्ठी दे दी जाती है और महसूल लेकर रसीद नही दी जाती।
5. अकारण ही किसी का भी मकान गिरवा दिया जाता है।
6. अकारण ही किसी को भी अपनी जमीन अथवा मकान से बेदखल कर दिया जाता है।
7. वड़ीसादड़ी ठिकाने में रुपये लेकर गैरकानूनी ढंग से काश्तकारों की बापी पट्टे दिये जाते हैं।
8. दावे अथवा डिक्री के बिना अदालत से चपरासी भेज कर गैरकानूनी ढंग से दुगुना माल मंगवा लिया जाता है।
9. कमठाने पर काम करने वाले मजदूरों को मजदूरी नहीं दी जाती है।
10. लोगों पर झूठे मुकद्दमे लगाकर उनको गैरकानूनी रूप से गिरफ्तार करके जेल में बन्द कर दिया जाता है।

राज्य महकमाखास द्वारा शिकायतों के सम्बन्ध में जांच करवाई गई। महकमाखास ने ठिकाने के फौजदार-कामदार को आदेश भेजकर सभी प्रकार की अनुचित एवं गैरकानूनी कार्यवाहियों पर रोक लगाने हेतु लिखा गया।[18]

---

17 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, उदयपुर पत्रावली जागीर (12) A सवत् 1999 स 25/11 कम्पलेट।

18 वही। राज्य सरकार द्वारा ठिकाने पर ब्राह्मण-वर्चस्व के सम्बन्ध में जाच करने पर पाया गया कि राजराणा द्वारा नियुक्त स्कूल के हेडमास्टर सिख सौदागरसिंह ने ब्राह्मणों के खिलाफ लोगों को उकसाया था। सौदागरसिंह को राजराणा ने अपना निजी सचिव और ठिकाना पुलिस का सुपरिंटेंडेंट भी बना दिया था। महकमाखास की ओर से टिकाने को गोपनीय तौर पर यह सूचना दी गई और उसकी सेवाए समाप्त करने की राय दी गई। राजराणा ने पहले उसको छुट्टी पर भेजा और बाद में उससे त्यागपत्र ले लिया।

राजराणा के प्रजाहितैषी कार्य

· राजराणा कल्याणसिह विचारों से उदार, दयावान एव प्रजाहितैषी था। किन्तु उसमें अति मदिरा सेवन की बड़ी कमजोरी रही, जिसके कारण व्यावहारिक दृष्टि से अपने आठ वर्ष के शासनकाल में वह अधिक कुछ नही कर सका। ऐसा लगता है कि राजराणा की मदिरा सेवन की कमजोरी का ठिकाना प्रशासन में बडे पदों पर बैठे लोगों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति में दुरुपयोग किया। इसके कारण प्रशासन-कार्य में ढिलाई, अनुशासनहीनता और स्वेच्छाचारिता व्याप्त हो गई और राज्य महकमाखास के पास कई प्रकार की शिकायतें हुई।

उपरोक्त स्थिति के बावजूद राजराणा कल्याणसिंह ने कई उदार एवं प्रजाहितैषी कार्य किये। प्रधानत· उसने शिक्षा, चिकित्सा और अन्य लोक-कल्याणकारी कार्यों में बड़ी दिलचस्पी ली। उसने दुलह इंग्लिश स्कूल की व्यवस्था में सुधार किया, स्कूल में बालकों के लिये खेलकूद तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियां शुरू करके उनकी वार्षिक प्रतिस्पर्धाओं का कार्यक्रम शुरू किया। उसने स्कूल के प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिये छात्रवृत्ति देना शुरू किया। स्कूल का सालाना जलसा आयोजित करके खेलकूद प्रतिस्पर्धाओं के विजेता तथा प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को पारितोषिक दिये जाते थे।

राजराणा कल्याणसिंह ने 1939 ई. के अकाल के दौरान पीड़ित लोगों को राहत पहुँचाने के लिये कई अकाल-राहत-कार्य शुरू किये और लोगों में अनाज वितरण करवाया। उसने सादड़ी में जनरेटर लगवा कर बिजली लगवाई और कस्बे में पानी की पाइप लाइन लगवाई। सामान्य जनों के साथ उसके सम्बन्ध बहुत मधुर रहे, उसके काल में आज तक जीवित बचे लोग भावुक होकर उसकी प्रकृत्ति की प्रशंसा करते हुए कई संस्मरण सुनाते हैं।

राजराणा कल्याणसिंह ने प्रतिभावान विद्यार्थियों को न केवल छात्रवृत्ति दी अपितु उनको उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु बाहर भी भेजा, जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

1. राजराणा ने निम्नलिखित विद्यार्थियों को ठिकाने के खर्चे पर हाईस्कूल शिक्षा प्राप्त करने हेतु इन्दौर भेजा—

हिम्मतसिह पुत्र हरिसिह
लक्ष्मणसिंह पुत्र बादरसिंह।

उसने जगन्नाथ व्यास पुत्र गोविन्दराम को आयुर्वेदिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये सीकर कालेज में भेजा।

गिरधरलाल शास्त्री को संस्कृत भाषा में शास्त्री-स्तर की पढ़ाई के लिये बनारस भेजा। उसी भाति बनारस में रहकर हरिवल्लभ शास्त्री ने ठिकाने की मदद से आयुर्वेदाचार्य, संस्कृत-आचार्य और ज्योतिष-आचार्य की डिग्रियाँ प्राप्त की।

डेयरी फार्मिग के अध्ययन के लिये द्वारकादत्त, ललितमोहन एवं नर्मदाशंकर को आनंद भेजा गया।

इसी भांति अलग-अलग प्रकार के प्रशिक्षण हेतु राजराणा ने कई लोगों को वाहर भेजा—

1. पुलिस ट्रेनिंग के लिए उदयपुर भेजा—चमनदान आसिया, भारतसिंह राणावत एवं शिवदत्त को।
2 रेवेन्यू विभाग के प्रशिक्षण के लिये नारायणदत्त को उदयपुर भेजा
3. चिकित्सा सहायक (कम्पाउडर) की ट्रेनिंग हेतु पर्था और रामनारायण को क्रमशः अहमदावाद और अजमेर भेजा।
4. ललितनारायण पुत्र नर्वदाशंकर को इन्दौर में एल. एल. वी. की पढ़ाई करवाई। वाद में वहां पुलिस विभाग की ट्रेनिंग दिलवाकर पुलिसपेरोकार वनाया। वाद में ललितनारायण मेवाड़ राज्य में सुपरिंटेंडेंट पद पर नियुक्त हुआ और उसके वाद डी. आई. जी. वना।

इसी प्रकार राजराणा ने विभिन्न व्यक्तियों को गिरदावरी, इन्फेंट्री, सर्वेयर, राग-रागिनी, कूकरी आदि विभिन्न कार्यों में प्रशिक्षण हेतु ठिकाने के खर्चे पर वाहर भेजा। रामू नगारची को राग-रागिनी सीखने हेतु वनारस भेजा जिसकी पत्नी मेवाड़ राज्य की सुप्रसिद्ध मांड गायिका के रूप में प्रसिद्ध हुई।[19]

द्वितीय महायुद्ध के दौरान राजराणा कल्याण सिंह को मेवाड़ रेडक्रोस सोसाइटी का चेयरमेन नियुक्त किया गया। द्वितीय महायुद्ध में राजराणा ने ब्रिटिश सरकार को अपनी निजी सेवायें अर्पित की थी।[20]

राजराणा कल्याणसिंह ने कल्याणभवन नामक महल शिकारवाड़ी में कल्याणसागर नामक वाँध एवं मोतीसागर बांध के निर्माण करवाये। संवत् 1996 (1939 ई.) के अकाल के दौरान अकाल पीड़ितों की राहत के लिये तीस हजार रुपये खर्च करके वड़ीसादड़ी से पारसोली गढ़ तक की सड़क वनवाई।[21]

परिवार के आंतरिक कलह के कारण राजराणा अधिक मदिरा सेवन करने लगा था। उसके कारण राजराणा का स्वास्थ्य 1944 ई. में वहुत विगड़ गया और इलाज के लिये उसको इन्दौर ले जाया गया। जहाँ उसका अल्पायु में देहान्त हो गया। उसका दाह-संस्कार क्षिप्रा नदी के किनारे पवित्र धर्म-स्थल उज्जैन में किया गया। उसकी मृत्यु के समय उसके ज्येष्ठ कुंवर हिम्मतसिंह की आयु ग्यारह वर्ष थी।

विवाह एवं संतति

दिसंवर, 1931 ई. में कुंवरपदे में कल्याणसिंह का विवाह वनेड़ा राजा अमरसिंह की पौत्री एवं कुंवर प्रतापसिह की पुत्री मुक्तावती से हुआ। उसकी कोख से चार पुत्र हुए—

---

19 वड़ीसादड़ी ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

20 वही।

21 वही।

1. हिम्मतसिह, जो बडी सादड़ी ठिकाने का स्वामी हुआ।
2. लक्ष्मणसिह, जिसको पन्डेडा जागीर मिली।
3. मनोहरसिंह, जिसको चान्दराखेडी की जागीर मिली।
4. चन्द्रसेनसिह, जिसको बम्बोरा की जागीर मिली।

अपने पूर्व राजराणाओं की भाति राजराणा कल्याणसिह भी धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसने दो बार महारुद्र यज्ञ करवाये और छ-छ माह में शालिग्राम जी के चार अनुष्ठान स्वयं किये। पहले अनुष्ठान में सवा लाख कमल के पुष्प, दूसरे में सवा लाख तुलसी की मंजरी, तीसरे में सवा लाख आवले और चौथे में सवा लाख बिल्वपत्र चढ़ाये। बड़ीसादडी के सभी मंदिरों के उत्सवों पर पूजा-नैवेद्य की सामग्री ठिकाने की ओर से दी जाती थी।[22]

मेवाड़ के महाराजकुमार की दरबार में पद-वृद्धि

बड़ीसादड़ी राजराणा कल्याणसिह की सहमति से महाराणा भूपालसिंह द्वारा मेवाड़ राज्य-दरबार की बैठक-परम्परा में एक बड़ा परिवर्तन मेवाड़ के महाराजकुमार भगवतसिह के बीकानेर महाराजा की पौत्री के साथ विवाह सम्पन्न होने के बाद किया गया। परम्परानुसार अब तक महाराजकुमार की दरबार में बैठक सौलह उमरावो की बैठक के बाद अर्थात् पारसोली राव की बैठक के बाद होती थी। महाराजकुमार के दादा श्वसुर बीकानेर महाराजा गंगासिह के आग्रह पर महाराजकुमार के पद की प्रतिष्ठा में वृद्धि की दृष्टि से यह सोचा गया कि उसकी बैठक बडे सौलह उमरावों से ऊपर एवं महाराणा से दूसरे नम्बर पर रखी जाय। किन्तु उसके लिये दरबार में अव्वल नम्बर की सीट के परम्परागत अधिकारी बड़ी सादड़ी राजराणा की निर्विरोध सहमति आवश्यक थी। महाराणा ने राजराणा कल्याणसिह से इसके सम्बन्ध में बात की। राजराणा इसके लिये सहर्ष तैयार हो गया। उसके बाद मेवाड़ राज्य दरबार में महाराज कुमार की बैठक सभी उमरावों से ऊपर कर दी गई।[23]

---

22 वही।

23 वही।

26 फरवरी, 1931 की मर्दुमशुमारी के अनुसार सादड़ी ठिकाने की कुल जनसख्या 18503 थी। जिनमें 9421 मर्द और 9082 औरतें थी। बड़ी सादड़ी कस्बे की जनसख्या 5202 थी, जिसमें मर्द 2670 और औरते 2532 थी।

जैसाकि ऊपर लिखा गया है 1891 ई में बड़ी सादड़ी ठिकाने की जनसख्या 16499 थी जो 1899 ई के अकाल और महामारी के कारण घटकर 2001 ई में 10599 रह गई थी। 1931 ई में ठिकाने की जनसख्या बढ़कर 18503 हो गई थी।

20. राजराणा हिम्मतसिंह

वि.सं.2001, पोष वदी 8 तदनुसार 8 दिसम्बर,1944 ई.के दिन राजराणा कल्याणसिंह का इन्दौर में देहावसान होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र हिम्मतसिंह सादड़ी ठिकाने के उत्तराधिकारी हुए। उस समय कुंवर हिम्मतसिंह की आयु केवल ग्यारह वर्ष था।[1]

शिक्षा—

राजराणा हिम्मतसिंह का जन्म वि.सं.1991, भादवा वदी 12 तदनुसार 5 सितंवर,1934 ई.को उनके ननिहाल वनेड़ा में हुआ। चार वर्ष की आयु में उनको शिक्षार्थ महू में सेंट मेरीज कान्वेंट में भर्ती कराया गया। पांच वर्ष वाद मेवाड़ में नियुक्त तत्कालीन अंग्रेज रेजिडेंट एच. ट्रेवेलियन के आग्रह पर जुलाई,1942 में कुंवर हिम्मतसिंह को मेयो कालेज, अजमेर में भर्ती कराया गया। 1951 ई.में उन्होंने मेयो कालेज से सीनियर केम्ब्रिज की परीक्षा उत्तीर्ण की।

कुंवर हिम्मतसिंह वाल्यावस्था से ही मेयो कालेज की खेल-कूद की प्रवृत्तियों में भाग लेने लगे। उन्होंने क्रिकेट,हाकी,फुटवाल,वास्केटवाल,टेनिस,स्कवाश,वाक्सिग आदि विविध खेलों में भाग लेना शुरू किया। फुटवाल, क्रिकेट और हाकी में उन्होंने विशेष दक्षता प्राप्त की। वे कालेज की क्रिकेट टीम के कप्तान रहे। 1950 ई.में उन्होंने रणजी ट्राफी क्रिकेट टूर्नामेंट में राजस्थान की टीम की ओर से भाग लिया। उन्होंने स्काउटिंग तथा एन. सी. सी. में भाग लिया,पहिले कव वने,फिर स्काउट और उसके वाद रोवर वने। मेयो कालेज के अध्ययन-काल के दौरान उन्होंने जिम्नास्टिक्स में भी भाग लिया तथा हाई जम्प,लोंग जम्प,पोल वाल्ट,जेवेलिन थ्रो,डिस्कस थ्रो और रिले रेस आदि विविध प्रवृत्तियों में अभ्यास किया। 1950 ई.में भी वे हाउस प्रिफेक्ट नियुक्त किये गये और 1951 ई.में वे कालेज के मानिटर वने।

जुलाई,1953 ई.में हिम्मत सिंह डेली कालेज इन्दौर में भर्ती हुए और मार्च 1954 ई. में वहां से इंटरमिडियेट आर्ट्स की परीक्षा उत्तीर्ण की। इस कालेज में भी उन्होंने क्रिकेट,हाकी एवं फुटवाल खेलों में भाग लिया। क्रिकेट और हाकी में उनको कालेज कलर प्रदान किये गये।[2]

सादड़ी में रहते हुए उन्होंने अनार मोहम्मद से घुड़सवारी और वग्गी चलाने का प्रशिक्षण प्राप्त किया। मोहन गहलोत से उन्होंने मोटर ड्राइविंग की शिक्षा ली। हिसाव-किताव रखना उन्होंने गहरी लाल जारोली से सीखा। अपने वनेड़ा निवास के दौरान उन्होंने वन्दूक चलाने तथा ऊंट की सवारी करने का प्रशिक्षण प्राप्त किया।[3]

---

1 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

2. वही।

3 वही।

ठिकाने में मुंसरमात कायम होना

सादडी में उत्तराधिकारी होने के समय राजराणा हिम्मतसिंह के नाबालिग होने के कारण जागीर का प्रशासन चलाने हेतु राज्य महकमाखास की ओर से मुंसरमात कायम की गई मदनसिंह सहीवाला को ठिकाने का मुसरिम नियुक्त किया गया तथा भभूतसिंह को नायब मुंसरिम बनाया गया। बाबू हरिश्चन्द्र ठिकाने में मजिस्ट्रेट पद पर बने रहे तथा उनको राजराणा का गार्जियन बनाया गया। ठिकाने के प्रबंध-कार्य में राजराणा की सहायता करने वालों में प्रधान रूप से सामंतसिंह सोलकी, मोड़सिंह झाला, नारायणदत्त व्यास एवं नर्बदाशंकर आदि रहे, जो राजराणा को प्रबंध के विभिन्न कार्यो में सलाह-मशविरा देते थे और कार्य करते थे।[4]

तलवारबंदी और ठिकाने के अधिकार मिलना

वि. सं. 2003 ज्येष्ठ सुदी 10 तदनुसार 29 मई, 1947 ई. गुरुवार के दिन महाराणा भूपालसिंह द्वारा शिवरती महाराज शिवदानसिंहजी को भेजकर विधिवत उदयपुर बुलवा कर मातमपुर्सी की तथा उसके बाद तलवारबन्दी की रस्म पूरी करने के साथ रग का दस्तूर भी किया। महाराणा द्वारा उनको ठिकाने के अधिकार दिये गये, किन्तु मुसरमात का प्रबध कायम रहा।[5]

राजस्थान राज्य में ठिकाने का विलय

1949 ई. में नवगठित राजस्थान राज्य द्वारा राज्य के जागीरदारों के रेवेन्यू अधिकार ले लिये गये। परिणामस्वरूप बड़ी सादड़ी जागीर का भी रेवेन्यू वसूली का अधिकार राज्य के हाथों में चला गया। ठिकाने की मुंसरमात 10 जुलाई, 1952 ई को उठा ली गई। फिर भी कुछ समय तक ठिकाने का प्रशासन चलता रहा। अंततः 1 जुलाई, 1954 ई. को राजस्थान जागीर पुनर्ग्रहण अधिनियम के अन्तर्गत बड़ीसादड़ी ठिकाना पूरी तरह राजस्थान राज्य प्रशासन में मिला लिया गया।

राजराणा हिम्मतसिंह को महाराणा भूपालसिह, महाराणा भगवतसिंह, महाराणा महेन्द्रसिंह एवं अरविन्द सिंह के काल में रहकर सबसे अधिक काल तक राजराणा पदवी पर रहने तथा सबसे अधिक उम्र के राजराणा होने का सौभाग्य प्राप्त है।

राजराणा का योगदान

राजराणा हिम्मतसिंह सरल, मिलनसार एवं साहित्यप्रेमी व्यक्ति रहे हैं। अपने कुछ वर्षों के जागीर-प्रबंध-काल के दौरान राजराणा हिम्मतसिंह द्वारा कई कार्य संपादित किये गये।

---

4 वही।

5 वही।

उन्होंने दूलहसागर तालाव और बोरंडी के तालाब की मरम्मत और पाल का निर्माण, वड़ेबाग तथा महलों के अवशिष्ट कोट एवं दरवाजे का निर्माण उदयपुर में ठिकाने की हवेली का जीर्णोद्धार तथा भवनों में बिजली, पाइप आदि लगवाने का कार्य करवाया। उसी प्रकार 1952 ई. में ट्रेक्टर मंगवाकर पारसोली तालाब की खेती आधुनिक ढंग से शुरू करके चित्तौड़गढ़ जिले में पहल की। जागीर के अधिकार प्राप्त होने के वाद राजराणा द्वारा अपने भ्राताओं को उनके भरण-पोषण हेतु जागीरें प्रदान की।[6]

राजराणा ने ठिकाने के सभी मंदिरों की पूजा-अर्चना हेतु ठिकाने द्वारा दी जा रही सहायता जारी रखी और वे मदिरों के उत्सवों और पर्वो आदि में पहिले के राजराणाओं की भांति भाग लेते रहे। आज भी मंदिरों की रामरेवाड़ियाँ पहिले ठिकाने के महलों में आती हैं और उसके वाद तालाव की पाल पर जाती हैं। पाल पर ठाकुर जी को स्नान करवा कर आरती उतारी जाती है एवं प्रसाद वांटा जाता है। उसके वाद क्रमबद्ध तरीके से सभी रामरेवाडियां महलों में वापस आती हैं और राजराणा की ओर से उनकी भेंट पूजा की जाती है। फिर वे अपने-अपने मंदिरों को जाती हैं।

1957 ई. में राजराणा ने ठिकाने के मंदिरों की सम्पत्ति एवं आय-व्यय की सुव्यवस्था हेतु एक ट्रस्ट कायम करवाया। पं. गिरधर लालजी, पं. गौरीशंकरजी, पं. गोविन्दरामजी, पं. जटाशंकर जी, पं जमनालालजी आदि शास्त्रज्ञ विद्वानों द्वारा ठिकाने में बरावर धार्मिक कार्यो एवं अनुष्ठानों को सम्पन्न करवाते रहे।[7]

राजराणा हिम्मतसिंह ने 1976 ई. में हल्दीघाटी लड़ाई की 400 वी जयन्ती समारोह के अवसर पर दस हजार रुपये व्यय करके राजस्थानी भाषा के ख्यातिप्राप्त कविवर नाथूदान जी महियारिया द्वारा हल्दीघाटी युद्ध में शहीद होने वाले सादड़ी के झाला मान (वीदा) की स्मृति में रचित 'झालामान' नामक पुस्तक का प्रकाशन कराया। उन्होंने हल्दीघाटी में 18 जून, 1576 ई. को सम्पन्न समारोह में भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाधी द्वारा इस पुस्तक का लोकार्पण करवाया।[8]

राजराणा ने वड़ी सादड़ी कस्बे में उनके बलिदानी पूर्वज और हल्दीघाटी युद्ध में शहीद वीर झाला मान की स्मृति में उसकी (झाला मान की) मूर्ति स्थापित करराने में पूर्ण सहयोग प्रदान किया, जिसका अनावरण राजस्थान के तत्कालीन राज्यपाल श्री जोगेन्द्र सिंह द्वारा सम्पन्न किया गया।[9] इस कार्य में महाराणा भगवतसिंह द्वारा पांच हजार रूपये की सहायता प्रदान की गई।

---

6 वही।

7. वही।

8 झालामान (काव्य), ले श्री नाथूदान महियारिया की भूमिका।

9 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

वड़ीसादड़ी कस्बे में सार्वजनिक पुस्तकालय एवं वाचनालय के निर्माण हेतु राजराणा द्वारा नगर परिषद को वांछित भूमि प्रदान की गई और उसके लिये आवश्यक आर्थिक सहयोग प्रदान किया गया।[10]

महाराणा भगवतसिंह का देहावसान होने पर 19 नवम्बर, 1984 ई. को महाराणा महेन्द्र सिंह के गद्दीनशीन होने के समय आवश्यकता पड़ने पर और मेवाड़ के सरदारों द्वारा आग्रह करने पर राजराणा हिम्मतसिंह ने सम्पूर्ण लवाजमा (जो मेवाड़ के महाराणा के लवाजमे के वरावर होता था) तथा अन्य वस्तुओं को सादड़ी से मंगवा कर, गद्दीनशीनी की व्यवस्था की।[11]

राजराणा ने 1962 ई. में भारत-चीन युद्ध के समय भारत सरकार को अपनी निजी सेवाएं अर्जित करते हुए पत्र भेजा। राज्य सरकार ने उनको तत्सम्वन्धी जिला समिति का सदस्य नियुक्त किया।[12]

अपने प्रारंभिक वर्षों में राजराणा ने राजस्थान की राजनीति में भी भाग लिया और 1952 ई. को विधानसभा चुनावों में उन्होंने। जनसंघके उम्मीदवार और अपने पिता के काका श्री जगतसिंह झाला को विजयी वनाने में मदद की और राजस्थान कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता प्रधानत· माणिक्य लालजी वर्मा, मोहनलाल सुखाड़िया, निरंजननाथ आचार्य, हरिदेव जोशी आदि के साथ उनके पारिवारिक सम्बन्ध वने रहे।[13]

1904 ई. में राजराणा दुलहसिंह के काल में ठिकाने में कार्यरत डॉ. सीताराम शर्मा द्वारा लिखित 'श्री झाला भूषण मार्तण्ड' नामक संक्षिप्त इतिहास-ग्रंथ प्रकाशित हुआ था। गत वर्ष राजराणा हिम्मत सिंह ने अपने वश का वृहद् शोधपूर्ण इतिहास ग्रंथ लिखवाने का निर्णय करके लेखक (डॉ. देवीलाल पालीवाल) से इस कार्य को सम्पन्न करने का आग्रह किया। उसके फलस्वरूप लेखक द्वारा बड़ीसादड़ी ठिकाने के इस शोधपूर्ण एवं विवेचनापूर्ण इतिहास ग्रथ की रचना की गई है।

विवाह और संतति

राजराणा हिम्मतसिंह ने स्गींय राजराणा दुलहसिंह की सुपुत्री सूर्यप्रभा कंवर का विवाह जोबनेर राव श्री नरेन्द्र सिंह के दत्तक पुत्र श्री अजीतसिह के साथ जनवरी, 1952 ई. में वड़ी सादड़ी राजमहल में सम्पन्न कराया।

राजराणा का विवाह भाद्राजून (मारवाड़) के राजा श्री देवीसिंह की सुपुत्री गोपाल कंवर

---

10 वही।

11 राजस्थान पत्रिका (दैनिक) दिनाक 20 नवम्बर, 1984 ई ।

12 ठिकाने की प्राचीन पत्रावली।

13 राजराणा हिम्मतसिंह के सस्मरण

के साथ 20 जनवरी, 1953 ई. को वसंत पंचमी के दिन सम्पन्न हुआ। उनकी कोख से दो पुत्र हुए—

1. कुंवर श्री घनश्यामसिंह, जिनका विवाह वेगूं रावत सवाई श्री हरिसिंह की सुपुत्री के साथ हुआ। उनका असामयिक देहावसान 24 अगस्त, 1994 ई. को उदयपुर में हो गया। उनसे दो पुत्रियां गीतांजली कंवर एवं सुदर्शना कंवर हुई।

कुंवर श्री घनश्यामसिंह का दूसरा विवाह वम्वोरी राव साहव के लघु भ्राता श्री महिवर्धन सिंह पंवार की सुपुत्री पद्मावती कंवर के साथ हुआ। जिनसे एक पुत्र भंवर त्रिभुवनसिंह और पुत्री देवेसी कंवर हुए।

2. कुंवर श्री करणसिंह का विवाह अमरकोट रियासत (सिंध, पाकिस्तान) के गांव भेरजी के ठाकुर श्री जैतमालसिंह सोढा की सुपुत्री प्रेमकंवर के साथ जोधपुर में सम्पन्न हुआ। वे ठिकाना हरियाडाणा (मारवाड़) के आई. ए. एस. अधिकारी श्री अमरसिंह राठौड़ की भांजी हैं।

दोनों कुंवरों की शिक्षा डेली कालेज इन्दौर में सम्पन्न हुई।

वनेड़ा वाली सीसोदणी मांजी साहिवा का देहान्त 20 अप्रेल, 1995 को जयपुर में हुआ। उनकी अंत्येष्टि क्रिया सम्वन्धी सारा कार्य राजराणा द्वारा वड़ीसादड़ी में किया गया। रानी गोपाल कंवर का देहावसान 5 जून, 1995 ई. को वड़ी सादड़ी में हो गया।

परिशिष्ट – 1

मेले, त्यौहार एवं उत्सव

दशहरा एवं नवरात्रि—

वडीसादड़ी ठिकाने में वर्ष में दो दशहरे मनाये जाते थे, जो प्रथा मेवाड़ में अन्यत्र नही दिखाई पड़ती। अन्य स्थानों की भांति आसोज शुक्ला 1 से नवरात्रि त्यौहार का प्रारम्भ होता था और आसोज शुक्ला 10 के दिन दशहरा का त्यौहार मनाया जाता था। नवरात्रि में आदमाता के मन्दिर में प्रतिदिन देवी का पूजन-पाठ आदि होते थे और नवमी के दिन हवन होता था। उसी दिन सायकाल खेजड़ी-पूजन एवं महलों में शस्त्र-पूजन तथा घोड़ें एव हाथी का पूजन किया जाता था। आसोज शुक्ला 10 के दिन राजराणा की सवारी महलो से निकलकर तोपखाने के नीचे भमरेश्वरी माता के मन्दिर को जाती थी, जहां पाडे एवं बकरे का बलिदान किया जाता था। वहा से राजराणा की सवारी हिंगलाज माता के मन्दिर जाती थी, वहां भी पाड़े एवं बकरे का बलिदान होता था। महलों के चौक में भी आदमाता के लिये वही बलिदान होता था। सवारी में राजराणा हाथी पर सवार होता था और उसके साथ उसके शिकमी जागीरदार, कामदार, बस्सीवान आदि होते थे तथा ठिकाने का लवाजमा, हाथी, घोड़े, एव बैंड-बाजा होते थे।

राजराणा की सवारी में सबसे आगे घोड़े पर आदमाता का निशान चलता था। उसके पीछे क्रमशः घोडे पर नगारची नगाड़ा बजाता हुआ चलता था।[1] उसके पीछे-पीछे बैंड-बाजे होते थे। उसके बाद सोने-चॉदी के जेवरों में सज्जित नौकरी घोड़े चलते थे। उनके बाद ठिकाने का लवाजमा छत्र, छागीर, मेघाडम्बर, पान अडाणी, गोटा, छड़ी, छवा, करणिया आदि हाथों में लिये व्यक्ति चलते थे। उसके बाद घोड़ों पर सवार जागीरदार और पैदल कामदार, बस्सीवान, प्रधान कर्मचारी आदि होते थे। उनके पीछे हाथी पर (कभी-कभी मियाने या घोडे पर) छत्री के नीचे बैठे हुए अपनी राजसी पोशाक में राजराणा की सवारी होती थी। हाथी पर उसकी अगल-बगल में खडे लोग चवर उडाते थे। राजराणा के हाथी के पीछे ठिकाने के कर्मचारी और अन्य अमला सवारी में शामिल होते थे। अन्य त्यौहारों एव उत्सवों आदि के अवसर पर

---

1 मेवाड के महाराणा की सवारी में नगाड़ा सवारी के पीछे के भाग में बजता चलता है, जबकि सादड़ी राजराणा की सवारी मे नगाड़ा आगे रहता था।

भी राजराणा की सवारी प्रायः इसी ढंग से निकलती थी। सादड़ी में उस दिन रावण-दहन का कार्यक्रम नहीं होता था।

चैत्र शुक्ला 10 के दिन भी सादड़ी में दशहरा मनाया जाता था। उस दिन रावण-दहन होता था। रावण मगरी पर ठिकाने की ओर से रावण का पुतला लगाया जाता था। सायंकाल बैंड बाजे सहित हाथी पर सवार राजराणा की सवारी निकलती थी। उस समय तोपें छोड़ी जाती थी। मगरी के सामने के चबूतरे पर राजराणा का दरीखाना लगता था, जिसमें जागीरदार, वस्सीवान आदि राजराणा को नज्रें करते थे। उस समय हजारों लोग एकत्र होते थे। भगवान रामचन्द्रजी का विमान निकलता था और रावण दहन किया जाता था। उस समय चारों ओर आतिशवाजी चलती रहती थी।

गणगौर पूजन एवं सवारी

चैत्र माह के शुक्ल पक्ष के प्रथम तीन दिनों में गणगौर (पार्वती) का पूजन होता था। तीनों दिन महिलाएं ठिकाने के महलों के चौक में एकत्र होकर वहां से गणगौर माता की मूर्ति सिर पर लेकर वड़े तालाव के किनारे कुंड पर जाती थी। वहां विधिवत गणगौर की पूजा की जाती थी। औरतें माता के चारों ओर गायन गाती और घूमर नृत्य करती थी। तीज के दिन महलों से राजराणा की सवारी निकल कर तालाव के निकट सराय में जाकर ठहरती थी वहां गोखड़े में वैठकर महिलाओं के घूमर-नृत्य आदि का दृश्य देखता था। उस समय तालाव के किनारे हजारों लोग एकत्र हो जाते थे और चारों ओर आतिशवाजी होती थी। नृत्योत्सव समाप्त होने के वाद महिलाएं गणगौर को वापस महलों में ले आती थी और राजराणा की सवारी भी वापस आ जाती थी।

होली

फाल्गुन माह की पूर्णिमा के दिन होली का त्यौहार मनाया जाता है। उस दिन सायंकाल के समय होलिका दहन किया जाता था। महलों के चौक में तथा कस्वे में होलिका के प्रतीक पुतले लगाये जाते थे और जलाये जाते थे। उस दिन राजराणा अपना दरीखाना लगाता था, जिसमें उसके जागीरदार आदि नजराने पेश करते थे। राजराणा सवको लकड़ी के खांडे और नारियल देता था। उस दिन सुवह 'गैर' नृत्य होता था जिसमें ठिकाने के सरदार और कर्मचारी भाग लेते थे। जो गैर खेलने आते थे उनको ठिकाने की ओर से गूगरी और शराव दी जाती थी। औरतों को गुड़ दिया जाता था। कस्वे में घूलेंडी और फाग तैरह दिन वाद तैरस के दिन खेले जाते थे। प्राय कोई-कोई राजराणा कस्वे के लोगों के साथ फाग खेलने जाता था।

सावणी तीज

सावण माह की शुक्ल पक्ष की तीज के दिन देवी पूजन होता था। इसको छोटी तीज भी कहते हैं। वह वर्षा ऋतु के परम आनंद की प्रतीक होती थी। लोग झूला झूलते थे। उस

दिन राजराणा की सवारी तालाब पर जाती थी और गोखडे में बैठता था तथा दरीखाना लगाता था, सगीत, नृत्य के कार्यक्रम होते थे और आतिशबाजी होती थी। राजराणा की ओर से नारियल और मिठाई बांटी जाती थी।

कजलीतीज

भादवा माह की कृष्ण पक्ष की तृतीया के दिन इसका त्यौहार मनाया जाता था। राजपूत लोग इसको विशेष उल्लास के साथ मनाते हैं।

इस दिन राजराणा सवारी निकाल कर तोपखाने के पास भोंचौंतरा पर जाकर दरीखाना लगाता था। लोग झूला झूलते थे और राजराणा की ओर से अपने सरदारों तथा अन्य लोगों के लिये भोजन का प्रबध रहता था।

बसंतपंचमी

माघ मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन यह बसन्त ऋतु के प्रारम्भ के प्रतीक का उत्सव है जिसको बडी धूमधाम से मनाया जाता था। कृष्ण-वाटिका के कृष्ण-मंदिर में प्रातः पूजन आदि होता था। राजराणा इसको रगपंचमी की तरह मनाता था। उस दिन वह सवारी लेकर बाजार में निकलता था और चारों ओर गुलाल आदि उडाकर खुशी का वातावरण बनाया जाता था। लोग महलों के चौक में एकत्र होते और राजराणा उनको भग, पतासे आदि वितरित करता था।

जन्माष्टमी

यह दिवस भगवान कृष्ण के जन्मदिवस के उत्सव के रूप में मनाया जाता था। कृष्ण का जन्म मध्यरात्रि में हुआ था अतएव रात्रि-जागरण और रात्रि-पाठ का कार्यक्रम रखा जाता था। दूसरे दिन नद-महोत्सव तथा दधि-महोत्सव का आयोजन रहता था। कृष्ण की पूजा-अर्चना और कीर्तन के साथ मदिरों में दर्शनार्थियों को पचामृत वितरित किया जाता था और गुलाल छाटी जाती थी।

दीपावली

यह दिन दीपोत्सव के रूप में मनाया जाता है। इसको लोग भगवान राम द्वारा लंका-विजय के पश्चात अयोध्या लौटने पर प्रसन्नता व्यक्त करने हेतु विजयोत्सव के रूप में हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं, मिठाईया बाटते हैं और आतिशबाजी होती है। घरों, मंदिरों, किलों आदि पर रोशनी होती है। इस दिन लक्ष्मी-पूजन होता है। राजराणा इस दिन विशेष दरबार करता था और गायन एवं नृत्य के कार्यक्रम होते थे।

रामनवमी

चैत्र शुक्ला नवमी को भगवान रामचन्द्र का जन्म दिन मनाया जाता है। इस दिन सादड़ी में सभी वैष्णव-मंदिरों में रात्रि-जागरण तथा विशेष पूजा-अर्चना एवं भजन-कीर्तन होते हैं। मध्याह्न में प्राकट्योत्सव के समय दर्शनार्थी मंदिरों में उमड़ते हैं। पंचामृत एवं पंजारी का प्रसाद वितरित किया जाता है।

तीसरे पहर कस्बे के सभी लगभग बीस वैष्णव मंदिरों से रामरेवाड़ियां निकाली जाती है, जिनमें मंदिरों के इष्टदेव को लेकर पुजारी पहिले सादड़ी ठिकाने के महलों के चौक में एकत्र होते हैं। वहां से जुलूस के रूप में वाजार से होते हुए बड़े तालाव के कुंड पर जाते हैं, जहां उनकी विशेष पूजा-अर्चना की जाती है। राजराणा स्वयं उसमें शरीक होता था। तालाव में नारियल अर्पित किये जाते हैं। उस समय हजारों की संख्या में लोग एकत्र होते हैं। रामरेवाड़ियों का जुलूस पुन· लौटकर महलों के चौक में आता है, जहां प्रत्येक रामरेवाड़ी में राजराणा अपनी ओर से भेंट पूजा अर्पित करता है। फिर सभी रामरेवाड़ियां एक-एक करके लौट जाती है।यह रिवाज वर्तमान राजराणा द्वारा अभी तक निभाया जाता है।

हरियाली अमावस्या

यह त्यौहार श्रावण माह की अमावस्या के दिन श्रावण माह की वर्षा-ऋतु के पर्व के रूप में मनाया जाता है। लोग वगीचियों में जाकर झूला-झूलते थे—गोठ आदि करते थे। राजराणा उस दिन वन-भ्रमण हेतु श्रावणी-सवारी करके मालपा मगरी पर जाता था और वहां दरीखाना करता था। जिसमें राजराणा को नज़्रें पेश होती थीं। वहाँ उस दिन राजराणा द्वारा विशेष रूप से मालपुए का पकवान वनाया जाता था, जो सभी को खिलाया जाता था।

जन्मोत्सव

प्रत्येक राजराणा अपने जन्मदिन पर प्रातःकाल से रात्रि तक उत्सव मनाता था। उस दिन प्रातःकाल से हवन का कार्यक्रम शुरू होता था, पूज्य ग्रहों का दान किया जाता था। दिनभर रामायण-पाठ का कार्यक्रम रहता था। जागीरदारों, वस्सीवानों, कर्मचारीयों आदि का भोजन होता था। उस दिन राजराणा अपना विशेष दरीखाना करता था, जिसमें उसको नज़्रें पेश की जाती थी। दरीखाने में संगीत और नृत्य के कार्यक्रम रहते थे।

परिशिष्ट – 2

झालावंश गोत्रोच्चार[1]

गोत्र	—	मार्कण्डेय, वेद-यजु
शाखा	—	माध्यंदिनी
त्रिप्रवर	—	भार्गव, और्व और जामदग्न्य
कुलदेवी	—	शक्ति [2]
अवटक	—	मखवान
उपअवटक	—	झाला
हनुमान	—	एक दडी
भैरव	—	केवडीओ
दसोंदी	—	टापरिओ एव
गोरमसालीओ	—	रावल

झालावंश शुभराज-विरुद

गढ़ पाटड़िया राण, गढ हलवद रा पातसाह छोगाला छात

---

1 झालावश वारिधि (गुजराती) पृ 473

2 झाला वश नामकरण से पहिले मकवानो की देवी का नाम 'मरमरमाता' होना माना जाता है ।

परिशिष्ट – 3

सादड़ी राजराणा के राह-रस्म, लवाजमा, बैठक, वगैरा

गादी का पलटा हो (बडीसादड़ी में नया उत्तराधिकारी होने पर) तब उदयपुर से कुवरजी बावजी (महाराजकुमार) नये राजराणा को लेने सादड़ी आता, यदि वह नही होता तो बागोर, शिवरती, करजाली तीनों में से कोई महाराज सादड़ी आता और राजराणा को उदयपुर ले जाता।

सादड़ी की हवेली अथवा जहां राजराणा का डेरा होता, वहां महाराणा मातमपोसी करने आता।

जिस दिन तलवारबन्दी की रस्म होती, उस दिन श्री कुंवरजीबावजी अथवा महाराज सिरोपाव लेकर हवेली अथवा डेरा आता और राजराणा को महलों में ले जाता।

राजराणा की बैठक जीमणी मुंडोबरोबर, बड़ी-ओल के सिरे पर अव्वल।

कुवर की बैठक डावी छोटी-ओल के सिरे पर अव्वल।

राजराणा माथे पर हाथ लगाकर एक हाथ से श्रीदरबार से जुहार करे श्रीदरबार (महाराणा) बॉह-पसाव करे गैणां-पहनावे, ताजीम बक्षे।

तलवारबन्दी तो उस दिन श्रीदरबार मे से पावंद-आवंद वगैरा इस मुजब—

गेणां 4 रु. 2000 का
दरबार पहिनावे

1. मोत्यां की कंठी दो लड़ी
2 सिरपेच जड़ाऊ
3. मोती चौकड़ो
4. पूछा जोड़ी

सरपाव हवेली लेवा आवे वे लावे
पाग

हाथी 1
घोड़ो 1
तलवार
तलवार की मुठ सोने री
तेनाल-गुणाल सोना रा
पड़दलो सोना रो
पड़दलो सामर को
हाथी की अंकुस

तलवारबंदी के समय राजराणा की ओर से नजराणा

मोताज इस मुजब	नजराणो इस मुजब	
100/ बड़ापुरोहित जी का	15/ बड़ो नजराणो	5/ चमर का
25/ ज्योतिषी ने	5/ बैठक को	5/ छांगीर का
25/ करमात्री ने	5/ पात्या की बैठक	5/ छड़ी सोना रूपाजी का
25/ दान-दीक्षित ने	5/ नाव की बैठक	5/ परणेतु पोसोरा
22/ भंडार खाते	5/ ताजीम का	5/ गेणा का
80/ सलेखाना (ढाल-तलवार वाला) ने	5/ दरीखाना को बीड़ो का	5/ हाथी का
12/ व्यासजी	5/ सीख को बीड़ो	5/ पालकी का
5/ गादी ऊपर	5/ पटा को	5/ घोड़ा का
5/ पुरोहित का चोगड़ा में	5/ नछरावल का	5/ वलेणा का
	5/ नगाड़ा का	5/ तलवार सरोपाव का
		20/ नजराणा चार का

देवस्थान मे भेंट	रावला में नजराणा
2/ गुणेस डोडी के	4/ माजी रानीजी के
2/ सिहासन के	4/ रानीजी
2/ पीतांबर रायजी	4/ भुवाजी
2/ ज्यानराय जी	4/ पासवानजी
2/ बाणनाथजी	
2/ जनानी डोडी का गणेशजी	

नोट—रनिवास में जो-जो प्रधान रानियां आदि होती थी उनको नजराणा दिया जाता था।

लवाजमो

महाराणा द्वारा सादड़ी राजराणा को दिया गया लवाजमा

नगाड़ो रणजीत बड़ीपोल तक बाजे	छड़्यां 2 सोना की
निशान सफेद, माताजी को चिह्न	छड़्यां 2 चांदी की
चंवर दो सोना की डांडी का, त्रिपोलिया तक रहे	घोटा 2 सोना का
छांगीर सोना की डांडी का	घोटा 2 चांदी का
मेगाडंबर (छत्र) सोना की डांडी का	चपड़ास 2 चांदी की
अडाणी सोना की	चपड़ास 2 पीतळ की
करण्यो सोना को	हलकारा का घोटा गुलाबी
छवादोय	लाल मुंडा का जरूरत माफक

धूपखेड़ी लाल इन्द्र-वेवाण
तरपायो
कोतल 2 सोना के गेणा की
कोतळ 2 चांदी के गेणां की
तामजाम
पालकी कवाणीदार
पीनस

अन्य स्वत्व—

- महाराणा के साथ वाहर जाने पर राजराणा का डेरा लाल रंग का (महाराणा का डेरा भी लाल रंग का)। राजराणा का डेरा महाराणा के डेरे के पास दाहिनी तरफ पहला डेरा साथ में घड़ियाल, मोरछल और नक्कारखाना।
- गुरुवार की चोकी (महाराणा के महलों पर) उस दिन गोठ जीम कर हाथ ऊजलाकरे (धोवे), महाराणा आवे और सीख को वीड़ो वक्षे। राजराणा हवेली आ जावे। रात्रि की चोकी-झांकी को जुहार माफ-रात्रि की चौकी पर कुंवर अथवा भाई-भतीजों में से सोने हेतु महलों पर जावे।
- राजराणा द्वारा हवेली अथवा सादड़ी से अर्ज करने के मौके पर महाराणा को "जुहार मालुम करायो हो" इस प्रकार कहलावे। महाराणा की ओर से वापस हुकम आवे तो "म्हारो जुहार मालुम कर ज्यो" कहलाया जाता।
- राजराणा से नजराणा श्रीदरबार (महाराणा) नीचे हाथ रख कर लेवे। उस समय दरवार "आप पदारया-वीराज्या-होकम करयो" आदि शव्दों से राजराणा को सम्वोधित करते। उस समय छड़ीदार जुहार बोले। कुंवरजी भी मुजरो वोले।
- राजराणा जवभी महलों में जाते, दरीखाना होता तो तवारीक मुरजादक पोशाक धारण करते अन्यथा सादा पहरावा में जाते। सभाशिरामणि के दरीखाने में जाने से पहिले छड़ीदारों को कहला दिया जाता, वे विछात करके रखते, वहां वैठ जाते। फिर दरवार में मालूम करा देते। इस पर दरवार में से पुरोहित जी लेने के लिये आते। वे वीड़ा नजर करते, उसके वाद उनके साथ श्री दरवार के पास जाते—वापस सीख करे उस समय श्री दरवार सीख को बीड़ो बक्षे—फिर राजराणा हवेली लौट आवे।
- सादड़ी मे राजराणा के स्वत्व—
    - राजराणा 'श्री दरवार' तथा 'हजुर' वाजे तथा कुंवर 'महाराज कुमार' वाजे (इन नामों से सम्वोधित किये जाते)

- ठुकराण्या 'राणीजी' वाजे
- छोटा भाई दो पुश्त तक 'महाराज' वाजे और फिर ठाकुर कहलावे।
- हजूरी लोग (दास) ढीकड्या, मसाणी, जलेबदार, पागड़ादार, डोड्या आदि वाजे
- जनानी मियाने सोने के कलसदार, लाल गुलेफ के होते।
- राणीजी व माजी के मियाने चंवर सहित तथा चांदी की डांडी के होते।
- महलों पर सोने के कलस रहे।
- दरवाजे पर बडा सफेद निशान उस पर माताजी का चिह्न ।
- घड़ियाल, नोपत आदि वाजे।
- त्रिपोलिया व गणेश डोड़ी होवे।

परिशिष्ट – 4

बड़ीसादड़ी ठिकाने के शिकमी जागीरदारों के ठिकाने

वंश नाम	ठिकाना नाम	
राजराणा के	1. भियाणो	16. तलावदो
भायप झाला	2. अणदारोखेड़ो	17. मऊड़ीखेड़ो
और ठुकरानियां	3. लुहारियो	18. पालाखेड़ी
आदि के ठिकाने	4. वोरूंडी	19. सरोड़
	5. सुरताणपुरो	20. हड़मत्यो
	6. सरथलो	21. वोयणो
	7. चेनपुर्यो	22. सवलपुरो
	8. उमेदपुरो	23. वोरखेड़ो
	9. दलपुरो	24. सेमलखेड़ो
	10. राजपुरो	25. सुखपुरो
	11. चाहखेड़ी	26. नलवाई
	12. लालपुरा को खेड़ो	27. रोजमाल को खेड़ो
	13. कीट खेड़ो	28. चांदराखेड़ी
	14. खेड़ी	29. पंडेड़ो
	15. मुकनपुरो	30 चितोड़्यो
चूंडावतों के ठिकाने	31. गुड़ली	
	32 साकरियाखेड़ी	
	33. गायरियावास	
	34. पावटो	
	35. खेड़ोरूपपुरो	
	36. भोपतखेड़ी	

राठोड़ ठिकाना	37. राठोडांको खेडो
राणावत ठिकाना	38. खांखरियाखेड़ो
	39. राणावतां को खेड़ो
बाघेला ठिकाना	40. अंबावली
सारंगदेवोत ठिकाना	41. ऊंठेल को खेड़ो
शक्तावत ठिकाना	42. करमद्योखेड़ो
	43. वाघेलां को खेड़ो (आधो)
चौहान ठिकाना	44. कलम्यो
	45. हीगोरियो
सुवावत ठिकाना	46. गुड़ो
	47. सुखवाड़ो
चारण ठिकाने आसिया	48 वली रो खेड़ो
मांडण	49. गोविंदखेड़ो
टापरिया	50. वड़वाई
राव ठिकाने	51. गाजणदेवी को खेडो
	52. भुवानीपुरो
	53 सिवपुरो
अन्य ठिकाने	
श्री द्वारिकाधीश मंदिर कांकरोली का ठिकाना	54. भोपतपुरो
श्री गोरधननाथ मंदिर नाथद्वारा का ठिकाना	55. खटुकड़ो
पुरोहितों के ठिकाने	56. आकीयो
	57. मंड्याणो
मेहता परिवार	56. लालपुरो छोटो
ओड़ीदार	59. चंदपुरो
जमांदार पठान	60. रायगपुरियो
(मुसलमान)	61. कीरतपुरो
जारोली परिवार	62. बागेलां को खेडो (आधा)

♦ ♦ ♦

बड़ीसादड़ी ठिकाने की आय के साधन
वर्ष वि. सं. 1964 (1907 ई.)

	मद	आय राशि
1.	मापो	2100 ।।।) 11-/
2.	आड़त	442 ।।≡ ।।)
3.	धरमादो	345 ।।।)
4.	लालटेन	98 ।।।- ।)
5.	अमलवलाई	60 ।।।≡ ।।)
6.	नाकादारी	2)
7.	कोतवाली की आय	143 ।।≡)
8.	छटूंद-लागत	4955 ।।)
9.	नजराणो-नछरावल	451 ।।- ।)
10.	फौजदारी	555 ।।- ।।।)
11.	दीवानी	96) ।।
12.	पंचवराड एवं वोरावराड़	587)
13.	रेतवराड़	658=)
14.	कलालीपटो	810)
15.	खटीकपटो	7311)
16.	घीसणपटो	80)

17.	दशहरा की लागत-निशान का	4/
18.	दशहरा की खाला	19/
19	सुथार-सिलावटां की लागत	261/ ॥
20.	छकड़्यां की लागत	210/
21.	मकान-दुकान भाड़ो	148 ।॥=/
22.	बड़ावाग से आय	67= ।/
23.	गोरेलो	166 ≡ ।॥/
24.	बीयाज की आय	14591-/
25.	ब्राह्मण्यो माल की रखवाली	127 ॥≡ ।/
26.	महुड़ा-आय	1185 ।॥/ ।॥
27.	खूंटकड़ी लागत	636 ॥/ ॥
28.	वेलचराई लागत	660/ ॥
29.	मुंजवा का घाटा की आय	2651= ॥/
30	वली री चोकी की आय	82 ।॥≡ ।/
31	एनमाल अर्थात् नाका, नुकता, राखी सरोपाव वगैरा की आय	1302/
32.	कुम्हारों पर केलु की लागत	44 ॥- ॥/
33.	करसाणी लागत-बोला-डंकारया आदि	5/
34.	सेणा-बलाई पर पाड़ा की लागत	—
35.	रोजीना का	3011=/
36.	कोठार कटोत्री	1172 ।॥≡/
37.	रसोड़ा कटोत्री	1661/ ।॥
38.	पायगां कटोत्री	3111= ।॥/
39.	अमल कटोत्री	5- ।॥/
40.	फरासखानां को तेल	17 ≡/
41.	कोठार माळ वढाव	5071≡/
42.	परचुनी पैदाइश	2968= ।॥/

43.	घोड़ा, ऊंट, गाय, वेल वगैरा का वेचाव (विक्री)	142)
44.	जमीन वेचाव का	—
45.	जागीरदारां वगैरा का जुर्माना पेशी में	572 ॥)
46.	मोचियों की लागत व खालां	61)
47.	सेणां पर लागत व नजराणो	24)
48.	सिवाय पैदाइश	7701) ॥
49.	दशहरा का फेटा उदयपुर से	—
50.	नूंत वराड़	—
51.	चोरी दापा का	—

◆ ◆ ◆

परिशिष्ट – 6

बड़ीसादड़ी ठिकाने का रियास्ती (प्रबंध) खर्च वर्ष वि. सं. 1964 (1907 ई.)

	मद	व्यय
1.	श्रीदेवस्थान	1980 I- III)
2.	पुण्यार्थ	2211 I≡)
3.	श्रीजी (महाराणा) को छटूंद	1153)
4.	रसोड़ो	31231) I
5.	कपड़ा को भंडार	4921) III
6.	गेणा का भंडार	886) I
7.	गेणां की मरम्मत	3111= III)
8	अंतर की ओरी	1451) III
9.	दारू की ओरी	155 II-)
10.	पाणे रो	—
11.	दवाखानो	2091= I)
12.	मिठाई	5911= III)
13.	रसाल	46- I)
14.	राजराणा का जन्मोत्सव	585-)
15.	तेवार (त्यौहार)	109 I I= III)

16.	आतिशबाजी	113 ll= lll)
17.	पायगां (घुड़शाला)	5156 lll≡ l)
18	तोपखाना	43- l)
19.	लवाजमा को कारखाना	161= l)
20.	सलेखाना	221 lll- lll)
21.	फरासखाना	2131≡ ll)
22.	सरस्वती-भंडार	5 lll≡ lll)
23.	रोशनी	197 ll≡)
24	फीलखाना	788 lll- lll)
25.	सुतारखाना	263 ll= l)
26.	तामजाम, मियाना, बग्गी, रथ, संगराम आदि का कारखाना	5311 ≡)
27.	जेलखाना	65 ll≡)
28	दफ्तर	3021) lll
29.	छकड़्यां	575 lll)
30.	गोरेलो	320 lll- l)
31	शिकारवाड़ी	4)
32	बाग	169 lll- ll)
33	घास	721 l- lll)
34.	मूंग धणो	—
35.	पामणां	1882 l)
36	नाको, नुगतो दूसरा ठिकाना में	1236) ll
37.	राखीपुसली	205= l)
38	तनखादार	6385 lll≡)
39	कपड़ो, धान, पेट्या आदि पावंदा	3642 ll= ll)
40.	अमल पावंद	48) l- ll)

41.	श्रीवासाव का मनखां की पावंद	450)
42	वगसाऊ	2107) |||
43.	मुम खरच	5619 |) ||
44.	खरची	1177 |||)
45.	भाडो	91=)
46.	उदयपुर वकील खरच	114) |||
47.	कमठाणा मरम्मत	—
48.	सरहदात	904 |||≡ ||)
49.	डाक महसूल कासीदो	35 ||- ||)
50.	अखवार	—
51.	सवार हलकारा	1) |||=)
52.	मुजवा का घाटा को खरच	35 |||= |)
53.	गांवों के लोगों के नूंद	94= ||)
54.	गांवों में तफेदारों का खरच	303 ||≡ ||)
55.	धान का कोठा को भाडो	48)
56.	कोठे धान घटाव	—
57.	कोठार पिसाई, हेमाल आदि	344= |)
58.	ब्याज हुंडावण	8 |||)
59.	कपड़ो रंगाई	24)
60.	राणीजी राजावत जी को खरच	2134 |||)
61.	दुलहसागर	35 ||- |||)
62.	गढ़ पर	2320≡ |||)
63.	देणां खाते कर्जवाला ने	—
64.	काम मुकदमां में	406 ||)
65.	मुतफरकानी परचुनी खरच	176 |||≡ |||)

66.	पारसोलीगढ़ पर	—
67.	मुनसरमात को खरच	—
68.	उदयपुर की कचहरियों का जुर्माना	—
69.	खास राज में जन्म-मृत्यु का खरच	—
70.	प्लेग का वंदोवस्त	781=)
71.	घोड़ा, हाथी, ऊंट वगैरा की खरीद	38 ।।।= ।।।)
72.	कवुलात	—
73.	रेजिडेंट का दौरा	—
74.	लक्ष्मी-भंडार खाते	—
75.	मर्दुमशुमारी	—
76.	यात्रा पर जाने का खरच	429- ।)
77.	वाईजी को खरच	609 ।।।= ।।।)

♦ ♦ ♦

परिशिष्ट – 7

बड़ीसादड़ी ठिकाने की लाग-बाग

मापा, आडत, धरमादा, लालटेन, वराड़, वलाई, चोकी वगैरा जो कुल लागतें ली जावे हैं—उसकी तफसील—

1. ऊंट के बेचने पर देने वालो से एक रुपया
2. बैल, भैंस, पाड़ा पर उसकी कीमत पर एक रुपया। उसके अलावा एक मोटा पैसा लेने वाले से और एक मोटा पैसा देने वाले से। ये पैसे एक आने के पाच गिने जाते हैं।
3. गीरत, गोल (गुड) तेल, अजमा, महुडा—इन पर
   - मापो पोठी एक पर नौ आने।
   - गीरत तेल साढे चार रुपया पोठी।
   - गोल, अजमो, महुड़ो ये मण पांच रुपया पोठी गिनी जाती है।
   - धरमादो पोठी एक पर एक आना, उसके तीन हिस्से किये जाकर दो हिस्से रिखव देवजी के मंदिर में सेवा करने वाले को तथा एक हिम्सा वडा दरवाजा बाहर श्री चारभुजाजी के मंदिर के पुजारी साधु को दिये जाते हैं।
   - तेवारी, मजकुरी, खुणची नंबर 18 वी कलम के अनुसार
   - आड़त गीरत तेल की पोठी प्रत तीन आना
   - आडत गोल, अजमा, महुडा की पोठी प्रत सैकड़ा पर एक रुपया
4. खांड, साकर, पिंडखजूर, जीरा, हल्दी, धनिया, काचरी, कांदा, लहसुन, मिर्च, गोंद, गरम मसाला, नारियल पोठी एक में 500–

   —मापो पोठी 1 प्र. एक रुपया —आडत सैकड़ा प्र. एक रुपया
   —धरमादो पोठी प्र. - एक आना —तेवारी मजकुरी खुणची नं. 18 माफक
   –देवरो पोठी 1 प्र. - एक आना

5. तेल घासलेट कनस (डिव्वा) एक प्र. दो आना

6. कणजी—लाख एक मन प्र. चार आना

7. धान गेहूं, जव, मकी, जवार, उड़द, चणा, मूंग, चमला

—मापो माणी 1 प्र. छः आना —आड़त सैकड़ा प्र. आठ आना
—धरमादो माणी 1 प्र. चार आना —तेवारी, मजकुरी, खुणची नम्वर 18 माफक

8. रूई—

—मापो पोठी 1 प्र. नौ आने —आड़त सैकड़ा प्र. आठ आना
—धरमादो पोठी 1 प्र. एक आना —तेवारी मजकुरी, खुणची नं. 18 माफक
—देवरो पोठी 1 प्र. एक आना
—लालटेन पोठी 1 प्र. चार आना

9. कपास—

—मापो माणी 1 प्र. एक रुपया —आड़त सैकड़ा प्र. आठ आना
—धरमादो माणी 1 प्र. वारह आना —तेवारी, मजकुरी, खुणची नं. 18 माफक
—देवरो माणी 1 प्र. वारह आना
—लालटेन माणी 1 प्र. आठ आना

10. कपास्या चोखा—

—मापा पोठी । प्र. पाच आना —आड़त सैकड़ा प्र. एक रुपया
—धरमादो पोठी । प्र. एक आना —तेवारी मजकुरी खुणची नं. 18 माफक
—देवरो पोठी प्र. एक आना

11. दाणा तिल्ली, अलसी, डोलमा
—मापो माणी । प्र. वारह आना —आड़त सैकड़ा प्र. वारह आना
—धरमादो माणी । प्र. अढाई आना —तेवारी, मजकुरी, खुणची नं. 18 माफक

12. सण, साजीखार, सोह देशी या देशावरी

—मापो पोठी । प्र. वारह आना —आड़त सैकड़ा एक रुपया
—धरमादो पोठी । प्र. एक आना —तेवारी, मजकुरी खुणची नं. 18 माफक
—देवरो पोठी । प्र. एक आना

13 कपड़ो-विदेशी सादड़ी में लाकर वेचने पर

—मापो कोड़ी । प्र. दस आना —आड़त सैकड़ा आठ आना
—धरमादो कोडी । प्र. दो आना —तेवारी मजकुरी, खुणची नं. 18 माफक

13. अरवी देशी सादड़ी से खरीदकर वाहर ले जाने पर मापो, आडत को ऊंदड़ो एक रुपया

पर पाव आनो

14. तमाखु-जरदो बाहर के व्यापारी सादड़ी में लाकर बेचने पर

—मापो मण। प्र. छः आना —आड़त सैकड़ा प्र. आठ आना
—धरमादो मण । प्र. एक आना —लागत की तमाखु जरदो एक मण पर आधा सेर
—देवरो मण । प्र. एक आना

सादडी के गांवों वाले लाकर बेचे तो मण पर छ आना

15 लुण (नमक) आमद (आयात) पर एक रुपये पर आधा आना और निकास (निर्यात) एक रुपये पर आधा आना

16. अमल (अफीम)

बाहर का व्यापारी खरीद कर वाहर ले जावे जिस पर रस नी छेर नीरमां माफक और गोट्यां जावे तो सभी लागत सवाई ली जावे

—मापो सैकड़ा प्र. एक रुपया वारह आना
—धरमादो सैकड़ा प्र. तीन आने
—देवरो पोठी प्र. दो आने
—श्रीचारभुजाजी पोठी प्र दो आने
—रिषभदेवजी के केसर की लागत परभारी लेवे
—वलाई व लीरी चोकी तक पोठी प्र. तीन रुपया
—लालपुरा की सीमा तक प्र. बलाई तीन रुपया बारह आना
—आड़त मण पर आठ आने
—तेवारी मजकुरी नं. 18 माफक
—लागत की अमल मण पर रु. 4 भर
—नाकादारी पोठी प्र. दो आना
—कोटवाली निकास पोठी प्र. दो आना
—चलीणी चोकी पोठी प्र. दो आना
—वलाई खेजड्या तक कानोड़ तरफ पोठी प्र. तीन रुपया

कानोड़, भीडर आदि अन्य पट्टों की अमल सादड़ी की सीमा में लेकर जावे तो नाकादारी, चोकी, वगैरा मामूली तथा वलाई जीतरफ जावे उस माफक

17 कुचामण्या-वोरा वगैरा व्यापारी जिनके ऊदडा आमद माल का है उनकी दुकान से माल का निकास (निर्यात) होने पर मापो वगैरा सब ऊपर लिखे मुताविक लिया जावे।

18. तेवारी, मजकुरी, खुणची इस माफक ली जावे—

1. तेवारी-पोठी । प्र. पाव आना और अमल की पोठी पर दो आने
 —श्रावण वदी 1 से भादवा वदी 12 तक
 —माह वदी 5 से चेत सुदी 10 तक

2 मजकुरी-पोठी 1 प्र पाव आना

—मगसर वदी 1 से सुदी 15 तक
—जेठ वदी 1 से सुदी 15 तक

3. खुणची वाहर का व्यापारी सादड़ी में लाकर बेचे उस पर तेल, गीरत पोठी 1 प्र. अढ़ाई पाव धान वगैरा सब चीजौ पर पोठी प्र. सवा सेर इसकी अढाई पांती करके एक पांती सरकारी, एक गुरां सीवराजी में, आधी पांती हनुमानजी के

19. तेलियों के खूंटघाणी की लागत—
एक खूंट सियालु एक रुपया सवा तीन आने
एक खूंट उन्नालु एक रुपया सवा तीन आने
दोनों साखों के कुल सालाना दो रुपये साढे छः आना

20. पीजारा के बेठक का गरपती दोई साख का एक रुपया। व रोशनी सारू जरूरत माफक रूई ली जावे

21. बलाई सूत खरीद ले जावे जिसके रुपये पर दो कुंकड़्या लागे

22. बलाई रेजा लाकर बेचे, जिसके रेजा पर दो पैसे लिये जावे और उनसे साल में एक वखत दशहरा पर घर प्रति आधो रेजो निसान की लागत को लियो जाय और वसीवान बलाई घरप्रती दो रेजा सालाना मांसाब को देवे।

23. धरियावद और सलूम्बर के जो व्यापारी यहां (सादड़ी) में रहते हैं उनसे आमद और निकास दोनों में मापो-आड़त वखत तो आधा लगे और जीन्स में और तमाखु पर मण पर चौथाई और अमल, रूई, कपास इन पर पूरा लिया जावे। सवां सीरस्ते ऊपर माफक (व्यापारियों के नाम)

तखतमल सराफ	नेणचंद रामपुरियो
चंपालाल पामेचा	मोड़ो रामपुरियो
चंदरभाण सराफ	हेमराज टांको
कालु सामोतो	

24. खालां पर लागत

बोलां के घर से खालें खरीद कर ले जावे अथवा अन्य जगह से लाकर यहां बेचे तो पोठी 1 याने खालां 16 पर एक रुपयो और एक चमड़ा होवे तो उस पर एक आना

खटीकों की छोटी खालों की एक पोठी याने 80 खालों पर एक रुपया। रंगी हुई और कच्ची पर आठ आना

रास्वा पर छोटी 40 खालां जावे तो आठ आना, कच्ची पर चार आना माथा पर

छोटी 20 खाल जावे तो चार आना, कच्ची पर दो आना।

25. पगरख्यां (जूते) बाहर से लाकर यहां बेचे अथवा यहां से खरीद कर ले जावे तो कोडी 1 प्रत दो आने लेवे।

26 व्यापारी प्रचुनी एक रुपये से पांच रुपये तक की जीन्स ले जावे उससे एक रुपये पर आधा आना लेने और ज्यादा ले जावे तो ऊपर माफक।

27. सिलावट चुणाई घडाई करे तो मीनां (महिना) का आठ आना।

28. गाड़ी किराये फेरे (चलावे) तो महिना का आठ आना।

29. सुथार के सुथारी काम पर महिना का आठ आना।

30. बोला वगैरा धावड़ो पालो बाहर ले जावे तो मण पर एक आना ।

31. भील मीणा वगैरा घास बेचवा आवे तो फी भारा या सेरणे पर सरकारी मासाहेब सेणा को
    2, 2, 1

32 भरामण्यां (ब्राह्मणों) के माल एवं माफी की जमीन पर रखवाली एक बीघा पर अढाई सेर गेहूं।

33. मोची पगरख्यां बनावे उनसे प्रति दुकान से साल में एक पगरखी जोड़ी।
    करसाण (किसान) लोगों की छोर्या (लड़कियां) परणे सो चोरीदाण को एक रुपयो और एक नारियल।

34. कुम्हार केलु बनावे तो समस्त कुम्हारों से 31000 केलु और वासण (बर्तन) जितने चाहिये उतने लेवे।

35. सादड़ी का सेणा एव गाम बलाई के दसरावा (दशहरे) के।

36. नायां (नाईयों) से बाज, दूने जितने चाहिये उतने।

37. मुंजवा का घाटा की बलाई (बोलाई) इस मुजब
    ऊंट एक का एक रुपयो
    घोडा एक का आठ आना
    पोठी एक का आठ आना
    रास्वा एक का चार आना
    आदमी एक का चार आना।

38 बली की चोकी की लागत
    गाड़ी खाली एक आना
    गाडी भरी दो आना

गाड़ी भरी चमड़ो की चार आना
ऊंट सवारी का आधा आना
ऊंट कपड़ा का चार आना
धान वगैरा का भर्यो ऊंट एक आना
पोठी खाली पाव आना
पोठी भरी आधा आना
पोठी वर्यो कपड़ा को एक आना
घोडो सवारी को पाव आना
रास्वा का दो पैसा।

39. कीर खरवूजा वेचे तो फी गुणे तैरह खरवूजा।

40. कोतवाली की लागत—
गाड़ी भरी रात (रात्रि) हो तो चोकी का एक आना निकास का एक आना
गाड़ी च्यार वेली भरी रात्रि हो तो चोकी का दो आना निकास का दो आना
गाड़ी खाली रात्रि हो तो चोकी का आधा आना
मुंगधणा की गाड़ी उसके दो वैलों के चार आने चार वैलों के आठ आने

ऊंट कपड़ो का	चौकी का एक आना	निकास का एक आना
ऊंट परचुनी माल को	चौकी का आधा आना	
पोठी	चौकी का आधा आना	
रासवो	चौकी का पाव आना।	

41. तम्बोली से पान जरूरत माफक आवे।

42. गांछा, भंगी से टोपले एवं छावड़े जरूरत माफक आवे।

43. कलाल से होली के दिन जितना दारू उपड़े (काम में आवे) उतना आवे।

44. माली, भोई से लीली भाजी (हरी तरकारी) रसोड़े तथा पामणां (महमानों) के लिये दोनों वगत आवे। मेरवां सारू लकड़ी माली लावे।

45. अली वोरा से होमतावे टील्यां, दोवड़ा, आदि आवे

46. राज में श्राद्ध हो तो तमाम पट्टा और सादड़ी में से दूध-दही बिना कीमत आवे।

47. वैल चराई—प्रति वैल एक रुपया दो आना एवं केरड़ा को नौ आना कलदार लिया जावे।

48. खूंटकड़ी

घास की गाड़ी चार बैल एक रुपया दो बैल आठ आना
मुंग धणाकी गाड़ी चार बैल आठ आना दो बैला चार आना

दीगर

(क) रेतवराड़ की तफसील

587/= पंच महाजन छोटे साजन वडे साजन से — वराड़ 585/= — भरोती 2/=

52/= पंच तुरक्या चोरां थी — वराड़ 50/= — भरोती 2/=

(ख) खालसाई (राज्य के) गांवों मे लागतें हैसीयत, गांव व किसानों पर-नाम तफसील

वराड़	श्री चत्रभुजजी की	नजरानो दशहरा का
घरकुपी	1/= सीतारामदासजी	कुंवर मटकी का
खडलाकड़	पायणो रावलजी के	गाडी भारो
वदाऊ हासल	कपडा का	नेग देवता
अमल-लागत	पटवारी का	लखणा का
भोग तीजो हिस्सो	सेणा का	तगीतोवरा का
राजपूत से चौथा	बलाई का	पाड़ा का
हिस्सा	तोलाई का	खागरू का
सेरणां	डेरा खरचनूंद का	भरोती का

(ग) जागीरदारां के गांवां पर लागत हैसियत माफक

छटूंद	श्री चत्रभुजजी	4/= नजराना होली
खडलाकड़	1/= सीताराम दासजी	दीवाली 1/=, दशहरा 1/=
आदमी	पायणो रावलजी	जन्मगाठ 1/=
भरोती	कपडा का	कुंवर मटकी
वदाऊ अमल बीघा	रखवाली	गाड़ी भाड़ो
1 प्र. एक रुपया	रो जांतो	नेग देवता
अमल बाघा 1 प्र.	सूद प्र. 2/= सैकडा	लखणा का
अढाई आना	काती पूनम वैसाखी	तंगी तोवरा का
वदाऊ हासिल जहां	पूनम बाद	पाड़ा रा
ऊदड़ा बंधालिया है, उनके		खाजरू का
कम ज्यादा नहीं होवे और		1/= चार नजराणा
अमल नही ली जावे, जिनके		सिवाय कामदारों को
बधा नही हो वे उनके ऊपर		
जितना माफक हो उतना लेना		

(घ) **सादड़ी में एवं पट्टा (ठिकाने) में सरकारी हकूक (बेगार)**

1. **ब्राह्मणो पर**—जरूरत पड़ने पर नतनीम (धार्मिक सेवा-पूजन) करने आवे व्रत, श्राद्ध में डीलां (स्वयं) जीमण करे।

2. **राजपूत**—वार, हेले, खेडखवाड़ में जावे अगर नहीं जावणी आवे तो पीछे बंदोवस्त में हाजिर रहे।

3. **मोट्यारां का साथ का**—दशहरा पर उदयपुर (राजराणा) पधारे उस समय साथ में जोब वार, हेले, खेड़ खवाड में जावे तथा पीछे के बंदोवस्त में हाजिर रहे।

4. **सिपाही**—वार, हेले, खेड़खवाड़ में जावेगा, पीछे के बंदोवस्त में हाजिर रहेगा।

5. कामदार वसीवान

6. **महाजन**—1. गांवों में गेहूं पीसने के लिये डाले तो पोठी महाजना की आवे। 2. दीवाली के दिन बाटां वणावे। 3. भोजनसाला लाडू बांदवा आवे।

7. **सोनार**—गेणो ऊजलो करनो व टूटभाग दुरुस्त करनो।

8. **बोहरा**—1. हाथी, घोड़ा को गेणो गांठे। 2. गजगाव धोवे गांठे। 3. फरासखाने-काच-तसवीरा, झाड़, हांड्या वगैरा कांच की चीजां मांजे।

9. **पीजारा**—1. गांवों में गेहूँ पीसणां डालवा ने पोठी लावे। 2. रुई भरे, रोशनी के वास्ते जितनी रुई चाहिये देवे-भीतर तथा बाहर।

10. **दरजी**—तमाम सिलाई करे।

11. **सुथार**—1. वागर में बलीतो (लकड़ी) फाडे। 2. परचुनी घड़ाई को सब काम करे।

12. **तंबोली**—1. भोजनसाला काम करवा आवे। 2 पान चाहिये उतना हाजिर करे।

13. **नाई**—1. भोजनसाला काम करे। 2. हजामत करवा महलां में तथा कोतवाली व थाणा में आवे। 3. मशाल रखे। 4. वाहर निवास में जरूरत माफक साथ जावे। 5. वाहर निवास में स्नान को जल भरे, वाज दूना करे। 6. रोसनी करे, दातुन लावे।

14. **कुम्हार**—1. पाणेरे एवं पामाणां के, रसोड़े एवं भोजनशाला में जल भरे। 2. फाग को जल भरे। 3. शिकार में मगरे में जल लेकर साथ हाजिर रहे। 4. परगणां में से दूध-दही मंगाया जावे तो लावे। 5. केरयां भेजवा में ढीचा कुम्हार का आवे।

15. **लुहार**—लुहारी का कुल काम करे।

16 **तेली**–1 सण काते, 2. पामणा के माचा देवे, 3 छाणा देवे। 4 भोजनसाला का काम करे। 5 रणवास में तेलण्यां नीपे जल लावे।

17. **भोई**–1 रसोड़े का काम करे, मसालो खांडे। 2 तामजाम, मियाना, पीनस तोके (उठावे)

18 **माली**–1. हीदा (झूला) वास्ते नाड़्यां लावे। 2. जरूरत पड़ने पर बाग में चडस-नाडी लावे। 3. बारवास में जरूरत होने पर गाड़्यां वास्ते बैल लावे। 4 भोजनसाळा का काम करे।

19. **लखारा**–1 बैलों के सीग रंगे। 2. फागां में गुलाबगोटा वणावे। 3. रंगवा को लखारां को सब काम करे।

20 **कलाल**–1. बारवास में दारू ये अपने रास्बा पर ले जावे। सरकार में इनका जो दारू आवे उसकी कीमत छातो दो आना, फल आध आना, रासी एक आना दिया जावे। 2 होली के दिन गैर जावे तब जितना दारू चाहिये उतना बिना कीमत लिया जावे। 3. केरयां भेजवा में ढीचा कलालों से आवे।

21 **भील**–कागज नाकवा जावे तथा अगवो जावे।

22. **कंदोई**–भोजनसाला का काम करे। बाहरवास में जरूरत होने पर साथ जावे।

23 **खटीक**–रसोड़े का काम करवा आवे।

परिशिष्ट – 8

सादड़ी ठिकाने के प्राचीन शिलालेख

१. संवत् १३४४ वरसे आसोज सुदी ११ गरुदीन साहाखेता सुत धीगा रामा वास तीसाताड़ी काराजी डीग का जीत ड़ासंपुरण

नोट

मोजा पारसोली से पूरव की तरफ १ मील के करीव पहाड़ पर भैरुजी के पास शिखरवंद मन्दिर दिखाई देता है विखरा हुआ - वहाँ १ थंभे यह शिलालेख पर है।

२. श्रीरामजी

समत् १८२३ वैशाख सुदी ३ नामे पटेल खेमा जाट माड़ारो चीरो रोप्यो।

नोट

यह पारसोली से दक्षिण की तरफ चोंतरा पर है।

३. पारसोली गाम लद्मो ज्राखडइ कटावेने माराज रामदासजी ने माडी दीने मादेव पुजेगा ने खेत खावेजो यो लख्यो श्रामण व्राह्मण भोगाराम

श्रीराम जी

वा. भगा माता संमत् १८३४ माहा सुदी २

नोट

यह शिलालेख मोजा पारसोली पटे सादड़ी गामसे दक्षिण की तरफ वड़ला रेटे चोतरा परे दो जगा है।

४. संवत् १७०५ वैशाख सुदी १५ हाजे कलमी हरखा सुत नाथा महादेवजी का मंडप कीधा

नोट

यह शिलालेख तलावदा के पूर्व की तरफ महादेवजी के मंदिर के सामने थंभे पर है।

५. संवत् १३०० रा जैठ सुदी ११ माहादत श्री नथमलजी राज दुगमलजी आगमचे की जग सेटवाणा रा माफीदार धरती की. वाकी फूट गई

नोट

यह शिलालेख मोजा सेटवाणा पटा सादड़ी चोवीस्या परथीराज के घर में लगभग सं.

१३०० का। यह शिलालेख पूरीतौर पे पढ़ा नही जा सका। लेकिन संवत् १३०० मालूम होता है।

६. सिध श्री गाम सेटवाणा ठाकुर साब श्रीगोपाल सिंघजी वार में पटेल पीथा जीरा चीरा पटेल जगनाथजी करायो संवत् १८४६ वरस साके १७११ का वैशाख सुदी १५ सुन वार जतक जीव देणी

नोट

यह शिलालेख मोजा सेटवाणा पटे सादड़ी ग्राम के पश्चिम की तरफ थंभे पर है।

७ श्री गणेशायनमो
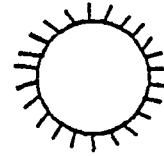
संवत् १८०७ आसोज वदी ११ सिध श्री माहाराणा श्री जगतसिंघजी रा वार में राणा श्री राय सिंघ जी वचनात् लिखता जाला गुमान सिंघ जी काका ग़ाम सेटवाणा रा लोक अमावस रे दन बलदारे खांदे जुड़ो दे नही सइणो १ कीइपण चतरभुजीरे नामे छूट। ओलखाऊ थापे जणी ने राम जी पुगसी

गाय बछा सेंती खुदी थकी है

नोट—राजराणा रायसिंह के काल का यह शिलालेख मोजा सेटवाणा पट्टा सादड़ी ग्राम के बीच में मंदिर के बांई तरफ लगा हुआ है।

८. श्रीरामजी

तांबापत्र

सीध श्री माहाराजाधीराज
ठाकरा गोपालसीघजी सुत वासमा
गमान

आगुगरु काना ने खेत वीघा ९ अखरे नव तांवा पत्र कर दीधी हर मुरजाद सुदी इने लोपे जगाजी ने आद माताजी पुगेगा संमत् १८४२ वैसाख वदी अमावस सोमवार के गाम सेटवाणा माहे खेत का नाको राणा हमेरसीघ जी री वारमे परब महे खेत ताबा पत्र कवे दीधो ओर ब पंच पी खेत खरे ओरी मुठी दवेगा इने लोपेगा जीने गधे गार हे

गधो मण्डयो

नोट—यह शिलालेख मोजा सेटवाणा पटा सादडी गरु मोड़ीराम के घर में है।

श्रीरामजी

श्री महाराणा श्री सुरतान सीघ जी वचनातु भ्रमण चत्रभजी ने खेत उदक दीधो जमी ७ वरसे वेसाख वदी ५ सौमे
नीचे गधो मण्ड्यो

नोट—यह शिलालेख मोजा तलवारया में पूरव की तरफ कुवा पर रुपा हुआ है कुछ ऊवी फुटी है

१०. सीध श्री गाम पंडेड़ा के एकादशी पाली गामरा लोक ध्रामण जोशी सारा ही पंच वेने पाली राजी वाजी वेने पाली एकादशी रे दन वलदारे खांदे जुड़ो देज्या श्रीरामजी रो पुनि जणीने गधेगार चीतोड भाग्यरो पाप जुइ अमावश पले अति केलु लावणी रोगवो छुट हे लोपे जणीरा सातु परीवार धोवी री सुदणी मे पड़े संमत् १८३१ सु वेसाख सुदी २ ठाकुर साव श्री गुलाव.................

(कोना टूटा हुआ)

नोट—यह शिलालेख मोजा पंडेड़ा पटा सादड़ी गाम से पुरव की तरफ माताजी का चोतरा परे वड़ला नीचे

११. श्रीरामजी
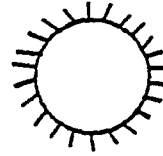
श्री आदमाताजी श्री पीताम्वरराय जी

रती सहीः

स्वस्ती श्री महाराजा धीराज माहाराणा श्री सुरताण सीघ जी वचनातू गाम लीकोड़ा रा अमावस तथा अग्यारस को ही वलदारे खदे जुड़ो देवा पावे नही अणी ऊपरांत करसी सो सजा पावसी ऊपरांत गधे गार हे संमत् १८३२ वर्से पोस सुदी १५ शुत्रे मेरे पत्र देवाणी माहादेव रे विथा १५ अरपण कर देवाणी

गधो मंड्यो

नोट—यह शिलालेख मोचा लींकोड़ा पटा सादड़ी गाम से दक्षिण की तरफ वड़ला के पास चोतरा परे

१२. श्रीरामजी

राणाजी श्री जगतसिंह जी

माहाराजाधिराज महाराणा श्री रायसिंह जी माऊसाव पुवारजी वड़ी वावड़ी वणावी-संमत् १८०३ वरसे पोस वदी २ गजधर सुथार पीता प्रधान सवचंद्र प्रधान झाला रो

नोट—यह शिलालेख श्री चतुर्भुजनाथजी के मन्दिर (व्रह्मपुरी वड़ीसादड़ी) में लगा

हुआ है।

१३. श्री आदमाताजी श्रीरामजी श्रीपीतावरजी

रती सो सही

स्वस्ति श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री चनण सिह जी वचनात गुसाई मथरागीरीजी ई वावड़ी आगली आज पर धरमसाला वंदावसी ई तांवा पत्र में आकीदी सही-आप दत्त-परदत्त येगवालो-ये सोवसुंधरा-तेनरा नरक जावो चंद्रदीवा कला सवत् १८५७ वरस रा वेसाख सुदी ९ धरमसाला सारु रुपया लागेगा सो नारणहे हस्ताक्षर मोतीसीगनुरा

नोट—यह शिलालेख श्री सत्यनारायणजी का मन्दिर के पास फूलचन्द जारोली के मकान की भीत (वडीसादड़ी) में लगा हुआ है।

१४. श्रीरामजी

रती सही

सिध श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री रायसिंघ जी वचनातु नया वाजार आ झाला रा साथ वालादसे अप्रंचाये नवो वजार वसायो जीरी अण मुजव जागीर देवाणी जीरी वीगत प्रथम तो श्री रावली राजकोट वाली वंदावणी और वजार री वंदोवस्ती राखणी जीरी भलावण हरदार उमेद सिंह जी ओर जायगा कर देवागा-वंदावेगा तो रहवेगा व भाड़ो खावेगा वीरीवेची वेचायगा-ओर बाजार में चीज वस्त वेचाएगा जीरीई चले वायगा और दलाली करेगा जो खावेगा अणी सवाय अणी वाजार सुंखेचल करेगा नी थे अरजाऊ करोगा-सुणवाई वेगा-तथा वेठ वेगार नागे नुगते तो थे देणी ने-दुंजु भलावा नहीं अणी वाजार में वकरो वे ने जावे तो अमरो कर देणो ओर सरस्ता मुजव पल्या जायगा सो जाणसी-अणी वजार री चोवटाई पीता गदीयारी हे यो लख्यो-पीढ़ियाँ धर पीढ़ियों राज पाल्या जावेगा संवत् १८०३ का वैशाख विद ३ रवे।

नोट—यह शिलालेख झालां रे साथ पीपली नीचे हनुमान जी के चोंतरे पर लगा हुआ है।

१५. श्रीरामजी

सीध श्री महाराजधीराज महाराणा जी श्री सुरताण सीग जी वचनातु सादड़ी के खेड़े आ प्रसस्ती खोदीदी सो अग्यारस तथा अमावसरे दन हल जोते, वलद काड़े गाड़ी जुडी गुणती लादे तथा गुपत तोलासुंदे जणी ने आदमाताजी पीतांवर राय जीरी आण हे अणी लख्या में वदल जावे तो गध गाल हे अणी पत्र ने वदले जणी ने राज डंडे भरसी तथा कलार री भाटी कसाई री दूकान बंद रेला—सावण सुदी १३ संवत् १८३२ अतरे पच ने वदले जणी ने आपरी जात डंडसी श्रीपरसती लख दीनी आलख्या री पालन राज

राखी सादड़ी रा समसतरा केवा मुं राज लखी तथा लक्ष्मी नारायण रा सोगन...
नोट—यह शिलालेख श्री लक्ष्मीनारायण जी के सामने किले पर है।

१६. श्रीद्वारिकेशोजयति

स्वस्ती श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री सुरताणसिंघ जी वचनातु गाम भोवतपुरा को ही फोजदार परधान कामदार कोटवाल चीठी पत्री तथा लागत वलगत तथा जुठी जलणकर गाम महें ऊछोर वेठ वेगार री माफ अणी अपरांत खेचल करे जणी ने श्री जी तथा श्री आदमाताजी पीतांवर जी पुगे तथा गाम रो सेरणोमेर मरजाद सदामद प्रमाणे सही होवे पर वानगी मठरीमदत्त आगमचे अधिकार अणदराम गाममहेक रसीवलद् वोगरो करे तो रुपया ५१ । श्री जीरे डंड सं. १८२९ फाती-सुदी १३

नोट

यह शिलालेख मोजा भोपतपुरा पट्टा (भगवान श्री द्वारिकाधीश मंदिर कांकरोली का) वड़ी सादड़ी से १ ॥ माईल दूर है ।

१७. श्रीरामजी

सवसती श्री स्वामीजी श्री पूर्णदास जी छतरी परणावी तथा मेलो कीधो जो सेवग माहाराजधीराज श्री रायसिंगजी सेवा चाकरी कीधी-श्रीराज रा हुकम थी उपर धाई सरदार राठौड़ उमेद सिंग प्रधान मेता चंद्रभाण सलावट अमरो संवत् १८०३ वर्षे मिति फागुण सुद ८ शनै—
नोट—यह शिलालेख मोजा पीन्ड परगना निम्वाहेड़ा ईलाके टोंक में (वड़ीसादड़ी से करीव छे माईल दूर है) मौजूद है। नदी किनारे पर।

१८. श्री

समत् १८४५ श्रीसार भजानाथ जीरे भेंट जमी तीन वीगा दी जाला गोपाल सिंगजी तलावदा रा ऊगमणा माल में सीगाड्यो दी दो
नोट—यह शिलालेख तलावदा पट्टा हाजा में है खेत पर खाड़ा में गाड़ा हुआ है।

१९. ऊपर घोड़ो सवार है

खेत में चीरो रुप्या हुआ है।
सं. १८४७ कातीवद १ मीणा तलावदा रीवतलादी रूपजी देवड़ो मरयो जाला गोपाल सींग जी आठ वीगा जगा दी दी।
नोट—तलावदा पट्टा वड़ी सादड़ी में है।

२०. समत् १९०१ जाला गमान सीग जी वावड़ी कराई चेत सुद १
नोट—यह शिलालेख वावड़ी पर थंभे पर लिखा हुआ है। तालावदा पट्टा वड़ीसादड़ी में

२१. सवत १८०५ वेसाख सुद १५ मड़पवीओ राज राय सीगजी री बार में जाला गुमान सींग जी पटेल हरक कलम मंदर करायो
नोट—मन्दिर में लिखा हुआ है। (तलावदा पट्टा बडी सादडी में)

२२. श्री एकलिंग जी श्रीरामजी
सरेह महादेवजी श्री सुमेरजी आकोदड़ा में है संमत् १३५९ वेसाख सुद ३.

२३ श्री एकलिंगजी श्रीरामजी
सीध श्री महाराणा जी श्री श्री १०८ श्रीश्री फतेसीगजी की लार में राजराणा श्री दुलेहसींग जी की लार में महादेवजी री श्री सूर्यराजीकी परीस्ता की दी - कुमावता समस्त पंचा चौखरा का पंचा सामिल में कराई स. १९७३ महासुद १०.
नोट—यह शिलालेख महादेवजी का मंदिर के प्रतिष्ठा हुई जिसका।

२४. श्री आदमाताजी पीतांबर रामजी
गऊ
अप्रच मीलखो श्री दरबार थीन थाहवाली न वाली सारा भेला होवे ने श्री हजूर वजार माहे पधारे-सुर गाडी इने ऊथापे तथा गागे पाछे आद का देवाल रेज गरज सूं वीतावी चदि खेचल करे जीने श्रीजी पुगे संवत् १८४१ माह सुदी ५
नोट—यह शिलालेख चारभुजाजी रे मंदिर के बाये कोने पर लगा है।

♦ ♦ ♦

परिशिष्ट – 9

महाराणा भीमसिंह के काल में सादड़ी पट्टे के गांव और पैदाइश

संवत् 1874 मगसर वदी 2 का पट्टा

स्वस्तिश्री उदेपुर सुथाने महाराजाधिराज म्हाराणा श्री भीमसींघजी आदेसातु रणा कीरतसीग चनणसींघोत कस्य सु परसाद लीख्यते अथा अठारा समाचार भला है आपणा समाचार करावजो अप्र गरास मया हुवोहै सो अमल करेगा जमा खातर राखे खाया पाया जासी उनत चडके गान्ही हुकम माफक सेवावंदगी कीदा जावोगा—

वीगत—

परगना सादड़ी के गाम

२२०००/ गाम सादड़ी राजथान
२५००/ गाम अबीरामो
२०००/ गाम मुजवो
५००/ गाम पाएरी
५००/ गाम सेमलो
२५००/ गाम परवतखेड़ो
५००/ गाम चांदखेड़ी
१५००/ गाम भाडुजो
२०००/ गाम पारसोली
५००/ गाम पीदड़ी
६००/ गाम कटाई
५००/ गाम चितोड़ो
४००/ गाम कुलवरो
७००/ गाम हड़मत्यो
७००/ गाम करमालो

१००/ गाम अबावलीटो खेड़ो
३००/ गाम भोबतपुरो
३००/ गाम सेबलपुरो
१००/ गाम तीखोडो (बीलोड़ो) सोभावली
१०००/ गाम लुहारो
५००/ गाम चेनपुरो
६००/ गाम बोरखेड़ो
१०००/ गाम मरावद्यो
१५००/ गाम भेसाणो
३०००/ गाम वीनायक्यो
१०००/ गाम फाचर
७००/ गाम पालाखेडी
२०००/ गाम पीड
१२००/ गाम उटोल
३००/ गाम आक्यो
४००/ गाम सरसोड़ो
६००/ गाम नलवाई
४००/ गाम गुडली
१०००/ गाम वभोरो तलावतो
३००/ गाम गुदलपुरो
१०००/ गाम वरकटाखेड़ो
४००/ गाम जरखोणो
१०००/ गाम पाणेडो
५००/ गाम चीपीरोखेड़ो
१०००/ गाम पठारा
७००/ गाम उड्ण्या
५००/ गाम टीलारोखेड़ो
२००/ गाम नवोखेड़ो
२००/ गाम कीटखेडो
५००/ गाम सेरथलो (सरवलो)
३००/ गाम लीबोड़ो (नीकोड़ो)
२०००/ गाम करजुं
१०००/ गाम अंबावली
गाम मीडाणो

५००/ गाम लीलपुरो
गाम तुलछाखेड़ी

परगणा उठाला रे गाम

८००/ गाम गुड़ल्यो
२२००/ गाम आकोदड़ो
२५००/ गाम आमली खेड़ा सुदी

परगणना माहोली रे गाम

४००/ गाम सुखवाड़ो
३०००/ गाम मोलवाड़ो
७००/ गाम नांदवेल
९००/ गाम बोवाणो
४००/ गाम पावटो
९००/ गाम देवाली
गाम चीपीखेड़ी
गाम सुवावता रो गुड़ो
१५००/ गाम खटुकड़ो
६५०/ गाम रूपपुरो
१२००/ गाम नपाणे
६५०/ गाम बासणो
गाम साकर्या खेड़ी
गाम भोपतखेड़ी

परगणा अचलाणा रे गाम

२०००/ गाम सरवाणा (सवाणो)

परगणा कुडाल रे गाम

३०००/ गाम सेमरथली
६००/ गाम कुलवरी
५००/ गाम छाछखेड़ी
६००/ गाम अचलपुरो
१०००/ गाम बागदरी
५००/ गाम हीगोरो
१५००/ गाम बरवाडो
१०००/ गाम बबरोहुर्जो
१०००/ गाम सालेडो

परगणा वारा रे

७००/ गाम लीबोहेड़ो
१५००/ गाम देवली खेड़ा सुदी

परगणा वीनोता रे गाम

२०००/ गाम नदाणो
१५००/ गाम देवली दूजी खेड़ा सुदी

परगणा खेरोदा रे गाव

१५००/ गाम वासड़ो खेड़ा सुदी

परगणा भादसोड़ा

२०००/ गाम पीपलवास

परगणा ताणा

८००/ गाम दीमल्यो (सेमल्यो)
१२००/ गाम डाबर

५००/ गाम नादोली
२०००/ गाम गुदलीखेड़ो
५००/ गाम रोहेड़ो सीगपुरो खेड़ा सुदी
८००/ गाम आजणीखेड़ो

रखवाली रा गाम

गाम जणताई
गाम नखाखेड़ी
गाम सोमपुर
गाम राजपुरो
गाम सरसोडो
गाम कचुंबरो
गाम चारणखेड़ी
गाम आलाखेड़ी
गाम खुटदेवल्यो
गाम लीबोट
गाम भूटक्यो
गाम सालरमोल्यो
गाम खेरखेड़ी
गाम साकरमाल्यो
गाम भाटोली
गाम नरपाखेड़ी
गाम देवदारा वसवा

अतरा गाम भूल्या सो फेर पाछा सु हुकम हुवो सो गाम १४ फेर उठत्री परमाणे मांड दीदी

गाम पडेडो
गाम दलपुरो
गाम पारोली रो गुड़ो
गाम तलावदो
गाम सोमपुर
गाम रातीतलाई
गाम सेठवाणो
गाम रूपारेल
गाम वोरखेडो
गाम चांदराखेड़ी
गाम छाछखेड़ी

वि.स. १८७४ वर्षे मगसर वदी २

पटेलों आदि के नाम—

सीधश्री दीवाणजी आदेसातु अतरा गाम रा समस्त पटेल लोग करस्या अप्रंच अतरा गाम बड़ीसादड़ी रे जिले राज कीरतसीघजी चनणसीग के मया हुवा है सो अमळ कराव्यो हासल राजरा कामदारां फोजदारां रे दीजो—

नोट—उपरोक्त आदेश के सभी परगणों के गांवों के नाम इस पर्वाने में दिये गये हैं—किन्तु निम्नलिखित अधिक जोड़े गये हैं—

१. परगणा मोई में गाव गोगाथलो १२००/
२. परगणा गिरवा में गांव
   १०००/ गाम कवीथो १०००/ गाम लाहेरी
३ परगणा भरेख (?) रे २०००/ गाम सातलावास

वि स. १८७४ वर्षे मगसर वदी २

◆◆◆

परिशिष्ट – 10

महाराणा सरूपसिंह कालीन दरबार की बैठक-व्यवस्था

श्रीराम जी

श्री एकलिंगजी | श्री गुणेसाअेजी प्रसादातु

सिध श्री महाराजधिराज महाराणा जी श्री श्री श्री श्री श्री १०८ श्री श्री श्री सरूपसिंह जी आदेशातु ठाकुर लोगा री बैठक रो नामो लीखे प्रोहत संवत् १९१४ का साल

राजा	गुवालेर (ग्वालियर)
रावल	डूंगरपुर
रावल	वाँसवाड़ा
राव	सिरोही
राव	रामपुरो
रावत	देवला
पुरोहित शिवराज जी	
राज कीरतसिंह चनणसिंहोत	सादड़ी
राव वगतसिंह केसरीसिंहोत्	वेदला
रावत जोधसिंह मोखमसिंहोत्	कोठारिया
रावत केसरीसिंह पदमसिंहोत	सलूम्बर
राठोड़	गाणेरो
रावसवाई	विजोल्या
रावत रणजीतसिंह नारसिंहोत्	देवगढ़
रावत सवाई महासीह अनोपसिंहोत	वेगम
राज वेरीसाल कल्याणसिंहोत	देलवाड़ा

रावत चतरसिह पृथ्वीसिहोत	आमेट
राज लालसिह चत्रसालोत	गोगून्दा
रावत ऊमेदसिंह अजीतसिहोत	कानोड़
महाराज हमीरसिह जोरावरसिहोत	भीण्डर
राठोड प्रतापसिह जोधसिहोत	वदनोर
रावत अमरसिह रूघनाथसिहोत	भैंमरोड़
रावत प्रतापसिंह	वानसी
रावत केसरीसिह जुवानसिहोत	कुरावड़
राव लछमणसिह लालसिहोत	पारसोली
रावत खुमाणसिह दुलेसिंहोत	आसीन्द
काका शेरसिंह शिवदानसिंह	वागोर
काका दलसिह सूरजमल	शिवरती
भाई सूरतसिह अनोपसिंह	करजाली
बाबा हमीरसिंह फतहसिंह	कारोई
बाबा भुवानीसिह इन्दरसिंह	वावलास
रावत सार्दूलसिह	हमीरगढ
रावत सौभागसिह माधोसिंह	चावण्ड
रावत ऊम्मेदसिह हमेरसिह	भदेसर
रावत वगतावरसिंह फतेसिंह	वोएड़ो
बाबा वागसिह नाहरसिह	भुणावास
रावत हिम्मतसिंह गोकलदास	पीपल्या
डोड्या जोरावरसिंह रोड़सिंह	लावो
राठोड़ गिरधारीसिंह जोधसिंह	रामपुरा
बाबा जोधसिंह किशोरसिह	खेरावाद
बाबा ज्ञानसिह शिवसिह	महुवा
रावत अजीतसिंह शिवसिह	लूणदा
रावत गम्भीरसिंह सूरजमल	थाणो
राजाभाई गोविन्दसिह संग्रामसिंह	वनेड़ा
राजाधिराज लछमणसिंह जगतसिंह	शाहपुरा
राठोड जसुतसिह तेजसिह	गो. चाणोद
काका जसुतसिह जवानसिह	धनेरो
ाज देवीसिह भैरूसिह	ताणो

राठोड़ ओनाड़सिंह धीरतसिंह	केलवा
राठोड़ सवाईसिंह सालमसिंह	रूपाहेली
वावा मेहतावसिंह चत्रसालोत्	
भाई शिवसिंह रूपसिंह	नेतावल
भाई वजेसिंह गुलावसिंह	कंसमोर
राठोड़ वीरमदेव वागसिंह	निम्वाहेड़ा
पंवार हमेरसिंह संग्रामसिंह	वम्वोरी
भाई हड़मतसिंह गुमानसिंह	
वावो गिरधारीसिंह भुवानीसिंह	सनवाड़
रावत जवानसिंह दलेलसिंह	अमरगढ़
चूण्डावत सुलतानसिंह जसकरण	लसाणी
राज भुवानीसिंह मोहनसिंह	करेड़ा
रावत गुलावसिंह अमरसिंह	संग्रामगढ़
रावत केसरीसिंह वजेसिंह	धरियावद
चौहान वगतावरनाथ प्रतापनाथ	फलीचड़ा
शक्तावत माधोसिंह भैरूसिंह	विजयपुर
रावत भुवानसिंह हमेरसिंह	दारू
वावा भुवानीसिंह सूजानसिंह	वरसल्यावास
वावा जोरावरसिंह भोपालसिंह	फेरो
रावत जोधसिंह हमेरसिंह	वम्वोरा
चौहान हमेरसिंह गोकलदास	थामलो
सोलंकी वेरीसाल एलसिंह	रूपनगर
	नान्देशमा
राठोड़	नाड़ोलारी
राठोड़	धुणो
वावा माधोसिंह प्रतापसिंह	सरवाणो
रावत दलेलसिंह मोहव्वत सिंह	वाठरड़ा
वावा गिरवरसिंह मरजादसिंह	मंगरोप
भाटी प्रतापसिंह इन्द्रसिंह	मोही
वावा हमेरसिंह रामसिंह	गुरला
रावत रतनसिंह भारतसिंह	वावल
राठोड़ मेहतावसिंह किशनसिंह	डावलो

राठोड़	टंकारा
राज झालमसिंह नाहरसिंह	झाडोल
पवार देवीसिंह वजेसिंह	सियाणों
वावा वजेसिंह रामसिंह	वाकयों
वावा रूपसिंह	जामोली
राणावत ऊदेसिंह अम्वेसिंह	काकरवा
वावा धीरतसिंह लछमणसिंह	गाडरमालो
भाटी सुमेरसिंह शिवसिंह	मुरोली
चूंडावत रुघनाथसिंह वजेसिंह	दौलतगढ़
रावत चमनसिंह चत्रसालोत	माटोला
रावत शिवदानसिंह मोखमसिंह	भगवानपुरा
वावा जोरावरसिंह वादरसिंह	मादड़ी
चूंडावत किशोरसिंह गोपालसिंह	पाट
चूडावत दुर्जनसिंह वगतावरसिंह	जिलोला
चूडावत करणसिंह मानसिंह	कोशीथल
चूंडावत जालमसिंह भैरूसिंह	वेमाली
राव पदमसिंह ऊदेसिंह	गुड़लो
चौहान ऊरजनसिंह जालमसिंह	वनेडो
चूंडावत शिवदानसिंह वगतावरसिंह	ताल
राणावत नवलसिंह पृथ्वीसिंह	परसाद
राठौड़ हरनाथसिंह	गोड़वाड़ में सिआवल
वावा जालमसिंह देवीसिंह	मंड्यो
चूंडावत दौलतसिंह वेरीसालोत	चंगेड़ी
राणावत लछमणसिंह	वांसड़ो
राठौड़ रुघनाथसिंह गो	पावो
वावा दौलतसिंह गो.	नाणखेड़ो
राठोड़ जोरावल सिंह गो.	खोड
राठोड़	गोड़वाड़ में वरणीजी
रावत मोखमसिंह लछमणसिंह	कन्तोड़ा
राठोड गो.	चाचेड़ी
राठोड़ रामसिंह गो.	देवली
देवड़ा गो.	वानसेण

राव वगतावरसिंह माधोसिंह	मुरचाखेड़ी
रावत रुघनाथसिंह रूपसिंह	ज्ञानगढ़
राठोड़ किशोरसिंह करणसिंह	वरोल
महेचो हमेरसिंह लछमणसिंह	लीमड़ी
शक्तावत	हींथो
शक्तावत जोरावरसिंह जालमसिंह	सेमारी
चूंडावत ऊरजनसिंह रुघनाथसिंह	तंलोली
वावा शिवनाथसिंह भारतसिंह	पारोली
शक्तावत	धागड़मोह
रावत फतेसिंह ऊंकारसिंह	विनोता
शक्तावत वीरमदेव जयसिंह	रूद
शक्तावत दलपतसिंह वगतावरसिंह	सिंयाड़
शक्तावत हरनाथसिंह रामलावोत	पानसल
चूंडावत जसवन्तसिंह गुलावसिंह	भादू
शक्तावत चत्रसाल भगवतसिंह	कूंथवास
झाला माधोसिंह सुरतानसिंह	रेवल्या
चूंडावत	वस्सी
चूंडावत भैरूसिंह तगतसिंह	घोलोपाणी
चूंडावत अमरसिंह जालमसिंह	पीथावास
राठोड़ हमेरसिंह वगतावरसिंह	आगंरो
राठोड़ दुर्जनसिंह भुवानीसिंह	जंगपुरो
राठोड़ मुकनदास भीमसिंह	छोटी रूपाहेली
वावा लालसिंह वड़दसिंह	नालेरो
शक्तावत खुमाणसिंह लछमणसिंह	गुवालरे
शक्तावत वसन्तसिंह	गटियावली
वगतावत चत्रसाल जोधसिंह	पुठोली
राठौड़ वीरमदेव अभयसिंह	कंठार
राणावत खुमाणसिंह नाहरसिंह	कारुण्डो
राणावत हमेरसिंह ऊंकारसिंह	जलोदा
राणावत चंद्रसिंह राजसिंह	आख्या
राणावत	पुखो
वावा सुजानसिंह दौलतसिंह	आटूण

सोलंकी चन्दनसिंह रुघनाथसिंह	जीलवाड़ो
राठोड़ जेतसिंह गुलावसिंह	लाछुड़ो
शक्तावत चन्दनसिंह	चुलद
पुरावत मानसिंह जगतसिंह	सिंगोली
राणावत तगतसिंह भैरूसिंह	पळ्नी
राठोड़ गोपालदास रामदास	इण्टाली
राठोड़	वामण्यो
चूंडावत इश्वरीसिंह हरिदास	लुवारीया
पंवार वीरमदेव	कांमेड़ी
रंसालु देवीदास	रंखावल
नवलसिंह मनोहरदास	आसोप
जगन्नाथसिंह एकलिंगदास	भावो
हाडा मंगलसिंह भुवानीसिंह	
राठौड़ मेहतावसिंह वड़दसिंह	
गौड़	फलासिया
हड़मतसिंह सिरेसिंह	सामपुरा
गम्भीरसिंह गोवर्द्धनसिंह	
वावा केसरीसिंह पाड़सिंह	तोरोली
चौहान राजसिंह चन्दनसिंह	पीपरड़ोथो
राठौड़ अजीतसिंह समेरसिंह	दांतड़ो
शक्तावत शिवनाथसिंह	पालच
भाटी लछमणसिंह हमीरसिंह	वानीर्णो
सिसोदिया सामन्तसिंह जोरावरसिंह	दाद्रो
शक्तावत मगनसिंह अमानसिंह	छोटो महुओ
चौहान वगतावरसिंह	पपेली
राठौड़ गुलावसिंह वगतावरसिंह	गलवो
पुरावत नवलसिंह मेघसिंह	सुरावास
झाला भैरूसिंह जवानसिंह	टाक
झाला मोखमसिंह अजीतसिंह	लालपुरयो

सामने—

जमादार खाजवक्ष	महुवाडो
चांपावत रुघनाथसिंह रतनसिंह	सीदेसर

पंडित रामराव गुणवत राव	सादड़ी वाला
भाणेज वगतावरसिंह	भणाएरा
चावड़ा फतेसिंह जालमसिंह	आरजो
राठोड़ अनोपसिंह सौभागसिंह	सोनियाणो
मुंडा पाछे—	
१. पुरोहित शिवराज इनके पहले	प्रधानजी
२. उमरावा का कुंवर	
३. मसाणी	
४. भृदंआ संकर	
५. आड़ो	
६. ददवाड़ो	वारेठ
७. वारेठ	भादो
आसा महेरा	
दद्वाड़ा	भाट गगाराम रामसुख
साथ में—	
सहीवाला	वक्षी रघीरामछ
छवावावालो	

♦ ♦ ♦

परिशिष्ट – 11

महाराणा शंभूसिंह कालीन दरबार की बैठक-व्यवस्था

श्री गणेश जी प्रसादात्   ॥ श्रीरामजी ॥   श्री एकलिंग जी प्रसादात्

सिद्ध श्री महाराजाधिराज महाराणा जी श्री शम्भूसिंह जी आदेशात् ठाकुर लोगा की वैठक गैर-इलाका सुदी वी वोल को नामो. ..

न.	नाम	
१.	राजा	गवालेर गे.
२.	रावल	डूगरपुर गे.
३.	रावल	वाँसवाड़ा गे.
४.	राव	सिरोही गे.
५	राव	रामपुरा गे.
६.	रावत	देवलो गे.
७.	पुरोहित शिवराजजी	
८.	राज सर्वसिंह कीरतसिंहजी का	सादड़ी, मुंडा वरोवर जुहार
९	राव वखतसिंह केसरीसिंहजी का	वेदला, जुहार
१०	रावत जोधसिह मोखमसिंह जी कोठारिया	मुंडा वरोवर जुहार
११.	रावत जोधसिंह केसरीसिह जी	सलुम्वर जुहार
१२.	राठौड़ हिम्मतसिंह नाहरसिंह जी	घाणेराव जुहार
१३.	राव सवाई गोविन्ददास केशोदासोत	विजोल्या, गुंडा वरोवर
१४	रावत किशनसिंह रणजीतसिंह	देवगढ़
१५.	रावत सवाई मेघसिंह महासिंह	वेगम, मुंडा वरोवर जुहार
१६.	राज फतेसिंह वेरीसालोत	देलवाड़ा, मुंडा वरोवर जुहार
१७.	रावत पृथ्वीसिंह	आमेट, मुडा वरोवर जुहार

१८.	राज मानसिंह लालसिंह	गोगुन्दा, मुंडा वरोवर जुहार
१९.	रावत ऊम्मेदसिंह अजीतसिंह	कानोड़, मुंडा वरोवर जुहार
२०.	महाराज हमेरसिंह जोरावरसिंह	भीण्डर, जुहार
२१.	राठौड़ प्रतापसिंह जोधसिंह	वदनोर, जुहार
२२.	रावत भीमसिंह अमरसिंह	भैंसरोड़ जुहार
२३.	रावत मानसिंह प्रतापसिंह	वानसी, मुंडा वरोवर जुहार
२४.	रावत रतनसिंह ईसरीसिंह	कुरावड़, जुहार
२५.	राव लछमनसिंह लालसिंह	पारसोली, मुंडा वरोवर जुहार
२६.	रावत खुमाणसिंह दुलेहसिंह	आसीन्द, जुहार
२७.	श्री कुंवरजी	
२८.	(वागोर)	
२९.	(शिवरती)	
३०.	(करजाली)	
३१.		
३२.	वावा हमेरसिंह फतहसिंह	कारोई, जुहार
३३.	वावा गोपालसिंह भुवानीसिंह	वावलास, जुहार
३४.	रावत नाहरसिंह सार्दुलसिंह	हमीरगढ़, जुहार
३५.	रावत सौभागसिंह माधोसिंह	चावण्ड, जुहार
३६.	रावत भोपालसिंह ऊम्मेदसिंह	भदेसर, जुहार
३७.	रावत अदोतसिंह वगतावरसिंह	वोहेड़ा, जुहार
३८.	वावा वाघसिंह नाहरसिंह	भुणावास, जुहार
३९.	रावत लछमणसिंह	पीपल्यो, जुहार
४०.	रावत जालमसिंह भैरूसिंह	वेमाली, जुहार
४१.	डोड़िया मनोहरसिंह जोरावरसिंह	लावो, जुहार
४२.	राठौड़ संग्रामसिंह गिरधारीसिंह	रामपुरो, जुहार
४३.	वावा जोधसिंह किशोरसिंह	खेरावाद, जुहार
४४.	वावा ज्ञानसिंह शिवसिंह	मऊ्वो, जुहार
४५.	रावत अजीतसिंह शिवसिंह	लूणदो, जुहार
४६.	रावत गंभीरसिंह सूरजमल	थाणो जुहार
	सामा वैठे वेंत वेंत री छेठी गादी सूं, अर वीडा वरोवर पावे, थाणां केड़े	
४७.	राजा गोविन्दसिंह संग्रामसिंह	वनेड़ो, जुहार
४८.	राजाधिराज लछमणसिंह	शाहपुरा, जुहार
४९.	राठोड़ जसुतसिंह जवानसिंह	चाणोद, जुहार

५०. बाबा जसूतसिंह जवानसिंह — चरखाणो, जुहार
५१. राज देवीसिह भैरूसिंह — ताणो, जुहार
५२. राठोड ओनाड़सिंह धीरतसिंह — केलवो, जुहार
५३. राठोड बलवतसिह सवाईसिंह — रूपाहेली वड़ी, जुहार
५४. रावत शिवदानसिंह मोखमसिंह — भगवानपुरो, जुहार
५५. बाबा गुमानसिह मेहतावसिंह — जुहार
५६. समन्दरसिंह शिवसिंह — नेतावल
५७. मोहनसिंह मुकनसिह — पीलाधर
५८ राठोड दुलेहसिंह अमरसिंह — निम्वाहेड़ा, जुहार
५९. पंवार जयसिह हमेरसिंह — वम्बोरी, जुहार
६०. बाबा हडमतसिंह गुमानसिंह — जुहार
६१. बाबा लछमणसिंह गिरधारीसिंह — सनवाड़, जुहार
६२. राजा बहादुर भुवानीसिंह मोहनसिंह — करेड़ा, जुहार
६३. रावत जवानसिंह दलेलसिह — अमरगढ़, जुहार
६४. जुंडावत जसुतसिंह सुल्तानसिंह — लसाणी, जुहार
६५. रावत चतरसिंह दुलेहसिंह — ओगणो, जुहार
६६. चवाण संग्रामसिंह दौलतसिंह — सिंगोला
६७. रावत गुलावसिंह अमरसिंह — संग्रामगढ़, जुहार
६८. रावत केसरीसिंह विजयसिंह — धरियावद, जुहार
६९. चौहान बगतावरनाथ प्रतापनाथ — फलीचड़ा
७०. सक्तावत माधोसिंह भैरूसिंह — विजयपुर, जुहार

विजयपुर सुदी जेट रा बीडा हातो हात देवाणेनपछे प्रधान हे वीड़ो वगसे

७१. रावत भुवानसिंह हमेरसिंह — दारु, जुहार
७२. बाबा चत्रसाल सलामतसिह — वरसल्यावास, जुहार
७३. बाबा जोरावरसिह भोपालसिह — केरियो, जुहार
७४. रावत प्रतापसिंह हमेरसिह — वंबोरा, जुहार
७५. चौहान देवीसिंह हमेरसिंह — थामला
७६. सोलंकी वेरीसाल नवलसिह — रूपनगर, जुहार
७७. कानावत रणजीतसिह बहादुरसिह — आमलदा, जुहार
७८. — नांदेसमा
७९. राणावत उदयसिंह अभयसिह — काकरवा
८०. राठोड़ — नाडोलाई, जुहार
८१. राठोड़ — धुणो

८२.	बावा माधोसिंह प्रतापसिंह	सरवाणियो, जुहार
८३.	रावत दलेलसिंह मोहब्बतसिंह	बाठरड़ा, जुहार
८४.	बावा गिरवरसिंह मरजादसिंह	मंगरोप, जुहार
८५.	भाटी प्रतापसिंह ईन्द्रसिंह	मोही, जुहार
८६.	बावा सार्दूलसिंह हमेरसिह	गुरलां, जुहार
८७.	रावत हमेरसिंह रतनसिंह	बावल, जुहार
८८.	राठोड़ करणसिंह मेहताबसिंह	डाबलो, जुहार
८९.	टकोरा रतनसिंह किशोरसिंह	जुहार
९०.	राज वदनसिंह सालमसिंह	झाड़ोल, जुहार
९१.	पंवार हमेरसिंह लालसिंह	सीआणो
९२.	बावा ईदरसिंह बजेसिंह	जुहार
९३.	बावा प्रतापसिंह स्वरूपसिंह	जामोली
९४.	राणावत माधोसिंह देवीसिंह	पहूना
९५.	बावा केसरीसिंह धीरतसिंह	गाडरमाला, जुहार
९६.	भाटी शिवनाथसिंह सुमेरसिंह	मुरोली, जुहार
९७.	चूंडावत नवलसिंह रुगनाथसिंह	दौलतगढ़, जुहार
९८.	रावत तगतसिंह चमनसिंह	साटोला, जुहार
९९.	चूंडावत बेरीसाल अर्जुनसिंह	बस्सी, जुहार
१००.	बावा जोरावरसिंह बहादुरसिंह	मादडी
१०१.	चूंडावत अर्जुनसिंह बगतावरसिंह	जीलोला, जुहार
१०२.	चूंडावत करणसिंह मानसिंह	कोशीथल, जुहार
१०३.	चूंडावत समरथसिह जसकरण	माण्यावास
१०४.	राव रतनसिंह हमेरसिंह	गुड़लो जुहार
१०५.	चवाण ऊरजनसिंह जालमसिंह	बनेड़ो
१०६.	चुडावत शिवदान बगतावरसिह	ताल जुहार
१०७.	राठोड बाघसिंह नाहरसिंह	लांबो
१०८	राणावत नवलसिंह पृथ्वीसिह	फलसाद
१०९.	राठोड़	सियावल गे.
११०.	बावा जालमसिंह देवीसिंह	मण्डफिया
१११	चुंडावत दलेलसिंह दौलतसिह	चंगेड़ी
११२.	राणावत रणमलसिंह लछमणसिंह	बाँसड़ो, जुहार
११३.	राठोड़	पावो गे
११४.	बावा	नाणोखेड़ो जुहार गे.

११५	राठोड़	खोड़ गे.
११६	राठोड	वरसणी गे.
११७	रावत मोखमसिह लछमणसिंह	कनतोडो
११८.	राठोड	चांचेडी गे.
११९	राठोड	देवली गे.
१२०	देवड़ो	वानसेन गे.
१२१	राव बगतावरसिंह माधोसिंह	मुरचाखेडी जुहार
१२२.	रावत रुघनाथसिह रूपसिह	ज्ञानगढ़ जुहार
१२३.	राठोड ऊमेदसिह करणसिह	वरोल
१२४.	मेहेचो तेजसिह हमेरसिह	लीवड़ी जुहार
१२५	शक्तावत लालसिंह प्रतापसिह	हीता जुहार
१२६	रावत नाहरसिंह जोरावरसिह	सेवारी जुहार
१२७	चुडावत ऊरजनसिह रुघनाथसिह	तलोली जुहार
१२८	बाबा सालमसिंह शिवनाथसिंह	पारोली
१२९	शक्तावत अजबसिंह	धांगडमो जुहार
१३०	रावत फतसिंह ऊंकारसिह	विनोता जुहार गे.
१३१.	शक्तावत भोपालसिंह वीरमदेवोत	रूद जुहार
१३२	शक्तावत दलपतसिंह वगतावरसिंह	सिंहाड़ जुहार
१३३	शक्तावत हरनाथसिह रामलालोत	पानसल जुहार
१३४	चुडावत जसूतसिंह गुलाबसिंह	भादू जुहार
१३५.	शक्तावत महासिंह हमेरसिंह	कूंथवास जुहार
१३६.	चुंडावत नाहरसिंह भैरूसिह	धोलो पाणी
१३७.	चुंडावत अमरसिंह जालमसिंह	पीथावास
१३८.	राठोड़ हमेरसिंह बगतावरसिंह	खाखरियो
१३९.	राठोड देवीसिह करणसिंह	जगपुरो जुहार
१४०.	राठोड़ मुकनसिह भीमसिह	रूपाहेली छोटी
१४१	बाबा लालसिह बडदसिंह	नालेरो
१४२.	शक्तावत	गुवालेर जुहार
१४३	शक्तावत गोपालसिंह बिसनसिह	घट्यावली
१४४	शक्तावत दीपसिह चन्नसाल	पुठोली
१४५	राठोड वीरमदेव अभयसिह	कटार
१४६	राणावत खुमाणसिह ऊकारसिंह	कारुडा
१४७	राणावत मोडसिह हमेरसिह	जलोदा

१४८. बावा देवीसिंह सूजाणसिंह	आदूण
१४९. सोलंकी तगतसिंह चन्दनसिंह	झीलवाड़ा
१५०. राठौड़ जेतसिंह गुलाबसिंह	लाछुड़ो
१५१. शक्तावत चन्दनसिंह हमेरसिंह	चलउ गे.
१५२. बावा मानसिंह जगतसिंह	सिंगोली जुहार
१५३. राणावत तगतसिंह भैरूसिंह	पहुंनी
१५४. राठौड़ ईसरीदास गोपालदास	ईटाली जुहार
१५५. राठौड़ रूपसिंह	बामण्यो गे.
१५६. चुंडावत ईसरीदास हरिदास	लवारियो
१५७. पुंवार वीरमदेव	कामेड़ी
१५८. बावा रसालु देविदास	रख्यावल
१५९. गोपालसिंह अणदसिंह	आसोप
१६०. प्रतापसिंह मंगलसिंह	हरणेई
१६१. राठौड़ मेताबसिंह बड़दसिंह	कामा
१६२. रुगवरसिंह सरदारसिंह	फलास्यो
१६३. केसरीसिंह हड़मतसिंह	सांमपुरो
१६४. बावा भोपालसिंह केसरीसिंह	तीरोली
१६५. राठौड़ अजीतसिंह	टांतड़ो
१६६. शक्तावत रतनसिंह	पाल
१६७. भाटी लछमणसिंह हमेरसिंह	बानेण
१६८. सिसोदिया प्रतापसिंह सामतसिंह	दाद्यो
१६९. शक्तावत करणसिंह मगनसिंह	छोटो महुवो
१७०. चौहान बगतावरसिंह	पीपली
१७१. राठौड़ गुलाबसिंह बगतावरसिंह	गलवो
१७२. पुरावत नवलसिंह	सुरावास
१७३. झाला सामतसिंह भैरूसिंह	टाँक

सामो—

१. चमादार खाज बगसजी	महुवाड़ो मुजरो
२. पण्डत राम राव गुणपत रावरो	जुहार
३. महाराज ईन्दरसिंह चाँदसिंह	पालड़ी जुहार
४. चावड़ा प्रतापसिंह फतेहसिंह	आरण्यो जुहार
५. चावड़ा कोलसिंह जालसिंह	जुहार
६. राठौड़ तेजसिंह अनोपसिंह	सोन्याणो

प्रधान मोड़ा पाछे वैठे—
ऊमराव वाला कंवर वीडो पावे अरडा विमसल में वैठे अर ऐक ओल होवे तो वजेपुर नीचे वैठे—

सादडी	वेदलो	कोठारियो
सलुम्वर	देलवाड़ो	गोगुन्दा
भीण्डर	वदनोर	वैंसरोड
वावा चंद जवानदासोत	मोडा पाछे वैठे	

मसाणी दौलतसिंह
भट्ट भुवानी शंकर
वारे टउल
आडा रामलाल
दद्वाड़ा गुलाव
वारेठ रामरतन
भादा
आसा
मैरामोड
ददवाड़ाकम
आड़ा हमेर
भाट वगतावर व भाट गुमानीराम

सही वालो रामसिंह वगसी रघीराम छवावालो

कलमो

१. रजवाड़ा रा बैठक छवांला ने वीडा २.....

२. पुरोहित जी थी वजेपुर सूदि २ ऐक वीड़ो हात देवाऐ पछे प्रधान है वीडो वगसे पछे कंवरा ने पछे वावा चंद जी ने पछे मसाणी पछे भटजी पछे चारण पछे भाट . .

३. दारू सूं विडो दुजा पावे ज्यांने दरोगो देवे छवा वाला सूदी. ..

४. जयपुर जोधपुर का ऊमराव आवे सो वीडो पेलिया ने देर खाज वगस जी ने देवे जद पाछे पण्डत रामराव जी ने देव याने सीख करावे ने पछे वड़ी ओल में वीड़ा वगसे.....

५. मुडा वरोवर वैठे वा वड़ी ओल में बैठे ज्यां ऊमरावा ने वीड़ा लंवरवार देवाये.. ..

पात को दस्तूर ..

पांत माहे बड़ी ओल एक हीज होवे सो मुंडा वरोवर बैठवा वाला वी वड़ी ओल में ही वैठे अर ऐक वैठक वाला सरदार है जी ओर रा प्रमाणे आवे अतरा

देवगढ़	वेगम
भैंसरोड़	बानसी
कुराबड़	पारसोली

सो पगे लागे जठा पछे पेले तोवार देवगढ़, भैंसरोड़, कुराबड ने जीमवा वास्ते केवाई जावे, जटा पछे तेवार आवे तो ओसरा सूं केवाई जावे सो ओसरा वालो सिरदार पसाव मांगे तौ दुजा सिरदार ने कवाऐ दीयो जावे. ...

६. रजवाड़ा का सिरदार आवे सो सामा बैठे हात दोय की छेटी सूं. ..

जयपुर का १२.

अचरोल	सामोद	लवाण	डगी
सीकर	दुणी	बगरु	खेतड़ी
चोमु	ऊणीयारो	पाटण	झलाय

जोधपुर का ८

आऊवो पोकरण चापावत	आसोप चंडावल कुंपावत
रीयां कुचामण मेड़त्या	खेरवो भादराज जोदा
बगड़ी जेतावत	कानण करणोत
कीवसर करमोत	रायपुर निमाज ऊदावत

जयपुर जोधपुर का ऊमरावां के लारे आवा को काम पडे तो ओसरा प्रमाणे आवे ऐक दिन जयपुर का ऊमरावा ने बुलावे, एक दिन जोधपुर का ऊमरावां ने बुलावे.....

कुशलगढ़ राव हमीरसिंह जी जुहार.....
गढ़ी चवाण रतनसिंह जी.....

परिशिष्ट–12

बड़ीसादड़ी के झाला परिवार का वंशवृक्ष

राज श्री राजोधर जी (हल्वद राज्य काठियावाड)

बडी सादड़ी

1 महाराजराणा श्री अज्जाजी
विक्रम सवत् 1563-1584, ईस्वी सन् 1506-1527

2 राजराणा श्री सिहजी
विक्रम सवत् 1584-1592, ईस्वी सन् 1527-1535

3 राजराणा श्री आसाजी
विक्रम सवत् 1592-1597, ईस्वी सन् 1535-1540

4 राजराणा श्री सुरताणसिहजी प्रथम
विक्रम सवत् 1597-1625, ईस्वी सन् 1540-1568

5 राजराणा श्री मानसिहजी (बीदाजी)
विक्रम सवत् 1625-1633, ईस्वी सन् 1568-1576

6 राजराणा श्री देदाजी
विक्रम सवत् 1633-1668, ईस्वी सन् 1576-1611

7 राजराणा श्री हरदासजी
विक्रम सवत् 1668-1679, ईस्वी सन् 1611-1622

देलवाडा

श्री सज्जाजी

श्री जेतसिहजी प्रथम

श्री छत्रसाल जी — गोगून्दा
श्री आसाजी — मदार
श्री मानसिह जी — देलवाडा

श्री सुरताण सिह जी (श्री आसाजी के गोद गए)

हलवद–धांगध्रा

श्री राणकदेवजी
(इनका वश गुजरात मे हल्वद धागध्रा, बाकानेर, बढराण, लक्तर, चूडा व सायला में तथा मध्य प्रदेश मे नरवर मे रहा।)

श्री नरहरदासजी — कुण्डला

श्री रामसिहजी (इनके वश मे सरोड, नारजी का खेड़ा व सादड़ी में खल्यावेला में पाया जावेगा)

श्री श्यामसिहजी — झाडोल

8 राजराणा श्री रायसिहजी प्रथम
विक्रम संवत् 1679-1713, ईस्वी सन् 1622-1656
9 राजराणा श्री सुरताणसिहजी द्वितीय
विक्रम सवत् 1713-1730, ईस्वी सन् 1656-1673
10 राजराणा श्री चन्द्रसेणजी
विक्रम सवत् 1730-1760, ईस्वी सन् 1673-1703
श्री महासिंहजी
(इनके वशज पालाखेड़ी में हैं)
11 राजराणा श्री कीरतसिंहजी प्रथम
विक्रम सवत् 1760-1800, ईस्वी सन् 1703-1743
श्री दौलतसिहजी
(इनके वशज ताणा मे है)
श्री अमानसिंहजी
(इनके वशज तलावदा केवडिया मे है)
श्री गुलाबसिहजी
(ताणा गोद गये नाथसिंहजी के)
12 राजराणा श्री रायसिंहजी द्वितीय
विक्रम सवत् 1800-1818, ईस्वी सन् 1743-1761
श्री नाथसिहजी
(ताणा गोद गये दौलतसिहजी के)
13 राजराणा श्री सुरताणसिहजी तृतीय
विक्रम सवत् 1818-1855, ईस्वी सन् 1761-1798
14 राजराणा श्री चन्दनसिहजी
विक्रम सवत् 1855-1874, ईस्वी सन् 1798-1817
15. राजराणा श्री कीरतसिहजी द्वितीय (देलवाड़ा से गोद आए)
विक्रम सवत् 1874-1922, ईस्वी सन् 1817-1865

16 राजराणा श्री शिवसिहजी
विक्रम सवत् 1922-1939, ईस्वी सन् 1865-1883
श्री फतहसिंहजी
(देलवाडा गोद गए)
श्री जयसिहजी
(लाऔलाद)
श्री उम्मेदसिहजी
श्री रायसिंहजी
(सादडी गोद गए)
श्री सुल्ताणसिहजी
श्री दूलहसिहजी
(सादडी गोद गए)
श्री चतरसिहजी
(इनका वश सरथला में)
श्री जवानसिहजी
(इनका वश भीयाणा में)
17 राजराणा श्री रायसिंहजी तृतीय (गोद आए)
विक्रम सवत् 1939-1954, ईस्वी सन् 1882-1897
18 राजराणा श्री दूलहसिंहजी (गोद आये)
विक्रम सवत् 1954-1992, ईस्वी सन् 1897-1936
श्री भीमसिंहजी
(इनका वश लींकोड़ा में)
19. राजराणा श्री कल्याणसिंहजी
विक्रम सवत् 1992-2001, ईस्वी सन् 1936-1944
20 राजराणा श्री हिम्मतसिंहजी
विक्रम सवत् 2001 से, ईस्वी सन् 1944 से
श्री लक्ष्मणसिंहजी
(इनका वश पण्डेडा में)
श्री मनोहरसिंहजी
(इनका वंश चान्द्राखेडी में)
श्री चन्द्रसेन सिंहजी
(इनका वश वम्बोरा में)
21 कुंवर श्री घनश्यामसिंहजी
कुंवर श्री करणसिंहजी
22. भंवर श्री त्रिभुवनसिंहजी

परिशिष्ट – 13

संदर्भसामग्री-सूची

अप्रकाशित

बड़ी सादड़ी ठिकाने का संग्रह

- मूल दस्तावेज पट्टे, पर्वाने, रुक्के, पत्र आदि
- नकल वहियां, हिसाब-किताब वहियां, रजिस्टर आदि
- पत्राचार, पत्रावलियां आदि
- इतिहास विषयक पांडुलिपियां, वंशावलियां आदि

वड़वा वंशावलियां— ईश्वरसिंह लिखित वंशावली
रामसिंह लिखित वंशावली
मदनसिंह लिखित वंशावली

राजस्थान राज्य अभिलेखागार संग्रह, उदयपुर

राजस्थान राज्य अभिलेखागार संग्रह, वीकानेर

अमरकाव्य (संस्कृत ऐतिहासिक काव्यग्रंथ) ले. पं. रणछोड़ भट्ट रचना-काल 1710 ई.

अमरसार (संस्कृत काव्यग्रंथ) ले. पं. जीवंधर (रचना-काल 1628 ई.)

राजप्रशस्ति महाकाव्य (सस्कृत ऐतिहासिक काव्य-शिलालेख) ले. पं. रणछोड़ भट्ट रचना-काल 1652-1680 ई.

झाला चन्द्रसेन यश-वर्णन (डिंगल काव्य-पांडुलिपि) ले. आशिया मानसिंह

राजराणा रायसिंह वंशावली—सादड़ी ठिकाने का इतिहास (पांडुलिपि)

राजविलास (संस्कृत काव्य) ले. मान कवि (रचना-काल 1660-1680 ई.)

मुंणोत नैणसी की ख्यात, सं. डॉ. मनोहरसिंह राजावत (1987 ई.)

श्री झाला-भूषण-मार्तण्ड, ले. महता सीताराम शर्मा (प्रकाशित, 1904 ई.)

झालावंश-वारिधि (गुजराती भाषा में) ले. राजकवि नाथूराम सुंदरजी शुक्ल (प्रकाशित 1919 ई.)

A missing chapter of Indian Mutiny by C.L. Showers (1888 A D.)

धांगध्रा महाराजा श्रीराज मेघराजजी के लेखक के नाम पत्र

Tuzk-ı-Bahari edıted by H Beveridge

Akbarnama by Abul Fazl edited by H. Beveridge

Tuzk-ı-Jahangırı edited by A. Rogers and Beverıdge

Muntkhab-ut-Tawanıkh by Abdul Qadir Badayuni

औरगजेबनामा, ले. मुंशी देवीप्रसाद

औरगजेब, ले. डॉ. यदुनाथ सरकार

जहांगीरनामा, ले मुंशी देवीप्रसाद

शाहजहांनामा, ले. मुंशी देवीप्रसाद

Shahjehan of Delhi by Dr. Banarasi Prasad (1932 A.D.)

Jahangır, by Dr. Beni Prasad (1922 A D.)

Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. I, by James Tod (1829 A D.)

बड़वा देवीदान कृत मेवाड के राजाओं, राणियों, कुंवरों और कुवरियों का हाल—सं. डॉ. देवीलाल पालीवाल (1985 ई.)

महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ, स डॉ. देवीलाल पालीवाल (1970 ई.)

मेवाड के ऐतिहासिक पट्टे-परवाने, सं. डॉ. हुकमसिंह भाटी (1983 ई.)

Akbar the Great, Vol. I by Dr. A.L Srivastava (1972 A.D.)

टॉड कृत राजपूत जातियों का इतिहास—सं. डॉ देवीलाल पालीवाल (1992 ई.)

टॉड कृत राजस्थान में सामंतवाद—स. डॉ देवीलाल पालीवाल (1989 ई.)

Bombay Gazetteer by Col G W Weston (1908 A D.)

Imperial Gazetteers of India by K D Erskine (1908 A.D)

The Mewar Residency Gazetteer by K D. Erskine (1908 A.D.)

Chıefs and Leadıng Famılies in Rajputana by C S Bayley Editions 1894 A.D. & 1936 A D)

Mayo College Magazıne, 1921-1933 A D.

वीर विनोद, 2 भाग, ले. कवि राजा श्यामलदास (1885 ई.)

उदयपुर राज्य का इतिहास, ले गौ ही. ओझा (1937 ई.)

बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, ले गौ. ही. ओझा (1937 ई.)

प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, ले. गौ ही ओझा (1940 ई.)

डूंगरपुर राज्य का इतिहास, ले. गौ. ही. ओझा (1936 ई.)

सिरोही राज्य का इतिहास, ले. गौ. ही. ओझा (1911 ई.)

जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, ले. विश्वेश्वर नाथ रेऊ

महाराणा प्रताप महान, ले. डॉ. देवीलाल पालीवाल (1994 ई.)

Maharana Sanga by Harbilas Sarda (1918 A.D.)

Treaties, engagements and sanads by Aitchison (1880 A.D.)

Mewar Census Report by J. L. Dashora (1942 A.D.)

History of Mewar by J C. Brooke (1860 A.D.)

Mewar Under Maharana Bhupal Singh by Sir Sukhdeo (1935 A D.)

Origin of Rajputs by J. N. Asopa (1976 A.D.)

Lectures on Rajput History by Dr. Dasharatha Sharma (1970 A.D.)

Mewar and the Maratha Relations by Dr. K.S. Gupta (1971 A.D.)

History of Dhrangdhra State by C Mayne (1921 A.D.)

Jhala Jalim Singh by Dr. R.P. Shastri

Mewar and the British (1857 to 1921 A.D.) by Dr. Devilal Paliwal (1971 A.D)

घाणेराव के मेड़तिया राठोड़ (घाणेराव ठिकाने का इतिहास) ले. डॉ. देवीलाल पालीवाल (1980 ई.)

महाराज शक्तिसिंह और बोहेड़ा के शक्तावत (बोहेड़ा ठिकाने का इतिहास) ले. डॉ. देवीलाल पालीवाल (1959 ई.)

पानरवा का सोलंकी राजवंश (पानरवा ठिकाने का इतिहास), ले. डॉ. देवीलाल पालीवार (2000 ई.)

शाहजहां के हिन्दू मन्सबदार, सं. डॉ. मनोहर सिंह राणावत (1973 ई.)

मेवाड़-मुगल सम्बन्ध, ले. डॉ. गोपीनाथ शर्मा (1976 ई.)

झाला मान, ले. नाथूसिह महियारिया (1976 ई.)

मेवाड़ की संस्कृति एवं परम्परा, ले. धर्मपाल शर्मा (1999 ई.)

◆ ◆ ◆

परिशिष्ट – 14

मेवाड़ राज्य के अन्य झाला ठिकाने

देलवाड़ा

बड़ीसादड़ी राजराणा अज्जा जी के छोटा भाई सज्जा जी को
संवत् 1584 में महाराणा सांगाजी देलवाड़ो बगस्यौ

		वि.सं.	
1.	राजराणा सज्जाजी प्रथम	1592	चित्तौड हनुमानपोल पर मारिया गया
2	जेतसिंहजी प्रथम	1624	चित्तौड़ सूरजपोल पर मारिया गया
3.	मानसिंहजी प्रथम	1633	हल्दीघाटी मारिया गया महा. प्रतापसिंह जी के बहिन परण्यां जाकां चत्रसालजी
4.	कल्याणसिंहजी प्रथम		याके वडा भाई चत्रसालजी ने गोगुन्दो मिलियो ये छोटा देलवाड़े रिया-1667 देलवाड़ो पाया
5.	राघोदेवजी प्रथम		
6.	जेतसिंहजी द्वितीय		छोटा भाई उजरण सिंह जी ने कोटा सु कुनाडी मिली
7.	सज्जाजी द्वितीय		
8.	मानसिंहजी द्वितीय		
9.	कल्याणसिंहजी द्वितीय		
10.	राघोदेवजी द्वितीय		
11.	सज्जाजी तृतीय		
12.	कल्याणसिहजी तृतीय		
13.	वेरीसालजी		

14	फतेहसिंहजी	1946	सादड़ी सु गोद आया राजराणा किरतसिंहजी का दूसरा कुंवर
15.	जालमसिंहजी	1957	छोटा भाई विजयसिंहजी कुंनाड़ी गोद गया
16.	मानसिंहजी तृतीय	1970	
17.	जसवन्तसिंहजी	1994	सादड़ी सु गोद आया राजराणा दुलेसिंहजी का भाई
18	खुमाणसिंहजी		

गोगुन्दो

देलवाड़े राजराणा मानसिंहजी का बड़ा कुंवर चत्रसालजी ने महाराणा अमरसिंहजी प्रथम गोगुन्दो बगस्यो छोटा कुंवर कल्याणजी रे देलवाड़ो रियो

1.	राजराणा चत्रसालजी प्रथम	1671	रावल्यां गांव में मारिया गया वादशाह की फोज सु
2.	कानजी प्रथम	1725	बड़ा कुंवर नाथजी को वंश मन्दार कानजी ने गोगुन्दो मिल्यो
3.	जसवन्तसिंहजी प्रथम	1746	
4.	रामसिंहजी		
5.	अजयसिंहजी प्रथम		
6.	कानसिंहजी द्वितीय		दुजा भाई का तिरोली, तीजांका कल्याणपुरा, मुकनसिंह जी का नारसिंह जी का– जालमसिंह जी का भैरूसिंह जी जो ताणे गोद गया
7.	जसवन्तसिंहजी द्वितीय	1835	जसवन्दगढ़ बन्धायो
8.	चत्रसालजी द्वितीय	1910	
9.	लालसिंहजी	1920	
10.	मानसिहजी	1948	
11.	अजयसिंहजी द्वितीय	1957	

12.	परथीसिंहजी	1966	
13	दलपतसिहजी		
14.	मनोहरसिहजी		
15	भैरूसिहजी		

कुंनाडी

देलवाड़े राजराणा जेतसिंहजी द्वितीय का छोटा भाई उरजणसिंह जी ने कोटे महारावजी कुनाड़ी बगसी।

1.	राजराणा ऊरजणसिहजी प्रथम		
2.	रूपसिहजी प्रथम		
3.	रामचन्द्रजी		
4.	भवानीसिहजी		
5.	गुलाबसिंहजी		
6.	ऊरजणसिहजी द्वितीय		
7.	रूपसिहजी द्वितीय		
8.	विजयसिहजी		देलवाडा सुं गोद आया
9.	चन्द्रसेणजी		

ताणा

बड़ीसादड़ी राजराणा किरतसिंह जी प्रथम के छोटा भाई दौलतसिंह जी ने महाराणा संग्रामसिंह जी संवत् 1762 में ताणा बगस्यो।

1.	राजराणा दौलतसिहजी	1783	लारां 7 सत्या वी (के साथ 7 रानियां सती हुई)
2.	नाथजी		सादड़ी राजराणा रायसिंहजी द्वितीय का छोटा भाई हा गोद आया—हिता रा झगडा में मारीया गया।

3.	गुलावसिंहजी		सादड़ी राजराणा किरतसिंह जी का तीजा भाई हां गोद आया भतीजा के—अनसन व्रत ले इन्तकाल करयो—मुंजवे
4.	कसोरसिंहजी		ताणो जब्त हो गयो सो राजराणा सुरतानसिंह जी तृतीय अरजकर पाछो देवायो महाराणा भीमसिह जी सुं।
5.	हमेरसिंहजी		राजनगर में इन्तकाल करयो।
6.	भैरूसिंहजी	1888	गोगुन्दे कल्याणपुर का जालमसिंह जी का बेटा हा गोद आया 1874 में तलवार बन्दी उदयपुर में शरीर छुटो।
7.	देवीसिंहजी	1955	वृन्दावन वास करयों
8	अमरसिंहजी	1975	दुजा भाई केसरसिह जी दौलतपुरे तीजा चमनसिह जी नंगाखेड़ी
9	रतनसिंहजी		

झाड़ोल

बड़ीसादड़ी राजराणा हरदास जी का छोटा भाई श्यामसिंह जी ने महाराणा झाड़ोल बगसी।

1.	राजराणा श्यामसिहजी		
2.	दौलतसिंहजी		
3.	चन्द्रसेणजी		
4.	महासिंहजी प्रथम		दुजा भाई–आमीवाड़े
5.	अमरसिंहजी प्रथम		दुजा भाई देवास—तीजा गोराणे—चौथा तुवरगढ़
6.	अगरसिहजी		दुजा भाई कोचले—तीजा वदराणे—चौथा सालुखेड़े—पांचमा बावराखेड़े
7.	वागजी		दुजा भाई नवा गांव—तीजा नान्दवेल

8.	सामन्तसिंहजी		दुजा भाई वागपुरे—तीजा खेरवाड़ें—चौथा अड़ोल
9	मोकमसिंहजी		
10.	महासिहजी द्वितीय		
11.	अमरसिंहजी द्वितीय		वागपुरा सुं गोद आया
12.	दुरजण सालजी		
13.	नाहरसिंहजी बडा भाई		
14.	सालमसिंहजी छोटा भाई		
15.	बदनसिंहजी बड़ा भाई		
16.	जोरावरसिंहजी छोटा भाई	1937	जल में डूब मरया
17.	देवीसिंहजी	1949	वागपुरा सुं गोद आया
18.	सरदारसिंहजी		
19.	कुबेरसिंहजी		

कुंण्डला

बड़ीसादड़ी राजराणा हरदास जी के तीसरा भाई नरहरदासजी ने बादशाह जहाँगीर शाह—गंगधार दीदी वो राज झालावाड़ में जातो रयो और कुण्डलो ठिकाणो रह गयो झालावाड़ के इलाका में

1.	रावत नरहरदासजी		
2	दयालदासजी		बड़ा भाई अचलदासजी की छतरी सादड़ी धरमशाला में है।
3	प्रतापसिंहजी प्रथम		
4.	मालदेवजी		
5.	दलसिंहजी		
6.	वक्तावरसिंहजी		छोटा भाई पाडसिंह जी मकोड़िये

7.	मोकमसिंहजी		छोटा भाई अनोपसिंहजी हरणी खेड़े
8.	रायसिंहजी		दुजा भाई कुशालसिंहजी पारा पीपरी—तीजा अखेसिंह जी नपाण्ये
9.	प्रतापसिंहजी द्वितीय		
10.	मेतावसिंहजी		
11.	सवाईसिंहजी	1965	
12.	प्रतापसिंहजी तृतीय	1970	
13.	सज्जनसिंहजी		

मकोड़ियो

कुण्डले रावती वक्तावरसिंह जी का छोटा भाई ने मकोड़ियो मिल्यो

1.	पाड़सिंहजी			
2.	अदोतसिंहजी			
3.	फतेहसिंहजी			
4.	दौलतसिंहजी	ये वड़ीसादड़ी राजराणा चनणसिंहजी के वाद वटे गादी वेठ गया—छे: मीना राज करयों वाद पाछा याने गादी सुं उतार राजराणा किरतसिंहजी द्वितीय गादी विराज्या रो पाछा मकोड़िये गया। याके तीन वेटा		
	1	2	3	
5.	किशोरसिंहजी मकोड़िये	1 संग्रामसिंहजी	1 प्यारसिंहजी ने सादड़ी	
6.	तखतसिंहजी	ने सादड़ी सु	सु लालपुरा को खेड़ो याके	
7.	गोपालसिंहजी	चाहखेड़ी	दोय वेटा	
		2 देवीसिंहजी 3 उदयसिंहजी 4 गोविन्दसिंहजी	2 वसन्तसिंहजी सीतामहू जीगार पाया 3 मोड़सिंहजी	2 दलपतसिंहजी सादड़ी 3 प्रतापसिंहजी 4 वजेसिंह जी

तलावदा सादडी राजराणा किरतसिंहजी प्रथम के चौथा भाई अमानसिहजी ने तलावदो मिल्यो		पालाखेड़ी सादड़ी राजराणा चन्द्रसेणजी का छोटा भाई महासिहजी ने पालाखेड़ी मिली	
1	अमानसिहजी	1.	महासिहजी
2	गुमानसिहजी हिता काम आया	2	देवीसिंहजी
3.	गोपालसिहजी	3	भुवानीसिहजी हिता काम आया
4	नाहरसिहजी मीनाणा सु गोद आया	4.	जेतसिहजी
5.	वगतसिहजी	5	जोरावरसिहजी
6	अमरसिहजी	6	हमेरसिहजी
7	केसरसिहजी	7.	केसरसिंहजी
8	जसवन्तसिहजी	8	चतरसिंहजी
		9.	सरदारसिहजी
		10	रतनसिंहजी

भीयाणो—कीटखेड़ो—जालरापाटण—का रईस भुवानसिंहजी

सादड़ी राजराणा सुरताणसिंह जी द्वितीय का तीसरा भाई जसवन्तसिंहजी ने भीयाणो मिल्यो

1.	जसवन्तसिहजी	
2.	प्रतापसिंहजी के दो बेटा	
	1	2
3	अणन्दसिहजी	छोटा भाई रतनसिंहजी ने कीटखेड़ो मिल्यों।
4	जसवन्तसिहजी	1 रतनसिहजी
5	पाडसिहजी	2 कल्याणसिहजी
6.	हेम्मतसिंहजी	3 रोडसिहजी

7.	मादुसिंहजी सुं गांव	4 देवीसिंहजी	
	जपत वीयो	5 उम्मेदसिहजी	
8.	उदयसिंहजी तलावदा सुं	6 अनोपसिंहजी	
9.	भुवानसिंहजी	7 भुवानीसिंहजी के टो वेटा	
		8 वगतसिंहजी छोटा—	वडा हेम्मतसिंह जी पाटण
		9 लालसिंहजी	हवेली में ठाकर विनेसिंह जी
		10 लछमणसिहजी	के गोद गया
		11 संग्रामसिहजी	1 हेम्मतसिंह जी
		12 नाहरसिंहजी	2 चत्रसाल जी
			3 भुवानीसिंह जी पालरापाटन गादी विराजीया-रईस वीया
			4 राजेन्द्रसिंह जी

परिशिष्ट – 15

खास रुक्का की नकल

श्री बाणनाथ जी

नम्बर - 26 श्री राम जी

माहारो जुहार मालम होवे—

स्वस्ती श्री राजराणा रायसिह जी हजुर माहारो जुहार मालम होवें—अपर मलका मोजमां की तखत नसीनी ने—पचासमो साल हैं—जीरी खुशी को जलसो तारीख 16 फरवरी मुताविक फागण वीद 9 वेगा—सो ई तारीख पेहली आप अठे पधार जावेगा—संमत् 1943 का माहा सुद 9 बुधे—

परवानां की नकल

नम्बर—2 श्री रामोजयति

श्री गणेसजी प्रसादात भालो श्री एकलिग जी प्रसादात =

सही

स्वस्ती श्रीमत उदयपुर सुस्थाने महाराजाधीराज महाराणा जी श्री फतेहसिंहजीत् आदेशात्—राजरणा दुलेहसिह सुप्रशाद लिख्यते यथा अठारा समाचार भला हैं आपणा कहावजो 1 अपर आसोजी दशरावा ऊपर सारी जमीयत सुधा परवाना दृष्ट श्री हजुर आवजो संवत् 1968 रा भादवा सुदी 1 शुक्रे—

◆◆◆

परिशिष्ट – 16

बड़ीसादड़ी ठिकाना के पट्टे के गाँवों की फहरिस्त[1]

क्र.सं.	गाँव का नाम	जिला
1.	बड़ीसादड़ी	चित्तौड़गढ़
	1. रोजमाल का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
	2. जाटों का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
	3. पुला मगरा	चित्तौड़गढ़
	4. राती तलाई	चित्तौड़गढ़
	5. दलपुरा	चित्तौड़गढ़
	6. राणावतों का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
	7. खाखरियाजी का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
	8. लछमीपुरा	चित्तौड़गढ़
	9. अचलपुरा	चित्तौड़गढ
	10. नारजी का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
2.	पारसोली	चित्तौड़गढ़
	1. गुड़ा	चित्तौड़गढ़
	2. खेड़ी	चित्तौड़गढ़
	3. मकनपुरा	चित्तौड़गढ़
	4. राठोड़ों का खेड़ा	चित्तौड़गढ़

1. परिशिष्ट 9 भी देखें।

3	परवती	चित्तौड़गढ़
4.	बोरूण्ड़ी	चित्तौड़गढ़
	1. करमदिया खेडा	चित्तौड़गढ़
	2 सुखपुरा	चित्तौडगढ़
	3 बोरण्डी का गढ	चित्तौड़गढ
5.	सेमल्या	चित्तौड़गढ़
	1 भुवानीपुरा	चित्तौड़गढ़
	2. सरदारपुरा	चित्तौड़गढ़
6.	मुजवा	चित्तौडगढ़
	1 पूजा का फलां	चित्तौडगढ
	2 लालपुरा वड़ा	चित्तौडगढ़
	3. लालपुरा छोटा	चित्तौड़गढ़
	4. पीपली खेडा	चित्तौडगढ
	5 खाखरिया खेडी	चित्तौड़गढ़
	6. जोगपुरा	चित्तौड़गढ़
	7. दीपा का तालाव	चित्तौड़गढ़
	8 सुलतानपुरा	चित्तौड़गढ़
	9. धामणा खाली	चित्तौड़गढ़
	10. रूपारेल	चित्तौड़गढ़
	11. जेसिंगपुरा	चित्तौडगढ़
	12. संगरामपुरा	चित्तौड़गढ़
	13. हलदुखेडा	चित्तौड़गढ
	14 सरवाणा	चित्तौडगढ
	15 जापेवेली मय गटके	चित्तौड़गढ

	16. नवलपुरा (रेला)	चित्तौड़गढ़
	17. ढ़ीकड़िया खेड़ी	चित्तौड़गढ़
	18. काला खेत	चित्तौड़गढ़
	19. नाखेली उर्फ खुतारी वागल	चित्तौड़गढ़
	20. रेठी	चित्तौड़गढ़
7.	पायरी	चित्तौड़गढ़
	1. मातामगरी	चित्तौडगढ़
	2. चीरा मगरी	चित्तौड़गढ़
	3. वागा का फलां	चित्तौड़गढ़
8.	पवड़ा	चित्तौड़गढ़
	1. आफरों का तालाव	चित्तौड़गढ़
9.	गुन्दलपुर	चित्तौड़गढ़
	1. पातावेरी	चित्तौड़गढ़
	2. चन्दपुरा	चित्तौड़गढ़
	3. ऊमरिया	चित्तौड़गढ
10.	पण्डेड़ा	चित्तौड़गढ़
	1. गाजनदेवी	चित्तौड़गढ़
	2. गाजनदेवी का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
11.	भीयाणा	चित्तौड़गढ़
	1. अणंदा का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
12.	तलावदा	चित्तौड़गढ
	1. महुड़ी खेड़ा	चित्तौड़गढ़
13.	सेटवाणा	चित्तौड़गढ़
14.	पालाखेड़ी	चित्तौड़गढ़

15.	ऊंठेल	चित्तौड़गढ़
	1. खेडा	चित्तौड़गढ
16.	आक्या	चित्तौड़गढ़
17	कटाई	चित्तौडगढ़
	1 राईगपुरा	चित्तौड़गढ़
	2. शिवपुरा	चित्तौड़गढ़
	3. मादुपुरा	चित्तौड़गढ
18.	सरोड	चित्तौड़गढ़
19.	गुड़ली	चित्तौड़गढ़
20.	चितौडिया	चित्तौड़गढ़
21	चेनपुरा	चित्तौड़गढ
22.	लवारिया	चित्तौड़गढ़
23	नलवाई	चित्तौड़गढ़
	1. जुनी नलवाई	चित्तौड़गढ़
24.	कलमिया	चित्तौड़गढ़
25.	हड़मतिया	चित्तौड़गढ़
26	वम्वोरा	चित्तौड़गढ़
	1 करमाला	चित्तौड़गढ़
	2. दोलतपुरा	चित्तौड़गढ़
	3. संतोकपुरा	चित्तौड़गढ़
	4. हरिपुरा	चित्तौड़गढ़
	5. रूपपुरा	चित्तौड़गढ़
27.	भगवानपुरा (गरगटा खेडी)	चित्तौड़गढ़
28.	लिकोड़ा	चित्तौड़गढ़

	1. वली का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
	2. उमेदपुरा	चित्तौड़गढ़
	3. शिकारपुरा	चित्तौड़गढ़
	4. ऊदा की भागल	चित्तौड़गढ़
29.	सेमलखेड़ा (सवलपुरा)	चित्तौड़गढ़
	1. सवलपुरा	चित्तौड़गढ़
	2. रतीचन्दजी का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
30.	बोरखेड़ा	चित्तौड़गढ़
	1. रुघनाथपुरा	चित्तौड़गढ़
	2. सुलतानपुरा खाली	चित्तौड़गढ़
31.	देवदा	चित्तौड़गढ़
	1. गोविन्द खेड़ा	चित्तौड़गढ़
32.	कीटखेड़ा	चित्तौड़गढ
33.	लालपुरा तीसरा	चित्तौड़गढ़
	1. केसरपुरा	चित्तौड़गढ़
	2. मेघपुरा	चित्तौड़गढ़
	3. दलपतसिंह जी का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
	4. नेनसुखा का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
34.	सरथला	चित्तौड़गढ़
35.	सोमपुर	चित्तौड़गढ़
36.	अम्बावली	चित्तौड़गढ़
	1. कीरतपुरा	चिंत्तौड़गढ़
37.	वागेला का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
38.	चान्दरा खेड़ी	चित्तौड़गढ़

39.	चान्दखेड़ी	चित्तौड़गढ़
40.	हिंगोरिया	चित्तौड़गढ़
	1. राजपुरा	चित्तौड़गढ़
41.	सालेड़ा	चित्तौड़गढ
	1. सालेड़ा छोटा	चित्तौड़गढ़
42.	केवड़िया	चित्तौड़गढ़
43.	भोभतपुरा	चित्तौड़गढ़
44.	सुवावतों का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
45.	सुखवाड़ों	चित्तौड़गढ़
46.	पावटो	चित्तौड़गढ़
47.	साकरियां खेड़ी	चित्तौड़गढ़
	1. रेवारियों का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
	2 डांगियों का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
48.	सोवजी का खेड़ा	चित्तौड़गढ़
49.	भोपतखेड़ी	चित्तौड़गढ़
50.	वोयणो	चित्तौड़गढ़
51.	चीपीखेड़ा	चित्तौड़गढ़
52.	आकोदड़ा	चित्तौड़गढ़

♦ ♦ ♦